सन्त पलटू

जीवन, उपदेश
तथा
रचना

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रकाशक की ओर से

सब सन्तों का सन्देश एक ही है, चाहे वे किसी देश, जाति या समय में क्यों न आये हों। उनका ध्येय परमात्मा से विछुड़ी आत्माओं को वापिस उससे मिलाना है। उनका उपदेश नाम के अभ्यास, प्रभु की भक्ति तथा नेक रहनी का उपदेश है। श्री नामदेव, कबीर साहिब, श्री गुरु नानकदेव, दादू दयाल आदि महान सन्तो की परम्परा में पलटू साहिब उत्तर प्रदेश मे अठारहवी शताब्दी में हुए। प्रभु-प्रेम में पगी उनकी वाणी सरल तथा स्पष्ट होने के साथ ही साथ गूढ आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण है।

सन्त पलटू पर श्री आइज़िकिल द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक बहुत लोक-प्रिय हुई तथा हिन्दी, पजाबी सिंधी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में पुस्तक को छपवाने की मांग की जाने लगी। श्री रतिराम ने अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद तैयार किया। पलटू साहिब की अधिक से अधिक वाणी को पुस्तक में देने की भावना से श्री राजेन्द्र कुमार सेठी ने पलटू साहिब के जीवन तथा सन्देश पर संक्षिप्त लेख तथा उनकी वाणी में से यह संकलन प्रस्तुत किया। पुस्तक के प्रथम संस्करण का प्रकाशन भी उन्होंने अपने निरीक्षण में करवाया। हम श्री राजेन्द्र कुमार सेठी और श्री रतिराम की प्रेमपूर्ण सेवा के लिये उनके आभारी हैं।

आशा है कि प्रेमी पाठकों को यह पुस्तक पसन्द आयेगी और वे इस महान सन्त की वाणी से आध्यात्मिक प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करेंगे।

डेरा बाबा जैमलसिंह,
ज़िला अमृतसर (पंजाब)
३०-११-१९८४

एस० एल० सोंधी
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास

विषय-सूची

प्रथम भाग

जीवन और उपदेश

झाड़ नहीं फल खात हैं,
नहीं कूप को प्यास
पर स्वारथ के कारने,
जन्में पलटू दास ॥

सन्त पलटू

जीवन :

बहुत से अन्य सन्त-महात्माओं की तरह ही पलटू साहिब के जीवन के विषय में बहुत ही कम जानकारी मिलती है। उनके जीवन की घटनाएँ अतीत के अन्धकार में खो गई हैं। न उनके माता पिता तथा परिवार के विषय में कुछ जानकारी मिलती है, न ही पलटू साहिब के निजी जीवन की अन्य घटनाओं तथा पहलुओं के विषय में। और तो और, उनके वास्तविक नाम के विषय में भी कुछ मालूम नहीं, क्योंकि 'पलटू' उपनाम तो उनको उनके सतगुरु के द्वारा दिया हुआ माना जाता है। कहा जाता है कि सतगुरु से नाम प्राप्त करके आपने अपनी वृत्ति पूर्णतया बाहर से अन्तर तथा नीचे से ऊपर की ओर मोड़ ली। आपकी सुरत संसार तथा इन्द्रियों की ओर से पलट कर अन्तर में आध्यात्मिक मण्डलों की वासी हो गई। इस अवस्था से प्रसन्न होकर आपके सतगुरु ने कहा कि यह तो पलट गया है, 'पलटू' बन गया है। उस समय से ही आपका नाम 'पलटू' प्रसिद्ध हो गया। आपने स्वयं अपनी वाणी में सतगुरु द्वारा दिए इस नाम का ही प्रयोग किया है, जो उनकी सतगुरु-भक्ति तथा सतगुरु प्रति श्रद्धा का भी प्रतीक है। आपने अपनी वाणी[1] में अपने उपनाम के भेद को इस प्रकार स्पष्ट किया है :

---

१. इस पुस्तक में संकलित पलटू साहिब की वाणी 'बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद' द्वारा तीन भागों में प्रकाशित की गई पलटू साहिब की बानी से ली गई है।

१. पल पल में पलटू रहे अजपा आलो जाप।
गुरु गोविंद अस जान के राखा पलटू नाम ॥
२ पलटू पलटू क्या करै, मन को डारै धोय।
काम क्रोध को मारि कै, सोई पलटू होय ॥(भाग ३,साखी९३)

पलटू साहिब का एक भाई पलटू प्रसाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस नाम के कारण भी 'पलटू' उपनाम जुड़ा है। इसलिए यह भी वास्तविक नाम प्रतीत नहीं होता। परन्तु पलटू प्रसाद ने अपनी 'भजनावली' में पलटू साहिब के विषय में कुछ प्रसंग दिए हैं, जिनसे उनके जीवन के कुछ पहलू सामने आते हैं।

'भजनावली' से प्रतीत होता है कि पलटू साहिब का जन्म उत्तर-प्रदेश में अयोध्या (ज़िला फैज़ाबाद) के समीप ग्राम नंगा जलालपुर में हुआ। यह ग्राम मालीपुर रेलवे स्टेशन से १३ किलोमीटर की दूरी पर है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि पलटू साहिब का जन्म एक बनिया परिवार में हुआ क्योंकि आपकी अपनी वाणी में इस भाव के कई प्रसंग मिलते हैं। आप एक स्थान पर कहते हैं; 'मैं हौं पलटू बनियाँ' (भाग ३, शब्द १३३) एक कुंडली में कहते हैं: 'पलटूदास इक बानिया रहै अवध के बीच' (भाग १, कुंडली ५८)।

ऐतिहासिक दृष्टि से १८वीं शताब्दी में दिल्ली के सिंहासन पर शाह आलम नाम के दो मुगल बादशाह हुए हैं। शायद पलटू साहिब दोनों के ही समकालीन थे। श्री आई. ए. इज़कील[1] का विचार है कि पलटू साहिब का जीवन-काल १७१० ई० से १७८० ई० तक है। इन तिथियों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं तथा निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं।

यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि पलटू साहिब

श्री आई. ए. इज़कील एक अनुभवी पत्रकार थे जो विभिन्न संस्थाओं से सम्बन्धित रहे। वे एक रूहानी जिज्ञासु और अनुभवी लेखक भी थे जिन्होंने अंग्रेजी में 'कबीर दि ग्रेट मिस्टिक', 'सरमद: भारत के यहूदी सन्त' तथा 'मिस्टिक मीनिंग आफ दि वर्ड' नामक पुस्तकें लिखीं।

को सन्त गोविन्द साहिब से नाम का भेद मिला। कहा जाता है कि जब आप पूर्ण गुरु की खोज में अयोध्या से काशी गये, तो वहाँ आपको कई प्रसिद्ध महात्मा मिले। पहले आपका गुलाल साहिब से मिलाप हुआ, जिन्होंने आपको भीखा साहिब के पास भेज दिया। परन्तु भीखा साहिब ने आपको वापिस गुलाल साहिब के पास भेज दिया। फिर गुलाल साहिब ने गोबिन्द साहिब के पास भेजा, जिन्होंने आपको नाम दान प्रदान किया।

कुछ लोगों का विचार है कि भीखा साहिब पलटू साहिब के गुरु थे, परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि पलटू साहिब ने अपनी वाणी में गोविन्द साहिब का शिष्य होना स्वीकार किया है। उन्होंने कई जगह आदर-पूर्वक अपने सतगुरु का नाम लिया है तथा यह भी संकेत दिया है कि उनके सतगुरु स्वयं भी सुरत-शब्द का अभ्यास करते थे तथा उन्होंने आपको भी इसी मार्ग का भेद दिया

१. पलटुदास के गोविंद साहिब,
आइ मिले मोहिं प्रेम गलिय में ॥ (भाग ३, शब्द ५७)

२. सखि पलटू अलमस्त दिवानी,
गोविंदनन्द दुलारी हो। (भाग ३, शब्द १२७)

३. जै जै जै गुरु गोविन्द आरती तुम्हारी।
निरखत पद कंज कमल, कोटि पतित तारी ॥
(भाग ३, शब्द १२)

४. करम जनेऊ तोड़ि कै, भरम किया छयकार।
जेहि गोविंद गोबिंद मिले, थूक दिया संसार ॥
(भाग ३, साखी २६)

पलटू साहिब के गुरु भाई कृपादास जी ने भी लिखा है

पलटू जूझे खेत में लगा शब्द का बान।
गुरु गोविंद की फौज में सुरवां पलटूदास ॥
(कृपादास की शब्दावली पृ० १३५)

कृपादास पलटू साहिब की आध्यात्मिक चढ़ाई सिद्धि के

विषय में लिखते हैं :

पलटू पलक न विसरे दिल दरिया बीच ।
ऐसी भगति चलाइया मची नाम की कीच ।।
(कृपादास की शब्दावली पृ० १)

यह ऊँची तथा सच्ची अवस्था प्राप्त करने के लिए पलटू साहिब को मन के साथ पूरी लड़ाई लड़नी पड़ी। वास्तव में चाहे कोई साधारण पुरुष हो या पूर्ण सन्त हो, सब को ही यह लड़ाई लड़नी पड़ती है। इस भयानक युद्ध का वर्णन करते हुए आप कहते हैं :

छिन में बहुत हरि तरंग उठै,
छिन में धन खोजत लोग लुगाई।
छिन में बहु जोग बैराग कथै,
छिन में काम किरोध को मारन धाई ।।
छिन में वहु भोग विलास करै,
छिन में उठि धाय करै कुटिलाई।
पलटू कपटी मन चोट करै,
हम भागि बचे गुरु की सरनाई ।।
(भाग २, सवैया १)

पलटू साहिब अयोध्या निवासी थे। आम लोगों की यह धारणा है कि अयोध्या श्री रामचन्द्र जी की नगरी है। परन्तु पलटू साहिब के समय इसका प्राचीन वैभव समाप्त हो चुका था। प्राचीन तीर्थ-स्थान प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ अवश्य ही बड़ी संख्या में यात्री आते थे। पूजा-पाठ, जप-तप तथा पुण्य-दान के बहाने यात्रियों से पैसा बटोरना यहाँ के पण्डों का मुख्य धंधा बन चुका था। ऐसा समझें कि अयोध्या नगरी कर्म-काण्ड तथा परम्परागत रीति-रिवाजों में विश्वास रखने वाले लोगों का बड़ा अड्डा बन चुकी थी। इस प्रकार के लोगों में रह कर विशुद्ध आध्यात्मिकता का प्रचार करना तथा बाहरमुखी भ्रमों में जकड़े हुए लोगों को अन्तर्मुख अभ्यास की ओर मोड़ना, पलटू साहिब जैसे महान् सन्त-सतगुरु का ही काम था। ज्यों-ज्यों लोगों को उनके निर्मल

आध्यात्मिक प्रकाश का पता लगा, अमीर-ग़रीव, अनपढ़-विद्वान्, हिन्दू-मुसलमान सव प्रकार के लोग आपके सत्संग में आने लगे।

आपका प्रत्येक धर्म तथा जाति के लोगों से एक जैसा प्रेम था। अपनी एक कुण्डली में आप कहते हैं कि मुसलमान तथा हिन्दू मेरी रब्बी तथा ख़रीफ़ की फ़सल हैं। मैं उस परमपिता परमात्मा का दास हूँ तथा उसने मुझे हिन्दू-मुसलमान दोनों जागीर के रूप में प्रदान किए हैं। मेरा ज्ञान का दफ़्तर दोनो के लिए खुला हुआ है तथा सव लोग मेरे ज्ञान के कायल हो रहे है

मुसलमान रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ ॥
हिन्दू भया खरीफ दोऊ है फसिल हमारी।
इनको चाहै लेइ काटि कै बारी बारी ॥
साल भरे में मिली यही हमको जागीरी।
चाकर भये हजूरी कौन अब करै तगीरी[१] ॥
दूनों को समुझाइ ज्ञान का दफ़्तर खोलै।
सव कायल[२] होइ जाय अमल दै कोऊ न बोलै॥
[३]दोऊ दीन के बीच में पलटूदास हरीफ।
मुसलमान रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ ॥

(भाग १, कुंडली २६२)

पलटू साहिव ने एक दोहे में लिखा है कि पलटू अपने सतगुरु के बाग का वह फूल है जिसने चारों वर्णो के भेद-भाव समाप्त करके, प्रत्येक धर्म तथा जाति के लोगों के लिए प्रभु-भक्ति की एक रीति चलाई :

चारि बरन को मेटि कै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूला फूल ॥

(भाग ३, साखी १४३)

आप ने अपनी एक प्रसिद्ध कुंडली में संकेत दिया है कि परमात्मा से मिलाप के लिए केवल भक्ति तथा नम्रता ही सहायक होती है, जाति-पाति, कौम-मजहब कोई अर्थ नही रखते। आपने स्पष्ट किया

१. कठिनाई, २. मानने वाले, ३. दोनों धर्मों के मध्य मे।

क मानिक के सच्चे भक्त नीची से नीची जाति में भी हुए हैं।
विदुर, भीलनी तथा सुपच के उदाहरण देकर समझाते हैं कि
पि उन्होंने नीची जाति में जन्म लिया, किन्तु अपने प्रेम के कारण
न्होंने भगवान को वश में किया हुआ था :

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ॥
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी ।
तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी ॥
जप तप नेम अचार करैं बहुतेरा कोई ।
खाये सेबरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई ॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा ।
मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा ॥
पलटू ऊँची जाति को जनि कोउ करै हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ॥
(भाग १, कुंडली २१८)

पलटू साहिब एक गृहस्थी महात्मा थे। आपकी शादी भी हुई
तथा सन्तान भी। आपने अपनी वाणी में कई स्थानों पर संकेत किया
है कि आपने अपने निर्वाह के लिए पूर्वजों द्वारा चलाया दुकानदारी
का धन्धा अपनाया 'पलटूदास एक बनिया, रहे अवध के बीच'। परन्
सांसारिक वृत्ति वाले दुकानदार तथा प्रभु-भक्त दुकानदार में ब
अन्तर होता है। पहले का दीन-इमान माया होती है तथा वह अ
प्रकार की हेरा-फेरी से काम लेता है। दूसरा सच्ची और प
कमाई करता है तथा मन को मोह-माया, लोभ-लालच से रोक
रखता है। पलटू साहिब अपनी एक कुण्डली में सांसारिक वृत्ति
बनिए के हाल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति
अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। वह पासंग रखता है, कम तौ
लालची तथा बेशर्म होता है। वह लोभ के वशीभूत होकर पूर
के गुण की ओर ध्यान नहीं देता। वह मन में अपने कर्त्ता, उस
का डर नहीं रखता तथा वह समझने का प्रयत्न नहीं करता

जीव को किए हुए कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार चौरासी के दु:ख सहने पड़ते है। वह चौरासी की आग में जलने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु झूठ और फ़रेब की बुरी आदत को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता :

बनियाँ बानि न छोड़ै पसँघा मारे जाय ॥
पसँघा[1] मारे जाय पूर को मरम न जानी ।
निसु दिन तोलै घाटि खोय[2] यह परी पुरानी ॥
केतिक कहा पुकारि कहा नहिं करै अनारी ।
लालच से भा पतित सहै नाना दुख भारी ॥
यह मन भा निरलज्ज खाज नहिं करै अपानी ।
जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी ॥
चौरासी फिरि आइ कै पलटू जूती खाय ।
बनियाँ बानि न छोड़ै पसँघा मारे जाय ॥

(भाग १, कुंडली १९७)

इसके विपरीत सच्चा प्रभु-भक्त मन के पीछे लग कर झूठ, फरेब तथा बेईमानी करने की अपेक्षा अपनी कामनाओं को काबू में करता है, उन पर नियन्त्रण रखता है। उसका पूरा प्रयत्न मन को वश में करने की ओर होता है। आप कहते हैं :

सो बनिया जो मन को तौलै ॥
मनहिं के भीतर बसी बजार। मनहीं आपु खरीदनहार ॥
मनहीं में लेन देन मनहिं दुकान। मनहीं में मन की गुजरान ॥
मनहीं में लादै उलदै अनत न जाय। मनहि की पैदा मनहि में खाय ॥
मनहीं में तराजू मनहि में सेर। पलटूदास सब मनही का फेर ॥

(भाग ३, शब्द ९४)

विचारणीय है कि पलटू साहिब के सेवक आपको संसार की प्रत्येक वस्तु देने को तैयार थे परन्तु एक सच्चे सन्त की तरह आपने

---

१. पासग रखता है तथा पूरा-पूरा तोलने का गुण समझने का प्रयत्न नहीं
२. आदत।

किसी से एक पैसा तक भी स्वीकार न किया। आप कहते हैं कि अमीर लोग हाथ जोड़ कर मुझे कई प्रकार की भेंट देना चाहते हैं परन्तु मुझे केवल एक परमात्मा पर भरोसा है :

१. हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर। (भाग १, कुंडली १९)

२. एक भरोसा करै नहीं काहू से माँगै। (भाग १, कुंडली २७)

पूर्ण सन्त सदैव निष्काम भाव से जीवों को परमार्थ की शिक्षा देते हैं। वे अपने लाभ-हानि तथा सुख-दुख की चिन्ता किए विना सच्ची आध्यात्मिकता के इच्छुक जिज्ञासुओं को परम सत्य का मार्ग दिखाते हैं। वे इस ऊंचे तथा सच्चे उपकार के वदले में कोई दक्षिणा या भेंट स्वीकार नहीं करते। पलटू साहिव कहते हैं कि संसार के प्रत्येक जीव का अपना स्वभाव तथा धर्म होता है। हंस घोंघे और सीपियां नहीं, सच्चे मोती खाता है। शेर न घास खाता है न मुर्दा। वह जव खाता है स्वयं मारा हुआ शिकार खाता है। सन्त-जन तो सारी सृष्टि के सिरताज हैं। उन्होंने अपने लिए जो नियम बनाया है, कभी उससे नहीं हटते। सन्तों की सदा से यही मर्यादा चली आ रही है कि वे अपनी हक हलाल की कमाई से अपना निर्वाह करते हैं। वे ऐसे हंस होते हैं जो नाम के मोती चुगते हैं, माया के घोंघे नहीं। वे ऐसे शेर होते हैं जो हक-हलाल की कमाई खाते हैं, पराये धन का मुर्दा नहीं। वे कभी अपने स्वार्थ के लिए किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। यदि वे यह अनादि मर्यादा तोड़ दें तो उनके सिर पर दोष आता है :

हंस चुगैं ना घोंघी सिंह चरैं न घास॥
सिंह चरै ना घास मारि कुंजर को खाते।
जो मुरदा ह्वै जाय ताहि के निकट न जाते॥
वे ना खाहिं अमुद्ध रीत कुल की चलि आई।
खाये विनु मरि जाहिं दाग ना सकहिं लगाई॥
सन्त सभन सिरताज धरन धारी सो धारी।
नई वात जो करैं मिलत है उनको गारी॥

भीख न माँगै सन्त जन कहि गये पलटूदास ।
हंस चुगैं ना घोंघी सिंह चरैं ना घास ॥
(भाग १, कुंडली २४०)

पलटू साहिब कहते है कि सन्तों के पास सतनाम का वह अमूल्य धन होता है जिसको पाकर किसी दूसरे धन की आवश्यकता ही नहीं रहती। आप कहते हैं कि माया भी नाम की दासी है। जब नाम रूपी स्वामी वश में आ जाये तो माया रूपी दासी अपने आप ही वशीभूत हो जाती है। माया सन्तों के पीछे दौड़ती है परन्तु सन्त उसको दूर ही रखते है क्योंकि नाम में लीन हुए सन्त को किसी दूसरी वस्तु की इच्छा ही नही होती। उसके अन्दर सच्चा सन्तोष होता है तथा उसको इसमें से ही छत्तीस पदार्थों का स्वाद मिल जाता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा तथा हाकिम नाम में लीन ऐसे सन्तों के आगे कर-बद्ध उपस्थित रहते है। वे उन्हें अनेक प्रकार की सेवा, भेंट देना चाहते हैं, परन्तु सन्त-जन किसी से पाई तक नहीं लेते। वे माया से निर्लिप्त तथा निश्चिन्त होते है। उनके पास कौड़ी तक भी न हो, तो भी वे शाहो के शाह होते है :

कौड़ी गाँठि न राखई हमा-नियामत[1] खाय ॥
हमा-नियामत खाय नहीं कुछ जग की आसा ।
छत्तिस व्यंजन रहै सबर से हाजिर खासा ॥
जेकरे है सतनाम नाम की चेरी माया ।
जोरू कहवाँ जाय खसम जब कैद में आया ॥
माया आवै चली रैनि दिन मैं दुरियावों ।
सतगुरु दास कहाय नहीं मैं माँगन जावों ॥
राजा औ उमराव हाथ सब बांधे आवैं ।
द्वारे से फिरि जायँ नही फिर मुजरा पावैं ॥

---

१. सब उत्तम वस्तुएं खाते हैं अर्थात् अन्तर में आध्यात्मिक आनन्द उठाते हैं।

जंगल में मंगल करैं पलटू वेपरवाय।
कौड़ी गांठि न राखई हमा-नियामत खाय॥
(भाग १, कुंडली २४४)

जिस प्रकार सन्त-जन केवल स्वयं कमाया हुआ धन खाते हैं, उसी प्रकार वे ग्रन्थों, वेदों तथा शास्त्रों में से पढ़े हुए सच का वर्णन नहीं करते, वे सदैव अपने निजी अनुभव तथा स्वयं कमाए हुए सच का प्रचार करते हैं। दादू साहिव कहते है कि लोग तो सुनी-सुनाई वातें करते है परन्तु मैं प्रत्यक्ष आँखों से देखे हुए सच का वर्णन करता हूं : 'दादू देखा दीदा, सव कोई कहत सुनीदा।' इसी प्रकार पलटू साहिव कहते हैं कि मेरा भ्रम का पर्दा दूर हो गया है तथा मुझे परम-सत्य के साक्षात दर्शन हो गये हैं। मुझे सत्य को छिपाने तथा असत्य कहने की आवश्यकता नहीं है। मैंने जिस प्रकार सत्य को देखा है, उसी प्रकार उसे साफ़-साफ़ प्रकट कर दूंगा :

बूझी वात खुला अव परदा, क्योंकर साच छिपावौं हो।
जैसन देखौं तैसन भाखौं, मैं ना झूठ कहावौं हो।
(भाग ३, शब्द ११९)

कई अन्य सन्तों की तरह पलटू साहिव ने परमात्मा के साथ अपनी अभेदता की ओर संकेत दिया है। कवीर साहिव ने कहा है : 'राम कवीरा एक भये हैं' (आदि ग्रन्थ, ९६९)। नामदेव जी ने कहा है : 'नामे नाराइन नाही भेदु' (आदि ग्रन्थ, ११६६)। पलटू साहिव भी अपने आप को उस अनादि शक्ति के साथ अभेद हो चुका कहते हैं, जो सव का आदि तथा जगत के कर्त्ता का भी कर्त्ता है। आप कहते हैं कि सन्त उस अगम, अनादि मण्डल के वासी होते हैं जो प्रलय, महा-प्रलय से भी ऊपर है। इस दृष्टि से वे कर्त्ता के भी कर्त्ता हैं। तीन गुण, पाँच तत्त्व, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, मन, माया आदि सवको नाश हो जाना है, परन्तु सन्त-जन उस अमर, अनादि मण्डल के वासी होते हैं जो आदि-अन्त से परे और ऊपर हैं :

आदि अंत हम ही रहे सब में मेरो वास ॥
सब में मेरो वास और ना दूजा कोई ।
ब्रह्मा विस्नु महेस रूप सब हमरै होई ॥
हमहीं उतपति करैं करैं हमहीं संहारा ।
घट घट में हम रहैं रहैं हम सब से न्यारा ॥
पारब्रह्म भगवान अंस हमरैं कहवाये ।
हमही सोहं सब्द जोति ह्वं सुन्न में आये ॥
पलटू देह के धरे से वे साहिब हम दास ।
आदि अंत हम ही रहे सब में मेरो वास ॥

(भाग १, कुंडली १७८)

आप कहते हैं कि सन्त-जन परमात्मा से अभिन्न हैं वे गुप्त प्रभु का प्रकट रूप है, प्रत्यक्ष रूप हैं। इसलिए न कोई परमेश्वर से बड़ा है न सन्तों से :

संका नाहिं करौं काहू की, हमसे बड़ कोउ नाही हो ।
पलटूदास कवन है दूजा, हमही हैं सब माही हो ॥

(भाग ३, शब्द ११९)

सन्त-जन परमेश्वर की तरह सर्व-व्यापक होते हुए भी उसी के समान निर्लेप, निर्वैर तथा निर्भीक होते हैं। वे केवल सत्य की प्रत्यक्ष मूर्ति होते है और सत्य का ही व्यवहार और प्रचार करते हैं। वे किसी को डराते नही, और किसी से डरते भी नहीं। जो कुछ उन्हे कहना होता है, नम्रता और प्रेम-पूर्वक कहते हैं, परन्तु कहते पूरी निडरता और दिलेरी से हैं। पलटू साहिब ने भी बड़ी निडरता के साथ सच्ची आध्यात्मिकता का प्रचार किया। उन्होंने एक ओर जीवों को परमात्मा के मिलाप का परमात्मा द्वारा सृजन किया गया अन्तर्मुख मार्ग दिखाया तथा दूसरी ओर उनको हर तरह के बाहरमुखी भ्रमों में से निकालने का प्रयत्न किया। आपने परमात्मा की प्राप्ति के लिए शब्द या नाम का मार्ग बताया तथा प्रत्येक प्रकार के बाहरमुखी कर्म-काण्ड का जोरदार खण्डन किया। आपने लोगो को समझाया कि

तीर्थों और मूर्तियों में नहीं है। लोग अनेक प्रकार के तीर्थों पर जाते हैं तथा अनेक प्रकार की मूर्तियों को पूजते हैं परन्तु मूर्तियां जड़ हैं और तीर्थों के पानी मन का मैल नहीं धो सकते। मन को धोने वाला तथा परमात्मा के साथ मिलाने वाला वास्तविक साधन नाम या शब्द सन्तों के पास है परन्तु लोग जगह-जगह भटकते फिरते हैं तथा सत्य से खाली हैं :

सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम ॥
देखे चारो धाम सबन माँ पाथर पानी।
करमन के बसि पड़े मुक्ति की राह भुलानी ॥
चलत चलत पग थके छीन भइ अपनी काया।
काम क्रोध नहिं मिटे बैठ कर बहुत नहाया ॥
ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच समाना।
पाथर में गयो भूल संत का मरम न जाना ॥
पलटू नाहक पचि मुए सन्तन में है नाम।
सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम ॥

(भाग १, कुंडली २०८)

आप कहते हैं कि मैंने मूर्तियों की पूजा और तीर्थ-स्थानों का बहु... भ्रमण किया परन्तु कहीं भी प्रभु के दर्शन न हुए। व्रत भी रखे, ग्रन्... का पाठ भी सुना, योग भी धारण किया, जप-तप भी किया, मा... भी फेरी तथा षट-दर्शन भी खोजे, परन्तु कुछ भी प्राप्त न हुअ... इसके विपरीत जब सन्तों की शरण ली तब सहज ही उस प्रियतम... मिलाप हो गया :

तिरथ में बहुत हम खोजा, उहाँ तो नाहिं कुछ पाया।
मूरति को पुजि पछिताने, नजर में नाहिं कुछ आया ॥
मुए हम व्रत के करते, वेद को सुना चित लाई।
जोग औ जुगति करि थाके, सजन की खबर नहिं पाई ॥
किया जप तप फेरि माला, खोजा षट दरस में जाई...
कोई ना भेद बतलावै, सबै सतसंग गुहराई...

परे जब संत के द्वारे, संत ने आप सब कीन्हा।
दास पलटू जभी पाया, गुरु के चरन चित लाया॥
(भाग ३, शब्द १००)

आपने लोगों को कई अन्य भ्रमों से निकालने का भी प्रयत्न किया। हिन्दूओं के मन्दिरों के द्वार पूर्व की ओर तथा मुसलमानों की मस्जिदों के पश्चिम की ओर होते है। इसी प्रकार मुसलमान कब्रें तथा हिन्दू समाधियां या मूर्तियां बनाते हैं। परन्तु जड़ वस्तुओं की पूजा और आराधना निरर्थक है। परमात्मा जिसको भी मिला है अन्दर मिला है। आप बड़ा सुन्दर उदाहरण देते है कि जैसे मरा हुआ बैल घास नहीं खा सकता वैसे ही किसी जड़ वस्तु मे कुछ आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता :

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिन्दू औ तुरुक दुई ओर धाया।
पूरब मूरति बनी पच्छिम में कबुर है,
हिन्दू और तुरुक सिर पटकि आया॥
मूरति औ कबुर ना बोलें ना खाय कछु,
हिन्दू औ तुरुक तुम कहा पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आप मे,
मुए बैल ने कब घास खाया॥
(भाग २, रेखता ८६)

आपने लोगों को देवों-पितरों, भूतों-प्रेतों आदि की पूजा के विरुद्ध सावधान करते हुए कहा है :

१. देव पितर सब झूठ सकल यह मन की भ्रमना।
यही भरम में पड़ा लगा है जीवन मरना।
(भाग १, कुंडली २०६)

२. पूजत भूत बैताल मुए पर भूत होई। (भाग १, कुंडली २०६)

आपने जीवों को उन लोगों से भी सावधान किया है जो स्वयं सच्चे ज्ञान से कोरे है, परन्तु संसार के गुरु होने का दावा करते हैं :

समझाया है कि ऐसे स्वार्थी लोग मठ बना लेते हैं तथा लोगों से अनेक प्रकार की सेवा और भेंट वसूल करते हैं। वे सत्य के निजी अनुभव से खाली होते हैं तथा सन्तों-महात्माओं की वाणी को काट-छांट कर नई वाणी बना लेते हैं। वे स्वयं को पूर्ण महात्मा कहलवाते हैं, परन्तु वास्तव में उनके पास कुछ भी नहीं होता :

संतन के बीच में टेढ़ रहैं, मठ बाँधि संसार रिझावते हैं।
दस बीस सिष्य परमोधि लिया, सब से वह गोड़ धरावते हैं॥
संतन की बानी काटि के जी, जोरि जोरि के आपु बनावते हैं।
पलटू कोस चार के गिर्द में जी, सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं॥
(भाग २, झूलना २१)

आपने कर्म-काण्डी पंडों और ब्राह्मणों की भी आलोचना की। आप उनको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम ऊँची जाति का अभिमान करते हो परन्तु तुम्हारा रहन-सहन कसाइयों जैसा है। तुम पेट के लिए जीव-हत्या करते हो तथा जीवों पर जरा भी दया नहीं करते। तुम मस्तक पर लम्बा तिलक लगाकर सच्चे भक्त होने का प्रदर्शन करते हो परन्तु तुम्हारी बुद्धि बगुले भक्तों जैसी है। तुम राम-नाम की सच्ची भक्ति को छोड़ कर देवी-देवताओं की झूठी पूजा में लगे हुए हो। गाय की पूजा करते हो, परन्तु भेड़-बकरियों को खा जाते हो। यद्यपि सब जीव बराबर हैं तथा किसी प्रकार का माँस खाना भारी अज्ञानता है। प्रत्येक हृदय में एक परमेश्वर का निवास है तथा हर प्रकार के माँस से परहेज करने में ही जीव का भला है। यदि इस विषय में कोई सन्देह है तो भागवत गीता को पढ़ कर देख लो कि उसमें क्या उपदेश दिया गया है :

भलि मति हरल तुम्हार पाँडे ब्रम्हना॥
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करनब करौ कसाई।
जीव मारि कै काया पोखौ, तिनको दरद न आई॥

[1]राम नाम सुनि जूड़ी आवै, पूजौ दुर्गा चंडी ।
लम्वा टीका कांध जनेऊ, वकुला जाति पखंडी ॥
बकरी भेड़ा मछली खायो, काहे गाय वराई ।
रुधिर मांस सब एकै पांडे, थू तोरी वम्हनाई ॥
सब घट में साहिब एकै जानौ, यहि मां भल है तोरा ।
भगवत गीता बूझि विचारो, पलटू करत निहोरा ॥

(भाग ३, शब्द १४०)

इस प्रकार की स्पष्ट वादिता का परिणाम यह हुआ कि सब धर्मों, सम्प्रदायों की पुरोहित श्रेणी पलटू साहिब की शत्रु बन गई। ज्यों-ज्यों लोगों पर पलटू साहिब के निष्पक्ष विशुद्ध आध्यात्मिक तथा स्वार्थ रहित उपदेश का प्रभाव बढ़ता गया, कट्टर पंथी, स्वार्थी लोग तथा अपने आप को धर्म के रखवाले समझने वाले पांडे, पुरोहित तथा मुल्ला आपकी जान के दुश्मन बनते गए। पलटू साहिब ने संकेत किया है कि मैं तो हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान समझ कर एक ही सत्य का ज्ञान देता हूँ परन्तु दोनों धर्मों मे मेरे शत्रु पैदा हो गए हैं। इसी प्रकार आप कहते हैं कि मैंने सच्चे नाम की भक्ति का ऐसा मार्ग चलाया है कि छोटे-बड़े सभी मेरा अनुसरण करने लगे हैं। पर्दे मे रहने वाली स्त्रियां भी मेरे नाम की दुहाई सुनकर दौड़ी आती हैं। लोग शब्द के निरन्तर अभ्यास द्वारा तीनों गुणों की कैद से मुक्त हो रहे हैं। उनमें सच्चा वैराग्य तथा त्याग पैदा हो रहा है। अन्य सब लोग मेरे साथ खुश हैं परन्तु बैरागी, पण्डित तथा काजी मेरी जान के शत्रु बन गए हैं:

ऐसी भक्ति चलावें सची नाम की कीच ॥
सची नाम की कीच बूढा ओ बाला गावै ।
परदे में जो रहै सब्द सुनि रोवत आवै ॥

---

१. जूड़ी=ठण्ड लग कर चढ़ने वाला ज्वर सच्चे नाम की [illegible] नाम सुन कर बुखार हो जाता है परन्तु देवी-देवताओं की पूजा के लि[illegible] रहते हो।

भक्ति करे निरधार रहै तिर्गुन से न्यारा ।
आवै देय लुटाय आपु ना करै अहारा ।।
मन सब को हरि लेय सभन को राखै राजी ।
तीन देख ना सकै वैरागी पंडित काजी ।।
पलटूदास इक बानिया रहै अवध के बीच ।
ऐसी भक्ति चलावै मची नाम की कीच ।।
(भाग १, कुंण्डली ५८)

सन्त तो निस्वार्थ भाव से निर्मल आध्यात्मिकता का प्रचार करते हैं तथा किसी से एक पाई तक नहीं लेते परन्तु पंडित, मुल्ला तथा भेखी लोग उनको अपने रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट समझते हैं क्योंकि सन्तों के अन्तर्मुख उपदेश से उनकी दुकानदारी पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए पलटू साहिब का विरोध होना स्वाभाविक ही था। ज्यों-ज्यों उनकी लोक-प्रियता बढ़ी, कट्टर पंथी लोगों का विरोध भी बढ़ता गया। पलटू साहिब कहते हैं कि सब वैरागी, योगी तथा महन्त आदि इकट्ठे होकर मेरा विरोध कर रहे हैं। उनसे मेरी बड़ाई तथा लोक-प्रियता सहन नहीं हो रही। वे कहते हैं कि हम सबसे बड़े महन्त हैं परन्तु कोई हमारे पास नहीं आता तथा इस कल के पैदा हुये बनिये ने सारी दुनिया अपने पीछे लगा ली है। आप कहते हैं कि चारों वर्णों के लोग मुझ से परमार्थ का माल लूट कर ले जा रहे हैं, परन्तु योगी, महन्त तथा वैरागी मेरी जान लेने के लिये तुले बैठे हैं :

सब वैरागी बटुरि कै पलटुहि किया अजात ।।
पलटुहि किया अजात पर्भुता देखि न जाई ।
बनिया काल्हिक भक्त प्रगट भा सब दुनियाई ।।
हम सबसे बड़े महन्त ताहि को कोउ न जानै ।
बनिया करै पखंड ताहि को सब कोउ मानै ।।
ऐसी इर्षा जानि कोऊ ना आवै खाई ।
बनिया ढोल बजाय रसोई दिया लुटाई ।।

मालपुवा चारिउ वरन बाँधि लेत कछु खात ।
सब बैरागी बटुरि कै पलटुहि किया अजात ॥
(भाग १, कुडली २५५)

कहा जाता है कि उनको कई प्रकार से तंग किया गया परन्तु वे पूरी दिलेरी के साथ सत्य का प्रचार करते रहे । जब विरोधियों की किसी प्रकार कोई पेश न चली तो उन्होंने अवसर पाकर एक दिन उनकी कुटिया को आग लगा दी तथा पलटू साहिब को जीवित जला दिया ।

पलटू साहिब के साथ भी वही वर्ताव हुआ जो सुकरात, हज़रत ईसा, शम्स-तबरेज, गुरु अर्जुनदेव तथा गुरु तेग बहादुर के साथ हुआ । क्यों ? केवल इस लिए कि वे भी सब दूसरे सन्तों की तरह लोगों को सत्य की राह दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। कितने आश्चर्य की बात है कि हम संसार के सच्चे हितैषियों तथा मानवता की सबसे अधिक निष्काम सेवा करने वाले सन्तों के साथ इस प्रकार का वर्ताव करते हैं ।

विचारणीय है कि जिन सन्तों का अलग-अलग धर्मों के पुरोहित विरोध करते है, सन्तों के जाने के पश्चात् वही पुरोहित लोग उन्हीं सन्तों के नाम पर नये कर्म-काण्ड जारी करके लोगों को गुमराह करना आरम्भ कर देते है । सोचा जाए कि जब पूर्ण सन्त, परमात्मा का रूप होते है—जिस प्रकार कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब, गुरु अर्जुनदेव जी, दादू साहिब, पलटू साहिब आदि थे, फिर न उनकी कोई जात-पात, कौम-मजहब हो सकती है तथा न ही उनका किसी विशेष जाति या धर्म के प्रति कम या अधिक प्यार हो सकता है । पूर्ण सन्तों की सबसे बड़ी निशानी यह है कि वे समदर्शी, निस्वार्थी तथा पर-उपकारी होते है ।

वास्तव में उनका विरोध इसलिए नही होता कि उनका मार्ग ग़लत होता है बल्कि इसलिए होता है कि उनका अन्तर्मुख मार्ग लोगों के ध्यान को बाहर के कर्म-काण्डों तथा बनावटी भेदभाव से ऊपर उठा

है। यह बात किसी भी धर्म के पुरोहितवाद के पक्ष में नहीं होती। इसलिए प्रत्येक धर्म के पुरोहित, जो एक दूसरे के विरोधी होते हैं, सन्तों का विरोध करने में इकट्ठे हो जाते हैं।

परन्तु जिस प्रकार स्वार्थी लोगों का अपना स्वभाव होता है, सन्तों की भी अपनी मर्यादा होती है। वे दया, क्षमा, शीतलता तथा प्रेम के पुंज होते हैं। संसार के इतिहास में कभी किसी पूर्ण सन्त ने कष्ट देने वालों तथा जान लेने वालों को श्राप नहीं दिया तथा उनका बुरा नहीं सोचा। वे ज्ञान स्वरूप होते हैं तथा सब में एक परमात्मा का प्रकाश देखते हैं। इसलिए वे शत्रु तथा मित्र सबके साथ एक जैसा प्यार करते हैं। पूर्ण सन्तों में से परोपकार तथा प्रेम ऐसे फूट कर निकलता है जिस प्रकार चन्दन में से सुगन्धि। यदि करोड़ों मनमुख या असन्त विरोध करें तो भी सन्त-जन अपनी शीतलता तथा सुगन्धि का त्याग नहीं करते। वे प्रत्येक कष्ट सहकर भी सच्चे ज्ञान की सुगन्धि चारों ओर फैलाते रहते हैं। कबीर साहिब कहते हैं :

कबीर संतु न छाडै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत ॥
मलिआगरु भुयंगम बेढ़िउ त सीतलता न तजंत ॥
(आदि ग्रन्थ, १३७३)

पलटू साहिब ने स्वयं कपास के रूपक के द्वारा यह समझाने का प्रयत्न किया है कि सन्त-जन ऐसे सच्चे परोपकारी होते हैं कि अनेक प्रकार के दुःख सहते हुए भी मन्य तथा जन-कल्याण का मार्ग नहीं त्यागते। अज्ञानता की शिकार अपनी भूली भटकी सन्तान के लिए प्रभु रूप सन्त ऐसा नहीं करेंगे तो और कौन करेगा ?

संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास ॥
जैसे सहत कपास नाय चरखा में ओटैं।
रुई धर जब तुमैं हाथ से दोऊ निभोटैं ॥
रोम रोम अलगाय पकरि के धुनिया धूनी।
पिउनी नेंह दै कात सूत ले जुलहा बूनी ॥

धोबी भट्ठी पर धरी कुन्दीगर मुँगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि जोरि कै किया तयारी॥
पर-स्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।
संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास॥
(भाग १, कुंडली २६)

भाषा तथा शैली :

निस्सन्देह पलटू साहिब एक महान् सन्त-कवि हुए हैं। आप की वाणी कबीर साहिब, दादू साहिब, तुकाराम आदि महान् सन्तों की श्रेणी में आती है। इसमें वही आध्यात्मिकता भरी हुई है, जो इन सन्तों की वाणी में है। केवल कवित्व का प्रभाव डालने के लिए वाणी की रचना करना न सन्तों का मनोरथ होता है न ही पलटू साहिब का यह उद्देश्य था। उनका यह भी अभिप्राय न था कि उनकी रचना का प्रयोग केवल मनोरंजन या राग-रंग के लिये किया जाए। न ही कवित्व या कला-कौशलता किसी सन्त की महानता का कारण होती है। उनकी महानता का आधार उनका आध्यात्मिक अनुभव होता है जिसे वे कविता, गद्य या प्रवचन आदि किसी रूप में भी प्रकट कर सकते हैं। 'साध वचन वार्त्तक में (गद्यमय) कविता होते हैं'[१] क्योंकि उनकी वास्तविक बड़ाई शब्दों की सरलता तथा भावों की गम्भीरता में होती है। उनका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिकता का प्रचार होता है। वे जन-साधारण एवं विद्वानों दोनों को ही प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। यही बात पलटू साहिब की वाणी के विषय में भी कही जा सकती है।

पलटू साहिब ने अन्य सन्तों की तरह कुंडलिया, झूलने, रेख्ता

१. प्रो० पूर्णसिंह

अरिल्ल, रेखता, ककहरा, बारह-मासा, उल्ट-बासियां, साखियां आदि अनेक काव्य रूपों तथा काव्य भेदों में उच्चकोटि की रचना की परन्तु अनेक काव्य गुणों से भरपूर इस बाणी की वास्तविक महिमा इसमें व्यक्त आध्यात्मिक उपदेश हैं। पलटू साहिब ने इस उपदेश को सरल, सुन्दर तथा लोकप्रिय ढंग से व्यक्त किया है ताकि जन-साधारण तथा विद्वान दोनों इसको समान रूप से समझकर लाभान्वित हो सकें। समय के लम्बे अन्तराल के कारण इस भाषा के कुछ शब्द आज समझने कठिन है परन्तु उस समय ये शब्द सब लोग समझ सकते थे।

पलटू साहिब ने अपनी अधिकाँश बाणी की रचना छोटे आकार के काव्य रूपों में की है, परन्तु दो लम्बे आकार वाले काव्य 'ककहरा' तथा 'बारहमासा' भी लिखे हैं। ककहरा, पट्टी, बावन-अक्षर या सिहरफी से मिलता जुलता काव्य का रूप है जिसमें किसी वर्णमाला के अक्षरों को आधार बना कर कोई आध्यात्मिक उपदेश दिया जाता है। इसी प्रकार बारह-मासा में वर्ष के बारह महीनों को एक एक करके आध्यात्मिक ज्ञान की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता है। पलटू साहिब के ककहरे तथा बारह-माह में परमार्थ के लगभग सभी अंग आ जाते हैं तथा इनमें गूढ़ परमार्थी विषय भी बड़ी सरलता से व्यक्त किए गए हैं। 'ककहरा' तथा 'बारहमाह' दोनों गाए जाने के लिए हैं तथा बहुत लोकप्रिय हैं।

इसी प्रकार पलटू साहिब ने कुछेक उल्टबासियों की रचना भी की है। आप से पहले कबीर साहिब आदि सन्तों ने अपनी बाणी में काव्य के इस रूप का बहुत प्रयोग किया है। 'उल्ट-बासी' की यह विशेषता होती है कि सरसरी नज़र से देखने में वह व्यर्थ तथा गलत लगती हैं, परन्तु वास्तव में इसमें गहरे आध्यात्मिक भेद समझाए गए होते हैं। कई बार इस में ऐसे बारीक आध्यात्मिक रहस्य वर्णन किए होते हैं कि बिना किसी पूर्ण सन्त-सतगुरु की सहायता के इसके वास्तविक भाव को समझ सकना असम्भव होता है।

पलटू साहिब की बाणी के सरसरी अध्ययन से भी पता लग जाता

है कि आपका कथन बहुत सीधा-सादा तथा शक्तिशाली है। वह अधिकतर एक कुंडली या शब्द में एक भाव का वर्णन करते है परन्तु लोक-हृदय को प्रेरित करने के लिए आप उस भाव के अनेक पहलू कई कई साधनों, उपमाओं, रूपकों तथा संकेतों की सहायता से प्रकट करते हैं। 'कुंडली' इस कार्य के लिए काव्य का विशेष तौर से सहायक रूप है। इसमें यह विशेषता है कि आरम्भ की पंक्ति का भाव दूसरी पंक्ति में भी चलता है तथा पहली पंक्ति ही अन्तिम पंक्ति के रूप मे दोहराई जाती है। इस प्रकार एक विचार एक गोलाई मे बँध जाता है तथा सारी कुंडली मे एक ही बात को बार-बार कई ढंग से वर्णन किया जाता है जिससे कही हुई बात को हृदय पर गहरी छाप पड़ जाती है। इसी प्रकार अन्तिम चार पंक्तियों का होता है। चौथी पंक्ति 'अरे हाँ पलटू' से शुरू होती है तथा इस में पद के प्रमुख भाव पर जोर दिया होता है।

पलटू साहिब की अभिव्यक्ति में ऐसी लय, सहज गति तथा आत्माभिव्यक्ति है कि जो कोई भी इसको पढ़ता या सुनता है वह स्वमेव इसके बहाव में बह जाता है। गंभीर बात को सहज में सहज बना कर वर्णन करना, लम्बी बात को थोड़े में व्यक्त कर देना, एक बात को कई ढंग से कहना, रहस्यमय भेदों को लोक जीवन मे ली गई उपमाओं, संकेतों द्वारा प्रकट करना तथा निजी अनुभव से प्राप्त सत्य को निष्कपटता, दिलेरी तथा निडरता से कहना पलटू साहिब की वाणी के शिरोमणि गुण हैं। इस वाणी मे न दिखावा है न बनावट। इसमे वह धैर्य, दृढ़ता, भरोसा तथा बल है जो सत्य के पूर्ण ज्ञान तथा सत्य के निरन्तर निजी स्पर्श के बिना पैदा हो सकना असम्भव है। अज्ञानता तथा भ्रम के अंधेरे को दूर करना तथा सच्चे ज्ञान का प्रकाश दिखाना, इस वाणी का दोहरा काम है।

इस वाणी मे सत्य का सुन्दर, रमणीक तथा कल्याणकारी वर्णन है तथा यह वाणी एक पूर्ण सन्त की अपार आध्यात्मिक गमता तथा रसिक काव्य कोमलता का प्रमाण है। कोई आश्चर्य नहीं कि शताब्दियों

के बाद भी इस वाणी का सत्य पूर्ववत: नवीन, स्वस्थ तथा सुप्रिय है। यह वाणी आज भी दिल को आकर्षित करती है। जो कोई एक बार इस वाणी को पढ़-सुन लेता है, वह इसे और इसके रचयिता से प्रेम किए बिना नहीं रह सकता।

पलटू साहिब की वाणी का प्रत्येक शब्द अनमोल रत्न है। प्रत्येक कविता में कई भाव तथा रहस्य भरे हुए हैं। इसका जितना अधिक अध्ययन करते हैं, अर्थ उतने ही अधिक गम्भीर होते जाते हैं। यदि इस वाणी पर अमल किया जाए तो कहना ही क्या। पलटू साहिब की सारी वाणी एक जैसी प्यारी तथा रसमय है, परन्तु इसमें से कुछ चुने हुए भाग अलग-अलग शीर्षकों के अन्तर्गत पुस्तक के दूसरे भाग में संकलित किए गए हैं जिससे पाठक इसकी महानता का अनुभव कर सकते हैं, इसका रस-पान कर सकते हैं तथा इससे प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

उपदेश :

सब सन्तों की तरह पलटू साहिब का उपदेश भी बहुत सीधा सादा है। वे एक परम-पिता-परमात्मा के उपासक हैं तथा उसको कुल सृष्टि का कर्त्ता, पालक, संहारक तथा उद्धारक मानते हैं। वे सृष्टि को उस परमेश्वर की लीला कहते हैं तथा उस कर्त्ता को अपनी रचना के कण-कण में समाया हुआ देखते हैं। आप कहते है कि वह साहिब स्वयं धरती तथा आकाश के खेल को रचने वाला है। वह त्रिलोकी की फुलवाड़ी का गुप्त माली है। वह स्वयं ही चार खानियों, चौदह लोकों तथा चौरासी लाख योनियों को पैदा करने वाला है। यह उसकी आश्चर्यमय कला या कारीगरी है कि संसार उस में है तथा वह संसार में है। उसने स्वयं ही संसार का खेल पैदा किया है तथा स्वयं उसका तमाशा देख रहा है। उस प्यारे प्रियतम की कुदरत कहने और सुनने से परे है :

ऐसी कुदरति तेरी साहिब, ऐसी कुदरति तेरी है ॥
धरती नभ दुइ भीत उठाया, तिस में घर इक छाया है ।
तिस घर भीतर हाट लगाया, लोग तमासे आया है ॥
तीन लोक फुलवारी तेरी, फूलि रही बिनु माली है ।
घट घट बैठा आपै सींचै, तिल भर कहीं न खाली है ॥
चारि खानि औ भुवन चतुरदस[१], लख चौरासी बासा है ।
आलम तोहि तोहि में आलम, ऐसा अजब तमासा है ॥
नटवा होइ कै बाजी लाया, आपुइ देखनहारा है ।
पलटूदास कहौं मैं का से, ऐसा यार हमारा है ॥
(भाग ३, शब्द ९)

---

१. चार+दस=चौदह ।

वह परमेश्वर जो सबका कर्त्ता है, सबमें विराजमान् है। वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ, सृष्टि के कण-कण में रमा हुआ है। स्त्री-पुरुष, देवता-दानव, पशु-पक्षी, इन्सान-हैवान, मूर्ख-ज्ञानी, गुरु-चेला आदि सबमें उस एक प्रभु का प्रकाश विद्यमान है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है :

साहिब आप बिराजै सकल घट, चारि खानि बिच राजै ॥
नारी पुरुष देव औ दानव, बाग फूल औ माली ।
हाथी घोड़ा बैल ऊँट में, कतहूँ रहै न खाली ॥
मच्छ कच्छ घरियार अचर चर, आग पवन औ पानी ।
तीतर बाज सिंह औ हरिना, पूरन चारिउ खानी ॥
ज्ञानी मूढ़ गुरू औ चेला, चोर साहु भरभूना[1] ।
बिस्वा[2] बिसनी[3] भेड़ कसाई, नाहिं कोई घर सूना ॥
यह सरीर नासक[4] है भाई, जीव कै नास न होई ।
पलटूदास जगत सब भूला, भेद न जानै कोई ॥
(भाग ३, शब्द ६)

वह परमात्मा प्रत्येक घर में है परन्तु किसी को दिखाई नहीं देता। वह सबके अन्दर इस प्रकार गुप्त है, जिस प्रकार दूध में घी, फूल में सुगन्धि, मेंहदी में लाली, लकड़ी में अग्नि तथा धरती में पानी है। अज्ञानी पुरुष अन्दर बैठे प्रियतम को बाहर ढूंढता फिरता है जिस के फलस्वरूप उसके हाथ कुछ नहीं आता। जिस प्रकार बीज में वृक्ष समाया हुआ है, उसी प्रकार परमात्मा आत्मा में समाया हुआ है। आत्मा परमात्मा ही की तरह अजर, अमर, अविनाशी है, परन्तु यह माया में लिप्त होकर अपने आपको तथा अपने रचयिता को भूल कर अनेक दुःखों में घिर गई है। जब तक यह माया की ओर से मुँह मोड़ कर स्वयं की ओर नहीं पलटती, इसका परमात्मा से वियोग तथा उससे पैदा होने वाले दुःख कभी दूर नहीं हो सकते :

---

१. भड़भूंजा, २. वेश्या, ३. विषयी, ४. नाशवान।

नो में है तेरा राम बैरागिन, भूलि गया तोहि धाम ॥
घिव ज्यों रहै दूध के भीतर, मथे बिनु कैसे पावै ।
फूल मँहै ज्यों बास रहतु है, जतन सेती अलगावै ॥
मिहदी मँहै रहै ज्यों लाली, काठ में अगिन छिपानी ।
खोदे बिना नहीं कोइ पावै, ज्यों धरती में पानी ॥
[1]ऊख मँहै ज्यो कंद रहतु है, पेड़ रहै फल माहीं ।
देस देसंतर ढुंढत फिरतु है, घट की सुधि है नाहीं ॥
पूरन ब्रह्म रहै तोही में, क्यों तू फिरै उदासी ।
पलटूदास उलटि कै ताकै तू ही है अविनासी ॥
(भाग ३, शब्द ७)

पलटू साहिब कहते हैं कि वह परमात्मा अवश्य ही घट घट में बैठा है, परन्तु माया ने बुरी तरह जीव को भरमाया हुआ है। माया बड़ी बलवान्नी है। इसने सारे संसार को अपने वश में कर रखा है। इसके आगे किसी का वश नही चलता। यह ठगनी अनेक रूप धारण करके जीव को ठग लेती है। यह कभी सोने-चांदी का रूप धारण कर लेती है तो कभी सुन्दर नारी का वेश धारण करके आ जाती है। सारा संसार इस मोहिनी का दास है। बड़े-बड़े योगी, जपी, तपी तथा गुफाओं में तप साध रहे त्यागी इसकी मार से नहीं बच सके। सन्तों को छोड़ कर यह सारे संसार को भरी दुपहरी में लूट लेती है.

माया बड़ी बहादुरी लूटि लिहा संसार ॥
लूटि लिहा संसार कहू को मानै नाही ।
तनिक उजुर जो करै ताहि को कच्चा खाही ॥
कहूं कनक कहुं कामिनि सुन्दर भेष बनावै ।
[2]ताकै जेकरी ओर नजर से मारि गिरावै ॥
जोगी जती औ तपी गुफा से पकरि मँगावै ।
बचै न कोऊ भागि दुपहरै लूटा जावै ॥

---

१. जिस प्रकार गन्ने में मिठास या चीनी होती है, २ जिस की ओर देखती है।

पलटू डरपै संत से वे मारैं पैजार[1] ।
माया बड़ी बहादुरी लूटि लिहा संसार ।।
(भाग १, कुंडली १८४)

माया की तरह ही मन भी जीव का बड़ा ज़बरदस्त विरोधी है। अन्दर बैठा दुश्मन है जिससे बच सकना बहुत कठिन है। पलटू [सा]हब कहते हैं कि मन बहुत शक्तिशाली तथा चंचल है। यह बिना [प]ाँवों के पल भर में हज़ारों मील की दूरी पर पहुँच जाता है। लाखों [य]त्न करने पर भी यह अन्तर का वैरी बस में नहीं आता :

मन ना पकरा जाय बहादुर ज्वान है ।
करत रहै खुरखुंद[2] बड़ा सैतान है ।।
ऐसा यार हरीफ[3] रहत मन हलक[4] में ।
अरे हाँ पलटू उड़ता कोस हजार पच्छ[5] बिनु पलक में ।।
(भाग २, अरिल ११६)

मन शरीर रूपी देश का स्वामी बना बैठा है। लोभ और मोह इसके आज्ञाकारी कारिन्दे हैं। काम, क्रोध इसके बाँके सिपाही हैं जिनकी सहायता से यह दसों दिशाओं पर अपना राज्य चलाता है। पाप इसका उगाही करने वाला और दुर्मति इसकी ख़ज़ांची हैं। इसने पाँच इन्द्रियों तथा पच्चीस प्रकृतियों को ऐसी चतुराई सिखलाई है कि [कि]सी प्रकार भी जीव इनके जाल से नहीं बच सकता :

मुलुक सरीर में भया नवाब मन,
लोभ औ मोह देवान जा के ।
अमल[6] दस दिसि किहा फौज को राखि कै,
काम औ क्रोध सीपाह[7] बाँके ।।
पाप तहसील वोसूल होने लगी,
कुमति खजानची रहे ता के ।

१. जूती, २. गधे की तरह अड़ी तथा शरारत करता रहता है, ३. शा[...] [ह]लक में अर्थात् अन्दर, ५. पंख, ६. राज, ७. सिपाही, सेना ।

दास पलटू कहै पाँच पच्चीस को,
भया अख्त्यार बेइमान पाके ॥
(भाग २, रेखता ७९)

पलटू साहिब कहते हैं कि मन को मारना इसलिए भी कठिन है कि यह अति सूक्ष्म है। यह न हाड़-मांस का बना हुआ है, न इसकी कोई रूप-रेखा है। जब यह दिखाई ही नहीं देता तो पकड़ा कैसे जाए। यह अति चंचल तथा अस्थिर है। इसकी गति को समझ सकना बहुत कठिन है। यह एक पल मे पूर्ण वैरागी बन कर सब कुछ छोड़ने को तैयार हो जाता है तथा दूसरे क्षण में सारे संसार पर राज्य करना चाहता है। यह पल में रोता है, पल में हँसता है। यह पलों-क्षणों में लाखों मील दूर पहुँच जाता है। लाख यत्न करने पर भी मन नही मरता :

मन मारे मरता नहीं कीन्हे कोटि उपाय ॥
कीन्हे कोटि उपाय नही कोइ मन की जानै ।
मन के मन में और कोई जनि मन की मानै ॥
हाड़ चाम नहिं मास नही कछु रूप न रेखा ।
कैसे लागै हाथ नहीं कोउ मन को देखा ॥
छिन में कथै बैराग छिनै में होवै राजा ।
छिन में रोवै हँसै छिनै में आपु बिराजा ॥
पलटू पलक भरे में लाख कोस पर जाय ।
मन मारे मरता नही कीन्हे कोटि उपाय ॥
(भाग १, कुंडली १८२)

मन बहुरूपिया है। यह कभी हाथी की तरह अहंकार से झूलता है, कभी लोमड़ी की तरह चालाकी और मक्कारी करके अनेक चालें चलता है, कभी कौवे की भांति विष्टा की ओर जाता है, क[illegible] त शक्तिशाली तथा हिंसक बन कर न करने योग्य कार्य [illegible] की हेरा-फेरी समझ सकना आसान नहीं है :

मन हस्ती मन लोमड़ी, मनै काग मन सेर ।
पलटूदास साखी कहै, मन के इतने फेर ।।

(भाग ३, साखी ११३)

यह मन कुमति वाला है। इसकी वृत्ति बाहरमुखी तथा नीच है। यह चोरों का सिरताज है, पत्थर की तरह कठोर तथा शुभ गुणों को त्याग कर अवगुणों की ओर जाता है :

पलटू यह मन अधम है, चोरी से वड़ चोर ।
गुन तजि औगुन गहतु है, तातें वड़ा कठोर ।।

(भाग ३, साखी ११६)

मन तथा माया मुंहज़ोर, नीच, अड़ियल तथा कुमति वाले अवश्य हैं परन्तु इनको वश में करने की भी एक युक्ति है। वह युक्ति है पूरे सतगुरु की शरण तथा सतगुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार अपने अन्दर शब्द या नाम से लिव जोड़ना। पलटू साहिब कहते हैं कि सन्त-सतगुरु परमात्मा की तरह अमर-अविनाशी होते हैं। जब हम उनकी बताई हुई युक्ति के अनुसार अपने अन्दर नाम का दिया जला लेते हैं तो आत्मा को अन्दर नाम का अमृत पीने को मिल जाता है तथा मन और माया के सेवक—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जल कर राख हो जाते हैं। मन-माया के पैदा किए हुए अज्ञान, अविद्या, भ्रम तथा संशय के अंधेरे दूर हो जाते हैं। ज्ञान का प्रकाश हो जाता है तथा मन का काला नाग नियन्त्रण में आ जाता है। अविनाशी प्रभु का रूप सन्त-सतगुरु मन रूपी नाग को पकड़ कर इसका सिर कुचल देते हैं :

काम औ क्रोध को आगि विनु जारि कै,
महादल मोह मैदान टारा ।
पाप औ पुन्न के भरम को छोड़ि कै,
गगन के बीच इक जोति बारा ।।
जीव अमृत पियै चुवै आकास से,
जुक्ति से नाथिया नाग कारा ।

दास पलटू कहै संत सो अमर है,
उलटि कै पकरि तिहुं काल मारा ॥
(भाग २, रेख़ता ८९)

पूर्ण सन्त शाहों के शाह होते हैं। उनके अन्दर शब्द की अलौकिक धुन हर समय बजती रहती है। वे ज्ञान तथा ध्यान में पूर्ण होते हैं। वे संतोष के पुंज होते हैं। वे सुन्न-मण्डल के वासी होते हैं तथा परमेश्वर से अभिन्न और अभेद होते हैं। उनके सिर पर दिव्य प्रकाश का छत्र होता है। वे लोक और परलोक दोनों के स्वामी होते हैं। जब जीव इस प्रकार के समर्थ पुरुष के द्वार का भिखारी बनता है तो इसको उन गुणों की दात मिल जाती है जो इसको माया की मार से बचा लेते हैं, फिर मन-माया इसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते :

बादसाह का साह फकीर है जी,
नौबत गैब का बाजता है।
ज्ञान ध्यान की फौज को साधि के जी,
सबर के तख्त पर गाजता है॥
लाहूत खजाना मारफत का,
सिर नूर का छत्र बिराजता है।
पलटू फकीर का घर बड़ा,
दीन दुनियां दोऊ भीख माँगता है॥
(भाग २, झूलना ८)

ऐसा पूर्ण सन्त स्वयं शब्द स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी होता है। उसकी लिव सदा शब्द से जुड़ी होती है तथा उसको सहज समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। वह अपने सेवक का ध्यान भी अन्तर में शब्द के साथ जोड़ देता है। जब शिष्य सन्त-सतगुरु के बताए हुए उपदेश पर चलता है तो उसको भी अपने सतगुरु वाली सहज समाधि की अनुपम अवस्था प्राप्त हो जाती है तथा वह भी मन-माया के सब विकारों से मुक्त हो जाता है :

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव ॥
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वा की ।
सब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जा की ॥
निस दिन दसा अरूढ़ लगै ना भूख पियासा ।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा ॥
तुरिया सेती अतीत सोधि फिर सहज समाधी ।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी ॥
पलटू तन मन वारिये मिलै जो ऐसा कोउ ।
धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव ॥

(भाग १, कुंडली ५)

संगति का प्रभाव होना स्वाभाविक है। पलटू साहिब समझाते हैं कि सन्त-जन स्वयं चन्द्रमा तथा चन्दन की तरह शीतल होते हैं। इसलिए जो कोई उनकी शरण में जाता है, उसकी मन-माया की प्रत्येक प्रकार की जलन दूर हो जाती है। सन्त स्वयं सहज-अवस्था में होते हैं, इसलिए उनकी शरण लेने वाला व्यक्ति भी मन-माया की चंचलता से मुक्त हो जाता है। सन्त-जन ज्ञान स्वरूप होते हैं, इसलिए उनकी शरण में जाकर जीव मन-माया के सब भ्रमों और चालों से बच जाता है।

सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत ॥
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं ।
जो कोइ आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावैं ॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी ।
कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी ॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगंध लगावैं ।
तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं ॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरंत ।
सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत ॥

(भाग १, कुंडली २३)

मन-माया के जाल में फंसे हुए जीवों को इससे छुड़ा कर परमात्मा से मिलाना पूर्ण सन्तों का इस संसार में आने का वास्तविक उद्देश्य होता है। पूर्ण सन्त परमेश्वर का रूप होते हैं, जिसके कारण उनमें परमेश्वर वाली क्षमा तथा दया-भाव होता है। वे प्रभु की तरह निस्वार्थ होते है। वे प्रभु की तरह ही समदर्शी तथा दयालु होते हैं। वे दुःख-सुख, अच्छे-बुरे, शत्रु-मित्र के द्वैत से ऊपर होते हैं, इसलिए प्रत्येक प्रकार के कष्ट झेलकर वे छोटे-बड़े, शत्रु-मित्र सब पर एक जैसे उपकार तथा प्यार की वर्षा करते हैं। वे मन-माया के विकराल समुद्र में फँसे हुए जीवों को पार उतारने के लिए संसार में आते हैं। इसलिए वे स्वयं निर्बल जीवों के पास पहुँच कर तथा अपनी बाँह पकड़ा कर, उनको पार उतार देते हैं :

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार ॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावें ।
भक्ति करें उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावें ॥
प्रीत बढ़ावें जक्त में धरनी पर डोलें ।
कितनो कहै कठोर बचन वे अमृत बोलें ॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा ।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा ॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार ।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार ।

(भाग १, कुंडली ४)

पलटू साहिब कहते हैं कि वास्तव मे मन-माया के जाल में फँसे जीव को बन्धन मुक्त करने के लिए वह निराकार परमात्मा स्वय सन्त-सतगुरु का रूप धारण करके संसार में आता है। सन्त का रूप धारण करके वह प्रभु स्वयं जीवों को अपनी भक्ति का सच्चा रास्ता दिखाने का कार्य करता है। पूर्ण सन्त बाहर से देखने में सगुण होते हैं परन्तु अन्दर से निर्गुण से अभिन्न होते हैं, इसलिए हरि तथा हरि-जन को दो समझना भारी अज्ञानता है।

हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाय ॥
सो नर नरकै जाय हरिजन हरि अंतर नाहीं ।
फूलन में ज्यों बास रहै हरि हरिजन माहीं ॥
संत रूप अवतार आप हरि धरि कै आये ।
भक्ति करें उपदेस जगत को राह चलाये ॥
और धरैं अवतार रहै निर्गुन संजुक्ता ।
संत रूप जब धरैं रहै निर्गुन से मुक्ता ॥
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाय ।
हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाय ॥

(भाग १. कुंडली ३२)

पलटू साहिब संकेत देते हैं कि मुक्ति या परमेश्वर प्राप्ति का साधन तो नाम है, परन्तु नाम के भंडारी तथा दाता पूर्ण सन्त होते हैं। सन्तों का नाम से तथा नाम का सन्तों से गहरा प्यार है। सन्तों के अन्दर नाम प्रकट होता है, इसलिए वे दूसरे जीवों को भी नाम से जुड़ने की युक्ति समझाते हैं। पलटू साहिब दावे से कहते हैं कि कोई जीव करोड़ों प्रकार के शुभ कर्म क्यों न कर ले, बिना सन्त-सतगुरु की सहायता के कभी किसी को नाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सृष्टि के रचयिता का सृजन किया हुआ यह अटल, अनादि नियम है कि सच्चे नाम की दात केवल पूर्ण सन्त-सतगुरु से ही मिल सकती है :

संत सनेही नाम है नाम सनेही संत ॥
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावैं ।
वे हैं वाकिफकार मिलन की राह बतावैं ॥
जप तप तीरथ बरत करै बहुतेरा कोई ।
बिना वसीला संत नाम से भेंट न होई ॥
कोटिन करै उपाय भटक सगरो से आवै ।
संत दुवारे जाय नाम को घर तब पावै ॥

[1]पलटू यह है प्रान पर आदि सेती औ अंत।
संत सनेही नाम है नाम सनेही संत।।
(भाग १, कुंडली १४)

जिस शब्द या नाम की संत-जन महिमा करते हैं, वह लिखने, पढ़ने, बोलने का विषय नहीं है। वह किसी भाषा विशेष का शब्द नहीं है। पलटू साहिब कहते हैं कि जिस नाम की मैं महिमा कर रहा हूँ, उसका कोई नाम नहीं है। वह नाम अनामी है, निराकार है तथा रंग-रूप से परे है। वह नाम इन बाहर की आँखों से दिखाई नहीं देता। उसे सन्त-जन अन्दर की अलौकिक-आँख या दिव्य-दृष्टि से देखते हैं। संसार की शेष प्रत्येक वस्तु नाशवान तथा असत्य है, वह नाम ही एक सार वस्तु है। वह नाम ही एक मात्र सत्य है, वह नाम कहीं बाहर नहीं है। जब सुरत गगन को चीर कर अन्दर ऊपर चढ़ती है तो इसको सहज-समाधि की अनुपम अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसमें इसको शब्द या नाम की प्रबल ध्वनि सुनाई देती है तथा उसका चकाचौंध कर देने वाला प्रकाश भी दिखाई देता है :

जो कोइ चाहे नाम तो नाम अनाम है।
लिखन पढ़न में नाहिं निअच्छर काम है।।
रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।
अरे हाँ पलटू गैब दृष्टि से सन्त नाम वह देखते।।
नाम डोरि है गुप्त कोऊ नहिं जानता।
नि:अच्छर नि:रूप दृष्टि नहिं आवता।।
ररंकार आकार पवन को देखना।
अरे हाँ पलटू देखत हैं इक संत और सब पेखना।।
फूटि गया असमान सबद की धमक में।
लगी गगन में आग सुरति की चमक में।।

१. यह पक्का नियम है। यह नियम सृष्टि के आदि से चला आ रहा है तथा अंत तक चलता रहेगा।

सेसनाग औ कमठ लगे सब काँपने।
अरे हाँ पलटू सहज समाधि कि दसा खबरि नहिं आपने ॥
(भाग २, अरिल २. ३ व ४)

पलटू साहिब ने इस सच्चे नाम को निज नाम भी कहा है। आप शब्द या नाम को संसार का कर्त्ता कहते हैं। आप संकेत देते हैं कि जो कुछ नाम ने पैदा किया है, वह नाश हो जाएगा, परन्तु शब्द या नाम कभी नाश नहीं होता। सारा संसार नश्वर है। बिना नाम या शब्द के संसार की कोई वस्तु भी जीव के साथ नहीं जाती। इसलिए जीव को चाहिए कि अपना ध्यान हर ओर से हटा कर केवल 'निजनाम' के साथ जोड़े :

राखु परवाह तू एक निज नाम की,
खलक मैदान में बाँध टाटी।
मीर उमराव दिन चारि के पाहुना,
छोड़ि घर माहि दौलत्त हाथी ॥
पकरि ले सबद जिन तोहि पैदा किया,
और सब होइँगे खाक माटी।
दास पलटू कहै देखु संसार गति,
बिना निज नाम नहिं कोई साथी ॥
(भाग २, रेखता ६)

इस नाम को पलटू साहिब ने ऐसा 'महादीप' कहा है जो बिना तेल तथा बत्ती के प्रत्येक की आँखों के पीछे जल रहा है। आप कहते हैं कि जब जीव पूरे सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार, तत्त्वों, इन्द्रियों, प्रकृतियों तथा गुणों की अवस्था से ऊपर उठ कर विषय-विकारों पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो सुरत पिण्ड के छः चक्करों को पार करके अन्दर प्रवेश कर जाती है। वहां पहुँच कर आत्मा को अन्दर अनेक तारे, चांद, सूर्य आदि दिखाई देते हैं। वहां पहुँच कर ही आत्मा को बिना तेल तथा बत्ती के निरन्तर जलने वाला महान दीप दिखाई देता है। इस दीपक का प्रकाश अज्ञानता के अंधेरे को दूर करने वाला

तथा आत्मा को सच्चे तथा निर्मल प्रकाश से भरपूर करने वाला है :

गुरु पूरा मिलै ज्ञान साधन करै,
पकरि कै पांच पच्चीस मारै।
आतमा देव है पिंड का द्योहरा,
काम औ क्रोध बिनु आग जारै॥
चंद औ सूर तहँ कोटि तारा उगै,
प्रान वायू मेती तत्त मारै।
गगन के बीच में तेल बाती बिना,
दास पलटू महा दीप बारै॥

(भाग २, रेखता २)

नाम का यह दीपक प्रत्येक प्राणी के अन्दर आँखों के पीछे 'उल्टे कुएँ' में जलता है। पलटू साहिब ने हमारे सिर को 'उल्टा कुंआ' कहा है। कुएँ का तला नीचे की ओर होता है परन्तु हमारे सिर का तला ऊपर की ओर है। आप कहते हैं कि इस उल्टे कुएँ में बिना बत्ती और तेल के एक अलौकिक दीपक निरन्तर जल रहा है। परन्तु पूरे सतगुरु से युक्ति जाने बिना, अन्दर शून्य में जल रहा यह दीपक दिखाई नहीं देता। इस दीपक की ज्योति में से शब्द या नाम की अलौकिक ध्वनि उठ रही है। सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार सुरत को आँखों के पीछे एकाग्र करके सुन्न-समाधि की अवस्था प्राप्त करने वाले जीव, इस अन्दर के चिराग (दीपक) को देख सकते हैं तथा परमानन्द देने वाली इस दिव्य-ध्वनि को भी सुन सकते है :

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय, नही वा को दरसावै॥
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और और कोउ सुनता नाहीं॥

पलटू जो कोई सुने ता के पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
(भाग १, कुंडली १६९)

हाथरस के प्रसिद्ध सन्त तुलसी साहिब जी ने भी अन्दर के उल्टे कुएँ को आत्मिक प्रकाश तथा आत्मिक ज्ञान का स्रोत कहा है :

लखि अकास औंधा कुआ हुआ नूर का तेज॥
हुआ नूर का तेज जोति में झलक दिखावा।
भया प्रकास उजार झलक आतम दरसावा॥
मान सरोवर घाट बाट सोइ निरखि निहारा।
सुखमनि लगी समाधि साधि कर उतरै पारा॥
तुलसी जिन जिन लख लिया, उन बाँधी पति पैंज।
लखि अकास औंधा कुआ, हुआ नूर का तेज॥
(शब्दावली, भाग १, कुंडली १६)

कबीर साहिब ने भी अन्दर की ज्योति को 'अगम का दीवा' कहा है जो बिना तेल तथा बत्ती के प्रत्येक के अन्दर सदा जल रहा है : 'दीवा बले अगम का बिन बाती बिन तेल'। गुरु नानक साहिब ने भी इस दिव्य ज्योति के प्रकाश तथा इसमें से निकल रही शब्द की अगम्य ध्वनि की ओर संकेत किया है। आप कहते हैं कि अपने अन्दर इस प्रकाश तथा ध्वनि को सुनने से लिव (ध्यान) परमपिता परमात्मा से जुड़ जाती है : 'अंतरि जोत निरंतरि बाणी, साचे साहिब सिओ लिव लाई॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. ६३४)। दादू साहिब कहते हैं : 'अनहद बाजे बाजिये अमरापुरी निवास। जोति सरूपी जगमगै, कोइ निरखै निज दास।' किसी महात्मा ने इसको प्रकाशमयी ध्वनि कहा है, किसी ने ध्वनिमय प्रकाश, परन्तु अन्तर्मुख अभ्यास करके अन्तर में आध्यात्मिक मंजिलों पर जाने वाले प्रत्येक महात्मा ने किसी न किसी रूप में इस आन्तरिक शब्द या नाम की ओर संकेत किया है। पूरे सतगुरु के अन्दर यह प्रकाश या ध्वनि प्रकट होती है तथा वह अपने शिष्य को भी इसके साथ जोड़ देते हैं। आध्यात्मिकता की साधना में सन्त-सतगुरु का मूल

कार्य ही यह है कि वह शिष्य की आत्मा को अन्तर में शब्द या नाम के प्रकाश तथा ध्वनि में लीन करने में सहायता दें .

पलटू जो कोइ देखै, जिस की सरना भाग।
उलटा कूप है गगन में, तिस में जरै चिराग॥

(भाग ३, साखी, १६४)

शब्द की ध्वनि सचखण्ड से आ रही है तथा आंखों के पीछे ध्वनित हो रही है। जब कोई शिष्य सतगुरु के द्वारा अपनी सुरत को इस शब्द में लीन कर देता है तब यह शब्द या नाम उस सुरत को अपने में मिलाकर सचखण्ड वापिस ले जाता है। यह अन्तर की ज्योतिर्मय ध्वनि, परम सत्य का प्रत्यक्ष रूप है। गुरु अमरदास जी ने इस शब्द, नाम या वाणी को सहजमयी, सुखमयी, ज्ञानमयी, परमसत्त कहा है। यह प्रत्येक प्रकार की आशा-तृष्णा को शान्त करने वाला अमृत है, प्रत्येक प्रकार के भ्रम तथा अज्ञानता को नाश करने वाला प्रकाश है तथा स्वयं का ज्ञान करवाने वाला सहज साधन है। यह प्रेममय, शान्तिदायक भोजन सतगुरु की कृपा से मिलता है .

भाउ भोजनु सतिगुरि तुठै पाए॥ अनरसु चूकै हरिरसु मंनि वसाए॥
सचु संतोखु सहज सुखु बाणी पूरे गुर ते पावणिआ॥
सतिगुरु न सेवहि मूरख अंध गवारा। फिरि ओइ किथहु पाइनि मोखदुआरा।
मरि मरि जंमहि फिरि फिरि आवहि जम दरि चोटा खावणिआ॥
सबदै सादु जाणहि ता आपु पछाणहि॥ निरमल बाणी सबदि वखाणहि॥
सचे सेवि सदा सुखु पाइनि नउनिधि नामु मंनि वसावणिआ॥

(आदि ग्रन्थ, [illegible])

इसको पूर्ण सन्तों ने सुरत शब्द का मिलाप भी कहा है [illegible] साहिब कहते हैं कि जब मेरी सुरत शब्द में समा गई तो [illegible] की प्राप्ति हुई। इससे आत्मा परमात्मा में इस तरह [illegible] मन-इन्द्रियां वस में आ गए प्रत्येक प्रकार की [illegible] माया की सब उपाधियां [illegible] गई तथा [illegible] आवागमन के बन्धनों से [illegible] के लिए [illegible]

सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद ॥
मुझ को भया अनंद मिला पानी में पानी ।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी ॥
मुलुक भया सलतन्त मिला हाकिम को राजा ।
रैयत करै अराम खोलि के दस दरवाजा ॥
छूटी सकल वियाधि मिटी इंद्रिन की दुतिया ।
को अब करै उपाधि चोर से मिलि गइ कुतिया ॥
पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरी बंद ॥
सुरत सब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद ॥
(भाग १. कुंडली ८९)

कबीर साहिब कहते हैं कि प्रत्येक जीव के अन्दर हर समय शब्द की सहज-धुन हो रही है। सुरत को शब्द के साथ जोड़ने से मन निश्चल हो जाता है तथा सुरत शब्द में मिलकर शब्द का रूप हो जाती है—मानों बूंद समुद्र में मिलकर समुद्र का रूप हो गई। इस सहज कार्य में किसी तरह के बाहरमुखी कर्म की आवश्यकता नहीं :

१. सहजें ही धुन होत है, हर दम घर के माहिं ।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥
(कबीर साखी-संग्रह, ८९)

२. नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥
(कबीर साखी-संग्रह, ९२)

दादू साहिब कहते हैं कि शब्द ही सबका पोषक, संहारक और उद्धारक है तथा शब्द ही आध्यात्मिक उन्नति, निर्मल ज्ञान तथा निराकार प्रभु की प्राप्ति का एक मात्र साधन है :

१. (दादू) सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं सबही जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ॥
(भाग १, शब्द २)

२. (दादू) सबदैं हीं सूषिम भया, सबदैं सहज समान ।
सबदैं ही निर्गुण मिलैं, सबदैं निर्मल ज्ञान ॥
(भाग १, शब्द ४)

गुरु नानक साहिब ने भी फ़रमाया है कि सच्चे आत्मिक सुख की प्राप्ति का केवल एक साधन सुरत को अन्दर शब्द में लीन करना है। शब्द में लीन होकर आत्मा परम-पिता परमेश्वर मे समा जाती है तथा इसके अन्दर सच्चा सुख, सच्ची शान्ति पैदा हो जाती है। संसार में मन-इन्द्रियों को वश में करने का तथा सच्चे सुख की प्राप्ति का न कोई दूसरा साधन या मार्ग है और न ही किसी दूसरे साधन या मार्ग के विषय में सोचने की आवश्यकता है .

रामु नामि मनु वेधिआ अवरु कि करी वीचारु ॥
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ॥
(आदि ग्रन्थ, ६२)

वास्तव में सुरत को अन्दर शब्द के साथ जोड़ना सन्तों के आध्यात्मिक उपदेश का सार है जिस कारण सन्तों के मार्ग को शब्द-योग मार्ग या सुरत-शब्द योग भी कहा जाता है। तुलसी साहिब 'घट रामायण' में कहते है कि सब सन्तों का मार्ग यही है कि सुरत को शब्द में लीन करके परमपद की प्राप्ति करो

सुरति मिलै शबद में जाई । ये सब सतन पंथ बताई ।

पलटू साहिब सुरत शब्द मार्ग की महिमा वर्णन करते हुए कहते है कि यह ऐसा प्राकृतिक तथा सहज साधन है जिस में बनावटी कर्म-कांड के लिए कोई स्थान नही है। आप कहते हैं कि जब अन्दर शब्द का झरना फूट पड़ता है तो जीव को आध्यात्मिक उन्नति के लिए किसी दूसरे प्रयत्न की आवश्यकता नही रहती । उसके अन्दर शब्द की ज्योति प्रकट हो जाती है तथा उसको सहज समाधि की वह अनुपम अवस्था मिल जाती है जिसमें आत्मा के रास्ते से द्वैत के सब पर्दे दूर हो जाते हैं तथा वह सदा के लिए शब्द या परमात्मा में समा जाती है :

जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं बिवेक ॥
साधन नहीं बिवेक साधन सब कै कै छूटा ।
लागी सहज समाधि सब्द ब्रह्मांड में फूटा ॥
खंडन तनिक न होय तेलवत लागी धारा ।
जोति निरन्तर बरै दसो दिसि भा उजियारा ॥
ज्ञान ध्यान सब छूटि छूटि संजम चतुराई ।
तन की सुधि गइ बिसरि अरूढ़ अवस्था आई ॥
पलटू मैं भजनै भया रही न दूजो रेख ।
जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं बिबेक ॥

(भाग १, कुंडली १०)

पलटू साहिब एक दूसरे स्थान पर भी कहते हैं :

सुरति सुहागिनि उलटि कै मिलि सबद में जाय ॥
मिली सबद में जाय कन्त को बसि में कीन्हा ।
चलै न सिव कै जोर जाय जब सक्ती लीन्हा ॥

(भाग १, कुंडली २२६)

प्रभु की इस मुक्तिदाता शक्ति को ही सन्तों ने 'राम नाम' कहा है। सन्तों का राम, केशव, मुरारी, गोसाईं, माधव कोई ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्ति नहीं है बल्कि वह निराकार परमेश्वर या राम नाम है जो रचना के कण-कण में समाया हुआ है। पलटू साहिब संकेत करते हैं कि शब्द, नाम या राम नाम की चर्चा तो सारा संसार करता है परन्तु जिस नाम को सन्त-जन सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक, सर्व-ज्ञाता, आनन्द रूप, सहज रूप तथा ज्ञान रूप कहते हैं, उसकी प्राप्ति सहज नहीं। उस राम नाम की प्राप्ति उन गिने चुने गुरुमुखों को होती है जो प्रत्येक प्रकार की आशा-तृष्णा तथा अहम् या ममता को मार-कर अपना ध्यान 'पिंड' से निकाल कर अन्तर में 'गगन गुफ़ा' में ले आते हैं। सतगुरु की कृपा से वे संसार की ओर से सो जाते हैं परन्तु अन्तर में जाग उठते हैं। उनको समाधि की वह निश्चल अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिस में इन्द्रियों तथा प्रकृतियों को पार करके अन्दर शब्द

या नाम से मिलाप हो जाता है। उस अवस्था में पहुँच कर सच्चा काया-कल्प करने वाले नाम की प्राप्ति होती है। पलटू साहिब कहते हैं कि उस शब्द, नाम या वाणी का रस कहने सुनने का नहीं, अनुभव का विषय है :

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी ।
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी ॥
हौं को करै खमोस होस ना तन को राखै ।
गगन गुफ़ा के बीज पियाला प्रेम का चाखै ॥
बिसरै भूख पियास जाय मन रँग में लागै ।
पाँच पचीस रहे वार संग में सोऊ भागै ॥
आपुइ रहै अकेल बोलै बहु मीठी बानी ।
सुनतै अब वह बन कहा मैं कहौं बखानी ॥
पलटू गुरु परताप तें रहै जगत में सोय ।
नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥

(भाग १, कुंडली ११)

जिसको पलटू साहिब ने अन्दर का 'गगन' या 'गगन गुफ़ा' कहा है, उसी को आपने 'काया की काशी' कह कर भी पुकारा है। जब जीव सुमिरन तथा ध्यान की सहायता से अन्दर पहुँचता है तो वह अन्दर की काशी में पहुँच जाता है, जहाँ उसको सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं। फिर उसको पता लगता है कि सतगुरु सदा अन्दर बैठ कर उसकी हर प्रकार की सहायता और संभाल करता रहता है : 'सतगुरु उहवाँ बसैं जहाँ काया की कासी ॥' (भाग १, कुंडली ९७)। परन्तु काया रूपी काशी में रहने वाले सतगुरु के साथ मिलाप तब होता है जब जीव पहले शरीर या इन्द्रियों को वश में करे तथा सतगुरु की सेवा में लगे।

सतगुरु की सेवा क्या है ? मन, आत्मा को संसार तथ निकाल कर अन्दर आँखों के पीछे लाना तथा दृढ़ आसन प

जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं विवेक ॥
साधन नहीं विवेक साधन सब कै कै छूटा ।
लागी सहज समाधि सब्द ब्रह्मांड में फूटा ॥
खंडन तनिक न होय तेलवत लागी धारा ।
जोति निरन्तर बरै दसो दिसि भा उजियारा ॥
ज्ञान ध्यान सब छूटि छूटि संजम चतुराई ।
तन की सुधि गइ बिसरि अरूढ़ अवस्था आई ॥
पलटू मैं भजनै भया रही न दूजो रेख ।
जोग जुगत आसन नहीं साधन नहीं विवेक ॥
(भाग १, कुंडली ९०)

पलटू साहिब एक दूसरे स्थान पर भी कहते हैं :

सुरति सुहागिनि उलटि कै मिलि सबद में जाय ॥
मिली सबद में जाय कन्त को बसि में कीन्हा ।
चलै न सिव कै जोर जाय जब सक्ती लीन्हा ॥
(भाग १, कुंडली २२६)

प्रभु की इस मुक्तिदाता शक्ति को ही सन्तों ने 'राम नाम' कहा है। सन्तों का राम, केशव, मुरारी, गोसाईं, माधव कोई ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्ति नहीं है बल्कि वह निराकार परमेश्वर या राम नाम है जो रचना के कण-कण में समाया हुआ है। पलटू साहिब संकेत करते हैं कि शब्द, नाम या राम नाम की चर्चा तो सारा संसार करता है परन्तु जिस नाम को सन्त-जन सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक, सर्व-ज्ञाता, आनन्द रूप, सहज रूप तथा ज्ञान रूप कहते हैं, उसकी प्राप्ति सहज नहीं। उस राम नाम की प्राप्ति उन गिने चुने गुरुमुखों को होती है जो प्रत्येक प्रकार की आशा-तृष्णा तथा अहम् या ममता को मार-कर अपना ध्यान 'पिंड' से निकाल कर अन्तर में 'गगन गुफ़ा' में ले आते हैं। सतगुरु की कृपा से वे संसार की ओर से सो जाते हैं परन्तु अन्तर में जाग उठते हैं। उनको समाधि की वह निश्चल अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिस में इन्द्रियों तथा प्रकृतियों को पार करके अन्दर शब्द

या नाम से मिलाप हो जाता है। उस अवस्था में पहुँच कर सच्चा काया-कल्प करने वाले नाम की प्राप्ति होती है। पलटू साहिब कहते हैं कि उस शब्द, नाम या वाणी का रस कहने सुनने का नहीं, अनुभव का विषय है :

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी ।
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी ॥
हौं को करै खमोस होस ना तन को राखै ।
गगन गुफ़ा के बीज पियाला प्रेम का चाखै ॥
बिसरै भूख पियास जाय मन रँग में लागै ।
पाँच पचीस रहे बार संग में सोऊ भागै ॥
आपुइ रहै अकेल बोलै बहु मीठी बानी ।
सुनतै अब वह बन कहा मैं कहौ बखानी ॥
पलटू गुरु परताप तें रहै जगत में सोय ।
नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥

(भाग १, कुंडली ११)

जिसको पलटू साहिब ने अन्दर का 'गगन' या 'गगन गुफ़ा' कहा है, उसी को आपने 'काया की काशी' कह कर भी पुकारा है। जब जीव सुमिरन तथा ध्यान की सहायता से अन्दर पहुँचता है तो वह अन्दर की काशी में पहुँच जाता है, जहाँ उसको सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते है। फिर उसको पता लगता है कि सतगुरु सदा अन्दर बैठ कर उसकी हर प्रकार की सहायता और संभाल करता रहता है : 'सतगुरु उहवाँ बसैं जहाँ काया की कासी ॥' (भाग १, कुंडली ९७)। परन्तु काया रूपी काशी में रहने वाले सतगुरु के साथ मिलाप तब होता है जब जीव पहले शरीर या इन्द्रियों को वश में करे तथा सतगुरु की सेवा में लगे।

सतगुरु की सेवा क्या है? मन, आत्मा को संसार तथा पिण्ड से निकाल कर अन्दर आँखों के पीछे लाना तथा दृढ़ आसन पर बैठ कर

सुरत को अन्तर में परम तत्व से जोड़ना। जब जीव इस प्रकार से भक्ति योग की साधना करता है तो उसके अन्दर ऐसा सच्चा वैराग्य जाग उठता है जिसमें बिना घर-बार त्यागे तथा बिना कौम, मजहब, मुल्क, वेश-भूषा बदले, घर बैठे ही सतगुरु, नाम तथा परमात्मा के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है :

पहिले दासातन करै सो वैराग प्रमान ॥
सो वैराग प्रमान सेवा साधुन की कीजै ।
तब छोड़ै संसार बूझ घरही में लीजै ॥
काढ़ै रस रस गोड़ कछुक दिन फिरै उदासी ।
सतगुरु उहवाँ बसै जहाँ काया की कासी ॥
आसन से दृढ़ होय घटावै नींद अहारा ।
काम क्रोध को मारि तत्व का करै विचारा ॥
भक्ति जोग के पीछे पलटू उपजै ज्ञान ।
पहिले दासातन करै सो वैराग प्रमान ॥

(भाग १, कुंडली ९७)

अन्दर 'गगन गुफा' या 'काया की काशी' में पहुँच कर, जिसे सन्तों-महात्माओं ने तीसरा तिल, तिल, शिव-नेत्र, मोक्ष-द्वार, घर-दर आदि अनेक नामों से याद किया है, आत्मा की अन्दर की आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ हो जाती है। आत्मा शब्द की डोर को पकड़ कर अन्दर की मंजिलों को पार करती हुई निज-घर की ओर बढ़ती है। निज-घर को ही सन्तों ने निज धाम, परम पद या सचखण्ड आदि कहा है। निज घर के मार्ग में आत्मा को अनेक आध्यात्मिक दृश्य दिखाई देते हैं। उसको मन, माया तथा काल की भी अनेक बाधाएँ पार करनी पड़ती हैं। अन्त में आत्मा सब मंजिलों को पार करती हुई शब्द-दर-शब्द सतलोक रूपी सागर में पहुँच कर सदा के लिए उसमें अभेद हो जाती है। पलटू साहिब ने इस सारी यात्रा का रहस्यमय वर्णन इस प्रकार किया है :

जोग को पाड कै जुगत को ध्याड् कै,
    ज्ञान अरु ध्यान इक घाट करना।
असी संगम महँ कड़क बिजुली छुटै,
    उसी के सीस पै सुरति धरना॥
सहस कोटि ऊँच है बीच में भानु है,
    सांपनी पकरि के वोरि मरना।
सहस गुंजार में [1]परमली झाल है,
    झिलमिली उलटि के पौन भरना॥
संखिनी डंकिनी सोर सब करेंगी,
    सोर सुनि उहाँ से नाहिं टरना।
वंक पहार में सांकरी गैल है,
    गली के खड के बीच झरना॥
हद्द अनहद्द के बीच में जंगला,
    सिंह को देखि के नाहिं डरना।
कर्मनी नदी पै भर्मनी ताल है,
    ताल के बीच में रहत अरना॥
चौक से निकरि कै जाय बाहर हुआ,
    तत्त को पकरि क्यों बैठि रहना।
सातवें महल पर तत्त का जाल है,
    तत्त के जाल से तुरत फिरना॥
आठवें महल में [2]कहकहा दीवाल है,
    दीवाल को झाँकि के कूद परना।

---

१. चन्दन जैसी सुगन्धि वाली।

२. चीन तथा अरब देशों की कई लोक-गाथाओं में एक ऐसी दीवार तथा खिडकी का वर्णन आता है जिसके पार देखो तो परियों का देश दिखाई देता है। उस देश को देखने पर इतनी अधिक खुशी होती है कि देखने वाला स्वयं को भूल कर उस पार कूद कर सदा के लिए अदृश्य हो जाता है। परन्तु पलटू साहिब का संकेत सबसे ऊँचे मण्डल, जिसको अनामी देश भी कहा गया है, की ओर खुलने वाली खिडकी की ओर है।

दास पलटू कहै छोड़ मन कसमसी,
पैठि दरियाव दीदार करना ॥
(भाग २, रेखता ६८)

पलटू साहिब के उपर्युक्त वर्णन का कबीर साहिब के शब्द 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' (सन्तों की वाणी, २२९), बेणी साहिब के शब्द 'इड़ा, पिंगला अउर सुखमना' (आदि ग्रन्थ, ९७४) तथा गुरु नानक साहिब के शब्द 'काइआ नगरु नगर गढ़ अंदरि' (आदि ग्रन्थ, १०३३) के साथ तुलना करने से पता लगता है कि सब शब्द मार्गी पूर्ण सन्तों ने अपने अपने ढंग से एक ही आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन किया है तथा एक ही परम-सत्य की प्राप्ति का मार्ग दर्शाया है।

पलटू साहिब कहते हैं कि सन्त-सतगुरु मोह-माया के जाल में फँसे जीवों को परम-सत्य का ज्ञान देने के लिए आते हैं, परन्तु अभागे जीव या तो उन पर विश्वास नहीं करते और यदि भरोसा करते भी हैं तो तन-मन से उनके बताए हुए मार्ग की साधना नहीं करते। आप संकेत करते हैं कि दुनियादार लोग इन्द्रियों के भोगों के इच्छुक हैं। उन्हें नाम रूपी अमूल्य हीरे की कद्र नहीं है। कोई व्यक्ति इस अमूल्य वस्तु की कीमत देने को तैयार नहीं है। ऐसे लोगों को नाम कड़वा लगता है तथा वे इससे भय खाते हैं। भोग-विलास रूपी रोटी खाने वाला व्यक्ति नाम रूपी हीरे को खाना पसन्द नहीं करता। आप कहते हैं कि सतगुरु तो पूरा वैद्य है, परन्तु कोई उनकी दी हुई दवाई खाने को तैयार नहीं होता। सतगुरु तो चन्दन के समान सुगन्धि से भरे हुए हैं परन्तु दुनियादार उस बांस के समान हैं जो चन्दन के पास रहता हुआ भी उसकी सुगन्धि से प्रभावित नहीं होता। सतगुरु पारस हैं, परन्तु जीव रूपी लोहा इतना खोटा है या उस पर इतना जंग लग चुका है कि उस पर पारस की संगति का भी प्रभाव नहीं पड़ता। पलटू साहिब संकेत करते हैं कि केवल वे लोग ही सतगुरु से नाम का अमूल्य धन प्राप्त कर सकते हैं जो तन-मन-धन का मोह त्याग कर जीवित ही मरने के लिए तैयार हो जाते हैं :

सतगुरु सब को देत हैं लेता नाहीं कोय ॥
लेता नाहीं कोय सीस को धरै उतारी ।
वही मकस को मिलै मरै की करै तयारी ॥
कड़ू बहुत सतनाम देखत कै डेरैं सरीरा ।
[1]रोटी खावनहार खायना क्योंकर हीरा ॥
अंधा होवै नीक[2] वेद का पथ[3] जो खावै ।
मलयागिर की बास बांस में नहीं समावै ॥
पलटू पारस क्या करै जो लोहा खोटा होय ।
सतगुरु सब को देत हैं लेता नाहीं कोय ॥
(भाग १, कुंडली ८७)

शास्त्रों में अनेक प्रकार की मुक्ति का वर्णन है परन्तु पूर्ण सन्तों ने जीव के सामने सबसे ऊंची मुक्ति का आदर्श रखा है जिसको 'जीवन मुक्त' कहा जाता है। यह मुक्ति जीव स्वयं पूर्ण सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार सुमिरन तथा ध्यान की सहायता से सुरत को शरीर में से समेट कर अन्दर शब्द में लीन करके प्राप्त करता है। सन्त नामदेव जी कहते हैं कि पण्डित लोग मरने के बाद मुक्ति देने का विश्वास दिलाते हैं, परन्तु जो मुक्ति हम स्वयं जीते-जी प्राप्त नहीं कर सकते उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?

मूए हूए जउ मुक्ति देहुगे मुकति न जानै कोइला ॥
(आदि ग्रन्थ, १२९२)

पलटू साहिब कहते हैं कि ज्ञान-ध्यान की सहायता से मन को वश में करके जीवित ही मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए

मुक्ति मुक्ति सब खोजत है,
मुक्ति कहो कहं पाइये जी।

---

१. कहा जाता है कि हीरा खाने से मृत्यु हो जाती है। पलटू साहिब संकेत करते हैं कि नाम के अभ्यास से संसार की ओर से तो मरना पड़ता है, परन्तु इन्द्रियों के भोगों के गुलाम जीव ऐसा करने से घबराते हैं, २. ठीक, ३. दवाई।

मुक्ति के हाथ औ पाँव नहीं,
किस भाँति सेती दिखलाइये जी ॥
ज्ञान ध्यान की बात बूझिये,
या मन को खूब समझाइये जी ।
पलटू मूए पर किन्ह देखा,
जीवत ही मुक्त हो जाइये जी ॥
(भाग २, झूलना ५३)

जो लोग अनेक प्रकार के दूसरे कर्मों-धर्मों में से मन को निकाल कर सतगुरु की शरण दृढ़ करते हैं तथा अपनी लिव को अन्दर नाम के साथ जोड़ देते हैं, उनको जीवित ही मुक्त होने की अगाध गति प्राप्त हो जाती है :

पलटू मैं जियतै मुवा नाम भरोसा पाय ।
करम धरम सब छाड़ि कै पड़े सरन में आय ॥
(भाग १, कुंडली १५४)

जीवन-मुक्त होने के लिए मन मर्जी से मरने का ढंग आना चाहिए। पूर्ण सन्तों ने सुमिरन तथा ध्यान की सहायता से आत्मा को शरीर के नौं द्वारों से समेट कर शिव-नेत्र या तीसरे तिल में एकाग्र करने को जीवित मरना कहा है। पलटू साहिब ने जीव को कई स्थानों पर 'जियत मरै' की अवस्था प्राप्त करने की ताक़ीद की है। आप इस अवस्था को ही सच्चा त्याग कहते हैं क्योंकि इससे आत्मा सदा के लिए मन तथा इन्द्रियों से विरक्त तथा निर्लिप्त हो जाती है। आप कहते हैं :

जियतै मरना भला है नाहिं भला वैराग ।
(भाग १, कुंडली १०९)

इस प्रकार जीवित मरने से जीव भव-सागर को पार कर जाता है तथा सदा के लिए स्थिर तथा सहज अवस्था में पहुँच जाता है :

मरते मरते सब मरे, मरै न जाना कोय ।
पलटू जो जियतै मरै, सहज परायन होय ॥
(भाग ३, साखी ९९)

परन्तु जो लोग अज्ञानता वश यह समझते हैं कि हम पुण्य कर्मों की सहायता से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे, वे इस भव-सागर में ही गोते खाते रहते हैं। अन्य पूर्ण सन्तों की तरह पलटू साहिब ने भी जीवों को सावधान किया है कि पुण्य तथा पाप दोनों ही जीव को आवागमन के चक्र से बांधने वाले दृढ़ बंधन हैं। पुण्य करने वालों को इनका शुभ फल भोगने के लिए संसार में आना पड़ता है तथा पाप करने वाले को इनका बुरा फल भोगने के लिए दुनिया में जन्म लेना पड़ता है। प्रत्येक प्रकार का कर्म वन्धनमय है। जब तक जीव पाप-पुण्य दोनों की सीमा को पार करके शब्द के सहारे दसवें द्वार में नहीं पहुँचता तथा अनंत जन्मों के कर्मों के मैल को नहीं धो लेता, उसका जन्म-मरण के वन्धनों से कभी भी छुटकारा नहीं हो सकता :

पुन्न जो करै सो पुन्न को पाइहै,
पुन्न से छिन्न मृत लोक आवै।
करम को जीव सो सदा करमै मंहै,
जनम औ मरन फिरि करम पावै॥
पड़ा वह रहै चौरासी के फेर में,
चौरसी को छोड़ि वह कहां जावै।
दास पलटू कहै द्वार दसएँ केरी,
राह में जाय सो मुक्ति पावै॥
(भाग २, रेखता ४५)

नाम या शब्द की डोर को पकड़ कर दसवें-द्वार पहुँचने की युक्ति पूर्ण सन्त-सतगुरु से मिलती है। पलटू साहिब कहते हैं कि भाग्य का लिखा मिटाने, आवागमन के बंधन तोडने तथा परमात्मा के साथ मिलाने की शक्ति केवल सन्तों में ही होती है. इसलिए साधु-शरण दृढ़ करनी चाहिए :

दास पलटू कहै संत की सरन में,
लिखा नसीब को मेटि डाला॥ (भाग २, रेखता २३)

पूर्ण सन्तों की संगति में पहुँच कर ही नाम का भेद मिलता है,

नाम की कमाई करने का शौक पैदा होता है तथा आत्मा मन-माया के बंधन तोड़ कर निज-घर जाने में समर्थ होती है। इसलिए पलटू साहिब ने साधु-संगत, सन्त-शरण या सच्चे सत्संग पर बहुत ज़ोर दिया है। आप कहते हैं कि बिना सत्संग के न मन-माया छूटते हैं, न ही भ्रम और अज्ञानता से छुटकारा मिलता है :

१. बिना सतसंग ना छुटै माया ॥ (भाग २, रेखता २२)
२. बिना सतसंग ना भर्म जाही ॥ (भाग २, रेखता १२)

पलटू साहिब कहते हैं कि जिस प्रकार की हम संगति करते हैं उसी प्रकार के बन जाते हैं। चन्दन की संगति में रहने वाले ज़हरीले साँप भी शीतलता का अनुभव करते हैं। ज्ञानियों की संगति में रहने से मूर्ख भी एक दिन ज्ञानी बन जाता है। फूलों की सुगन्धि से तिल का तेल भी महक उठता है। पारस को छू कर लोहा भी सोना बन जाता है तथा शीतलता मिलने से कटा हुआ गन्ना भी फिर फूट पड़ता है। इसी प्रकार सन्तों की संगति में रहने वाले नीच से नीच जीव के भी प्रत्येक प्रकार के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रोग दूर हो जाते हैं। उसकी दुर्मति या मन-मत दूर हो जाती है तथा वह गुरुमुखता को धारण करके परमात्मा में समा जाने में समर्थ हो जाता है :

मलया[१] के परसंग से सीतल होवत साँप ॥
सीतल होवत साँप ताप को तुरत बुझाई।
संगत के परभाव सीतलता वा में आई ॥
मूरख ज्ञानी होय जाय ज्ञानी में बैठै।
फूल अलग का अलग वासना तिल में पैठै ॥
कंचन लोहा होय जहाँ पारस छुइ जाई।
[२]पनपै उकठा काठ जहाँ उन सरदी पाई ॥
पलटू संगत किये से मिटते तीनिउँ ताप।
मलया के परसंग से सीतल होवत साँप ॥

(भाग १, कुंडली ८०)

१. मलयागर या चन्दन, २. काटा हुआ गन्ना फिर से फूट पड़ता है।

जो जो गा सतसंग में सो सो बिगरा[1] जाय ॥
सो सो बिगरा जाय फूल संग तेल बखाना।
ज्ञानी के संग परा ज्ञान मूरख ने जाना॥
पारस के परसंग बिगरि गा लोहा जाई।
लोहा से भा कनक आपनी जाति गँवाई॥
सलिता गइ है बिगरि मिली गंगा में जाई।
मलया के परसंग काठ चन्दन कहवाई॥
पलटू काग से हंस भा और काग पछिताइ।
जो जो गा सतसंग में सो सो बिगरा जाइ॥

(भाग १, कुंडली ८५)

ऐसा भाग्यशाली जीव सन्तों की ही तरह मन, माया, काल तथा आवागमन के दुःखों से मुक्त होकर परम सुख को प्राप्त कर लेता है.

संतन संग अनन्द परम सुख॥
जेकरी संगति ज्ञान होत है, मिटत सकल दुख द्वन्द।
उनके निकट काल नहिं आवैं, टूटि जात जम फंद॥

(भाग ३, शब्द २०)

यह ठीक है कि सन्तों की संगति में नाम तथा ज्ञान मिलता है तथा नाम की साधना से मुक्ति मिलती है परन्तु जब तक मन में प्रेम का दीपक नहीं जलता, इसका अन्धेरा दूर नहीं हो सकता। सच्चा प्रेम तथा सच्ची भक्ति, सच्चा विरह तथा सच्चा वैराग्य प्रभु-प्राप्ति का महा-मंत्र है। पलटू साहिब के जीवन वृत्तान्त में देख आए है कि आपने प्रत्येक प्रकार के बाहरमुखी कर्म-काण्ड, पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत, जप-तप, पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान आदि के स्थान पर शब्द या नाम की अन्तर्मुख साधना को सच्ची प्रभु-भक्ति माना है। आपने इस बात पर बल दिया है कि शब्द या नाम का प्रेम ही परमात्मा के सच्चे प्रेम का रूप धारण कर लेता है।

सन्तों ने शब्द या नाम की साधना को प्रेम-मार्ग या भक्ति-मार्ग

१. यहाँ 'बिगरा' शब्द व्यंग से सुधरने के भाव में प्रयुक्त हुआ है।

भी कहा है क्योंकि इस मार्ग का मार्गदर्शक परमात्मा को परमात्मा के लिए ही सच्चा प्यार करता है। वह न तो संसार के दुःखों से डर कर, न ही सांसारिक इच्छाओं को पूरा करने के लिए, उस प्यारे प्रभु को भक्ति करता है। उसके हृदय में प्रभु के विरह का तीर चुभा होता है तथा वह उस वियोग की पीड़ा में व्याकुल होकर रोता है : 'प्रेम वान जा के लगा सो जानैगा पीर' (भाग १, कुंडली ६७)। उसको अपने प्रीतम के विना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसका प्रीतम के विना जीवित रहना कठिन हो जाता है। वह पल-पल, क्षण-क्षण प्रीतम के दर्शन के लिए तड़पता है :

अम्मा मेरा दिल लगा मुझ से रहा न जाय ॥
मुझ से रहा न जाय विना साहिव को देखे ।
जान तसद्दुक[1] करौं लगै साहिव के लेखे ॥
मुझ को भया है रोग जायगा जीव हमारा ।
एकर दारू यही मिलै जो प्रीतम प्यारा ॥
पड़ा प्रेम जंजाल जिकिर[2] सीने में लागी ।
मैं गिरि परी वेहोस लोक की लज्जा भागी ॥
पलटू सतगुरु वैद विन कौन सकै समझाय ।
अम्मा मेरा दिल लगा मुझ से रहा न जाय ॥

(भाग १, कुंडली ६३)

ऐसा प्रेमी, प्रीतम के सच्चे प्रेम, उसकी सच्ची भक्ति, सच्ची पूजा, आराधना के विना दूसरे किसी साधन की ओर मुंह नहीं करता। उसको पता है कि हठ-योग, प्राणायाम आदि जैसे साधनों में पड़कर काया को दुःखी करने से वह प्रीतम प्रसन्न नहीं होता। वह प्रत्येक प्रकार के वनावटी साधनों को त्याग कर सच्चे दिल से प्रीतम से प्रेम करता है तथा शब्द या नाम की सहायता से अन्दर ही प्यारे का दर्शन करने का प्रयत्न करता है :

---

१ न्योछावर, २. सुमिरन।

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ॥
और झूठ सब बात करै हठजोग अनारी ।
ब्रह्म दोष वो लेय काया को राखै जारी ॥
प्रान करै आयाम कोई फिर मुद्रा साधै ।
धोती नेती करै कोई लै स्वासा बाँधै ॥
उनमुनि लावै ध्यान करै चौरासी आसन ।
कोई साखी सब्द कोइ तप कुस कै डासन ॥
पलटू सब परपंच है करै सो फिर पछितात ।
एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ॥

(भाग १, कुंडली ५६)

पलटू साहिब ने बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है कि उस सर्व-समर्थ परमेश्वर को किसी दूसरी वस्तु को आवश्यकता नहीं। वह केवल भक्ति, प्यार तथा इश्क से प्रसन्न होता है। प्रेम, भक्ति या इश्क ही कुल-मालिक के दरबार की राहदारी, परवाना या पासपोर्ट है। आप पौराणिक उदाहरण देते है कि श्री रामचन्द्र जी ने जप-तप, पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान के अहंकार से भरे ऋषियों-मुनियों की झोंपड़ियों में जाने की अपेक्षा सच्चे प्यार में मस्त छोटी जाति की साधारण बुद्धि वाली भीलनी की कुटिया मे जाना और उसके जूठे बेरों को खाना स्वीकार किया। इसी प्रकार वह परमात्मा जप-तप, पूजा-पाठ, पुण्य-दान, ज्ञान-ध्यान पर नहीं, सच्ची भक्ति, सच्चे प्यार या सच्चे इश्क पर रीझता है। दुर्योधन को अपने ऊँचे कुल तथा अपने राज-पाट का अहंकार था, परन्तु भगवान् कृष्ण उसके महलो की अपेक्षा नीची जाति के गरीब बिदर की झोपड़ी में गए तथा उसका फीका साग प्रेम-पूर्वक स्वीकार किया। इसी प्रकार वह परमात्मा सच्चे प्रेम तथा सच्ची नम्रता से भरे हृदय पर दया करता है। पाण्डव सच्ची श्रद्धा तथा नम्रता के कारण ही नीची जाति के सच्चे प्रभु-भगत सुपच को प्रसन्न करने मे सफल हुए। इसी प्रकार वह परम-पिता परमेश्वर सच्ची भक्ति, सच्चे प्रेम पर प्रसन्न होता है :

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ॥
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी ।
तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी ॥
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई ।
खाये सेबरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई ॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा ।
मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा ॥
पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोउ करै हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार ॥

(भाग १, कुंडली २१८)

इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेम करना खाला का घर है । प्रेम का मार्ग बहुत झीना तथा कठिन है । इस में सिर देना पड़ता है : 'सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं' (भाग १, कुंडली ६४) । आशिक होने का विचार वही करे जो अपने हाथ से अपनी कबर खोद ले अर्थात् जीवित मरने का ढंग सीखे । प्रेमी या आशिक वह बनने जाए जो दिन-रात जागे अर्थात् जिसकी लिव, जिसका ध्यान सदा प्रीतम के चरण-कमलों में लगा रहे :

पहिले कब्र खुदाय आसिक तब हूजिये ।
सिर पर कफ्फन बांधि पांव तब दीजिये ॥
आसिक को दिन राति नाहिं है सोवना ।
अरे हां पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना ॥

(भाग २, अरिल ५४)

पूर्ण सन्त-सतगुरु परमेश्वर का रूप होते हैं । इसलिए पलटू साहिब ने भी अन्य सब सन्तों की तरह परमात्मा की प्रीति तथा सतगुरु की प्रीति को एक जैसा स्थान दिया है । आप कहते हैं कि सतगुरु से ऐसी प्रीति होनी चाहिए जैसी मछली की जल से होती है :

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै ॥
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देत है प्रान ॥

[१]मीन कँह लै छीर में राखै, जल बिनु है हैरान ॥
जो कछु है सो मीन के जल है, जल के हाथ बिकान ॥
पलटू दास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोई परमान ॥

(भाग ३, शब्द ४८)

इस प्रीति के रहस्य को खोलते हुए पलटू साहिब कहते हैं कि मैं सतगुरु का बिना दाम का गुलाम हूँ। मैं मुफ़्त उसके हाथ बिक गया हूँ। मेरे अन्दर सदा उसके प्रेम की मस्ती छाई रहती है। उसके वियोग में, विरह में मुझे खाना, पीना, सोना अच्छा नहीं लगता। उसके दर्शन के लिए मैंने 'गगन गुफ़ा' की 'कुंज गली' (दसवीं गली, तिल, तीसरा तिल) में जा कर डेरा लगाया है क्योंकि वही मेरे प्रीतम का वास्तविक निवास है। मैं सहस-दल-कमल से होता हुआ मानसरोवर, अमृतसर या दसवें द्वार में जा पहुँचा हूँ। शब्द या नाम के अमृत की मस्ती सदा मेरे मन मे छाई रहती है। यह अवस्था आठों पहर बनी रहती है। पीछे देख आए हैं कि सन्तों ने शब्द या नाम में लीन हो कर [illegible] भाव (अहं) को दूर करने, आत्मा को शब्द में लीन करके दुई [illegible] के पर्दे दूर करने तथा इसको सदा के लिए शब्द मे लीन करने [illegible] सच्चा इश्क, सच्चा प्यार या सच्ची भक्ति कहा है। शब्द [illegible] भक्ति ही सच्चे प्रेम को जन्म देती है तथा यही शब्द [illegible] को गहरा करती है :

लाग्न) रंग कभी नहीं उतरता। जब एक बार काया तथा मन, आत्मा इस रंग में रंगे जाते हैं तो फिर चाहे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँ, यह रंग कभी नहीं उतरता :

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूट टूक कपड़ा उड़ै, रंग ना छोड़ै संग ॥

(भाग ३, साखी २४)

इन प्रमुख विषयों के अतिरिक्त पलटू साहिब ने और भी बहुत से सदाचार संबंधी तथा आध्यात्मिक विषयों पर गूढ़ भाव वाली वाणी की रचना की है। इन पर तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित पलटू साहिब की कुछ वाणी पुस्तक के दूसरे भाग में संकलित की गई है। जिज्ञासुओं के लाभ के लिए स्थान-स्थान पर संक्षिप्त व्याख्या भी की गई है।

द्वितीय भाग

वाणी

कुल-मालिक परमात्मा

अन्य सन्तों की भांति एक परम पिता परमेश्वर में विश्वास[1], उसका प्रेम तथा उसकी प्राप्ति का प्रयत्न पलटू साहिब की वाणी का आधार है।

पलटू साहिब ने उस परमात्मा के अनेक गुणों का वर्णन किया है। आप उस परमात्मा को सर्व-शक्तिमान, सर्व-ज्ञाता तथा सर्व-व्यापक कहते हैं। वह प्रभु सबका आदि और अन्त है। वह सबका कर्त्ता है। वह सबका पालन तथा संभाल करने वाला है। यह संसार उसकी क्रीड़ा, लीला या बाज़ी है। वह अनोखे प्रकार का जादूगर है जो पूर्ण एकता में से अनन्त प्रकार की अनेकता का सृजन करता है। वह सारी रचना का कर्त्ता है, रचना के कण-कण में समाया हुआ है, परन्तु रचना से निर्लिप्त है। वह अलख है, अगम है तथा जहाँ वह है वहाँ कोई दूसरा नही है। वह निराकार परमेश्वर पाँच तत्त्वों, सात स्वर्गों, चाँद, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब से परे है।

सारा संसार उस परमेश्वर की आज्ञा में है। जीव को परमात्मा से मिलने का सौभाग्य भी उस परमात्मा की अपनी रज़ा या दया-मेहर से ही प्राप्त होता है।

सन्त परमात्मा का प्रकट रूप होते है। सन्त तथा परमात्मा में कोई अंतर नहीं। वह परमात्मा स्वय सन्तों का रूप धारण करके जीवों के उद्धार के लिए संसार में आता है। वह स्वयं ही जीवों के हृदय में अपने मिलने का प्यार पैदा करता है तथा स्वयं ही उनको अपने साथ मिलाने की राह दिखाता है।

---

१. देखें : इसी पुस्तक के पृ. २३ से २५

उस परमात्मा का प्रकाश रचना के कण-कण में समाया हुआ है। कोई स्थान उसके प्रकाश से खाली नहीं है। चार खानियाँ, चौदह भवन, चौरासी लाख जीव-योनियाँ, सब में उस एक प्रभु का जहूर है। वह परमात्मा हिन्दुओं में समाया हुआ है तथा वही मुसलमानों और ईसाइयों में भी।

पलटू साहिब ने उस प्रभु को प्यार के साथ कई नामों से याद किया है जैसे साहिब, जगदीश, राम, हरि, गोविन्द, जगन्नाथ, खुदा, रब, रहीम, करीम आदि। इन नामों से अभिप्राय किसी अवतार या पैगम्बर से नहीं बल्कि उस निराकार, निर्लिप परन्तु सर्व-व्यापक परम पिता परमात्मा से है।

सब देवी-देवता, काल तथा माया उस परमात्मा के आधीन है। यह सब उसने पैदा किए हैं तथा उसके घर के नौकर हैं। यह सब रचना के अंग हैं तथा रचना की ही तरह जन्म-मरण के बंधन में हैं। इनकी पूजा, सेवा करने वाला जीव कभी भी बंधन-मुक्त नहीं हो सकता। केवल वह निश्चल, अडोल, अविनाशी प्रभु या उसके प्रत्यक्ष रूप पूर्ण सन्त-सतगुरु की सेवा करने वाला जीव ही रचना के जाल को तोड़ कर वापस निज घर पहुँच सकता है।

वह प्रभु प्रत्येक के अन्दर है। वह हमारे नज़दीक से नज़दीक है। हमें उस प्रभु को अपने अन्दर ही खोजना चाहिए। बाहर तीर्थों, सरोवरों, नदियों, मन्दिरों, मस्जिदों, ठाकुर-द्वारों, ग्रन्थ और शास्त्रों में उसकी खोज करना व्यर्थ है। वह जिसे भी मिला है, अपने अन्दर से मिला है तथा जिसको मिलेगा, अपने अन्दर ही मिलेगा।

पलटू साहिब ने आत्मा परमात्मा के संबंध पर भी भरपूर प्रकाश डाला है। आप कहते हैं कि जिस प्रकार फल तथा बीज, लहर तथा पानी, आभूषण तथा सोने का मूल एक होता है, उसी प्रकार आत्मा तथा परमात्मा का मूल एक है। आत्मा ब्रह्म में है तथा ब्रह्म आत्मा में समाया हुआ है। इसलिए आत्मा भी उस अमर अविनाशी प्रभु की तरह अजर और अमर है। आत्मा के सब दुःख उस अचल, अविनाशी

तथा आनन्द-रूप प्रभु से जुदाई के कारण हैं। मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य ही यह है कि आत्मा अपने आप को तथा अपने मूल को पहचाने और अपने स्रोत उस परमात्मा में समा कर उस का रूप हो जाए :

ऐसी कुदरति तेरी साहिब, ऐसी कुदरति तेरी है ॥
धरती नभ दुइ भीत उठाया, तिस में घर इक छाया है।
तिस घर भीतर हाट लगाया, लोग तमासे आया है ॥
तीन लोक फुलवारी तेरी, फूलि रही बिनु माली है।
घट घट बैठा आपे सींचें, तिल भर कहीं न खाली है ॥
चारि खानि औ भुवन चतुरदस, लख चौरासी वासा है।
आलम तोहि तोहि में आलम, ऐसा अजब तमासा है ॥
नटवा होइ कै बाजी लाया, आपुइ देखनहारा है।
पलटूदास कहौं मैं का से, ऐसा यार हमारा है ॥
(भाग ३, शब्द ९)

कोटि हैं बिस्नु जहँ कोटि सिव खड़े हैं,
कोटि ब्रह्मा तहाँ कथैं बानी।
कोटि देवी जहाँ खड़ी हैं चेरियाँ,
कोटि फन सहस ना मरम जानी ॥
कोटि आकास पाताल फिरि कोटि हैं,
कोटि ब्रह्मांड सौ कोटि ज्ञानी।
दास पलटू कहै बड़े दरबार में,
इंद्र हैं कोटि तहँ भरें पानी ॥
(भाग २, रेखता ८)

सातहू सर्ग अपबर्ग के पार में,
जहाँ मैं रहौं ना पवन पानी।
चाँद ना सूर ना राति ना दिवस है,
उहाँ कै मर्म ना बेद जानी ॥
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्मा न बिस्नु है,
पहुँच ना सकै कोउ ब्रह्म-ज्ञानी।

दास पलटू कहै एक ही एक है,
दूसरा नहीं कोउ राव रानी ॥
(भाग २, रेखता ७५)

पूरन ब्रह्म रहै घट में,
सठ तीरथ कानन[१] खोजन जाई।
कीट पतंग रहे परिपूरन,
कहु तिल एक न होत जुदा ही ॥
नैन दियो हरि देखन को,
पलटू सब में प्रभु देत दिखाई।
ढूंढ़त अंध गरंथन में,
लिखि कागज में कहुँ राम लुकाही ॥
(भाग २, कवित्त १)

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुक तोफान करता ॥
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि[२] में,
[३]आपनी वर्ग दोउ दीन वहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं साच कहता ॥
(भाग २, रेखता १०)

नजर मँह सब की पड़ै कोऊ देखै नाहिं ॥
कोऊ देखै नाहि सीस पै सब के छाजै।
पूरन ब्रह्म अखंड सकल घट आपु विराजै ॥
दिवसै फिरै भुलान रहै तिरगुन महँ माता।
देखि देखि दै छाड़ि पंडित पहँ[४] पूजन जाता ॥

१. वन, २. आकर्षण, ३. दोनों धर्म अपने आप को अच्छा समझते है, ४. पत्थर।

भूला सब संसार भेद नहिं जानै वा की।
देखत है इक संत ज्ञान की दीठी[1] जा की ॥
पलटू खाली कहूँ नहिं परगट है जग माहिं।
नजर मँहै सब की पड़ै कोऊ देखै नाहिं ॥
(भाग १, कुण्डली ९६)

जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाय ॥
जल ही माहिं समाय सोई हरि सोई माया।
अरुझा वेद पुरान नहीं काहू सुरझाया ॥
फूल मँहै ज्यों बास काठ में आग छिपानी।
दूध मँहै घिउ रहै नीर घट माहिं लुकानी ॥
जो निर्गुन सो सर्गुन और न दूजा कोई।
दूजा जो कोइ कहै ताहि को पातक होई ॥
पलटू जीव और ब्रह्म में भेद नहीं अलगाय।
जल से उठत तरंग है जल ही माहिं समाय ॥
(भाग १, कुण्डली १७६)

जोई जीव सोई ब्रह्म एक है, दृष्टि अपानी चर्मा ॥
जिव से जाइ ब्रह्म तब होता, जिव बिनु ब्रह्म न होई।
फल में बीज बीज में फल है, अवर न दूजा कोई ॥
नीर में लहर लहर में पानी, कैसे कै अलगावै।
छाया में पुरुस पुरुस में छाया, दुइ कहवो ने पावै ॥
अछर[2] में मसी[3] मसी में अछर, दुइ कहवो ने कहिये।
गहना कनक कनक[4] में गहना, समझि बूझ करि रहिये ॥
जीव में ब्रह्म ब्रह्म में जिव है, ज्ञान समाधि में सूझै।
माटि में घड़ा घड़ा में माटी, पलटूदास यों बूझै ॥
(भाग ३, शब्द ९७)

जगन्नाथ जगदीस, जग में व्यापि रहा ॥
चारि खानि में लख चौरासी, और न कोई दूजा।

---

१. दृष्टि, २. अक्षर, ३. स्याही, ४. सोना।

आपुइ ठाकुर आपुइ सेवक, करत आपनी पूजा ॥
आपुइ दाता आपुइ मँगता, आपुइ जोगी भोगी ।
आपुइ विस्वा[1] आपुइ विसनी[2], आपु वैद अप रोगी ॥
ब्रह्मा विस्नु महेस आपुई, सुर नर मुनि होइ आया ।
आपुहि ब्रह्म निरूपम गावै, आपुहि प्रेरत माया ॥
आपुइ कारन आपुइ कारज, विस्वरूप[3] दरसाया ।
पलटूदास दृष्टि तव आवै, संत करै जव दाया ॥
(भाग ३, शब्द १०)

साहिव साहिव क्या करै साहिव तेरे पास ॥
साहिव तेरे पास याद करु होवै हाजिर ।
[4]अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिव नादिर ॥
मान मनी हो फना[5] नूर तव नजर में आवै ।
वुरका डारै टारि खुदा वाखुद[6] दिखरावै ॥
[7]रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलावा[8] ।
तीसो रोजा रहै अंदर में सात[9] रिकावा ॥
[10]लामकान में रब्व को पावै पलटूदास ।
साहिव साहिव क्या करै साहिव तेरे पास ॥
(भाग १, कुंडली ९३

दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर ॥
उस मालिक का नूर कहाँ को ढूँढ़न जावै ।
सव मे पूर समान दरस घर वैठे पावै ॥
धरती नभ जल पवन तेही का सकल पसारा ।
छुटै भरम की गाँठि सकल घट ठाकुरद्वारा ॥

१. वेश्या, २. विषयी, ३. ससार, ४. अन्दर जा कर, ५. नष्ट होन
मान या अहकार और मन को नष्ट कर के, ६. अपने आप, ७. रूह का वंधन
आत्मा चढ़ाई कर सकती है, ८. जंजीर, ९. सात स्थान, १०. अनामी : य
रहे हैं कि सात रूहानी मंडलों को पार करके आठवें स्थान से अनामी में मि

तिल भरि नाहिं कहीं जहाँ नहिं सिरजनहारा।
वो ही आवै नजर फुरा[1] बिस्वास हमारा॥
पलटू नेरे[2] साच के झूठे से है दूर।
दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर॥
(भाग १, कुंडली ९४)

क्यों तू फिरै भुलानी जोगिनि, पिय को मरम न जानी॥
अपने पिय को खोजन निकरी, है तू चतुर सयानी।
कंठ में माला खोजै बाहर, अजहूँ लै पहिचानी॥
मृग की नाभि मँहै कस्तूरी, वा को बास बसानी।
खोजत फिरै नहीं वह पावै, होस न करै अपानी॥
लरिका रहै बगल में तेरे, सहर ढोल दै छानी।
खसम रहै पलना पर सूता, पिय पिय करै दिवानी॥
साचा सतगुरु खोजु जाय तू, दयावंत सत-ज्ञानी।
पलटूदास पिया पावैगी, लेहु बचन को मानी॥
(भाग ३, शब्द ८)

हम ने यह बात तहकीक[3] किया,
सब में साहिब भरपूर है जी।
अपनी समुझ कुआँ कै पानी,
क्या नियरे क्या दूरि है जी॥
गाफिल की ओर से सोइ गया,
चेतन को हाल हजूर है जी।
पलटू इस बात को नहिं मानै,
तिस के मुँह में परै धूर है जी॥
(भाग २, झूलना ७)

जो गया साहिब के खोजने को,
सो आपे गया हेराय है जी।
समुँदर के बीच में बुंद परा,
उसी में गया समाय है जी॥

१. सच्चा, २. निकट, ३. खोज।

आपुइ ठाकुर आपुइ सेवक, करत आपनी पूजा ॥
आपुइ दाता आपुइ मँगता, आपुइ जोगी भोगी ।
आपुइ विस्वा[१] आपुइ बिसनी[२], आपु वैद अप रोगी ॥
ब्रह्मा विस्नु महेस आपुई, सुर नर मुनि होइ आया ।
आपुहि ब्रह्म निरूपम गावै, आपुहि प्रेरत माया ॥
आपुइ कारन आपुइ कारज, विस्वरूप[३] दरसाया ।
पलटूदास दृष्टि तव आवै, संत करै जब दाया ॥

(भाग ३, शब्द १०)

साहिव साहिव क्या करै साहिव तेरे पास ॥
साहिव तेरे पास याद करु होवै हाजिर ।
[४]अंदर धसि कै देखु मिलेगा साहिव नादिर ॥
मान मनी हो फना[५] नूर तव नजर में आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा वाखुद[६] दिखरावै ॥
[७]रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलावा[८] ।
तीसो रोजा रहै अंदर में सात[९] रिकावा ॥
[१०]लामकान में रब्ब को पावै पलटूदास ।
साहिव साहिव क्या करै साहिव तेरे पास ॥

(भाग १, कुंडली ९३)

दिल में आवै है नजर उस मालिक का नूर ॥
उस मालिक का नूर कहाँ को ढूँढ़न जावै ।
सब में पूर समान दरस घर वैठे पावै ॥
धरती नभ जल पवन तेही का सकल पसारा ।
छुटै भरम की गाँठि सकल घट ठाकुरद्वारा ॥

---

१. वेश्या, २. विषयी, ३. संसार, ४. अन्दर जा कर, ५. नष्ट होना अर्थात् मान या अहंकार और मन को नष्ट कर के, ६. अपने आप, ७. झूठ का बंधन तोड़ कर आत्मा चढ़ाई कर सकती है, ८. जंजीर, ९. सात स्थान, १०. अनामी : यहाँ समझा रहे है कि सात रूहानी मडलों को पार करके आठवें स्थान से अनामी में मिलाप होना है।

शब्द या नाम

पलटू साहिब के उपदेश के विषय की चर्चा में हम देख आए हैं[1] कि शब्द या नाम से सन्तों का भाव किसी भाषा के लिखने, पढ़ने या बोलने योग्य शब्दों या नामों से नहीं है। सन्तों का शब्द या नाम से भाव परमात्मा की सृष्टि की रचना करने वाली शक्ति से है। यह शक्ति सारी सृष्टि की कर्त्ता है तथा सृष्टि के कण-कण में व्यापक है। यह शक्ति ही संसार का हर कार्य चला रही है तथा यही जीव को माया के जाल से छुड़ा कर अपने साथ मिला सकती है।

इस एक शक्ति को भिन्न-भिन्न समय, स्थान पर आए भिन्न-भिन्न सन्त-महात्माओं ने भिन्न-भिन्न नामों से याद किया है। यह शक्ति एक निरन्तर ध्वनि तथा प्रकाश के रूप में सृष्टि में रमी हुई है। इसलिए इसको दिव्य ज्योति तथा दिव्य ध्वनि भी कहा गया है। इसके नादमय तथा प्रकाशमय स्वभाव के कारण ही इसको 'नाद', 'निर्मल नाद', 'दिव्य ध्वनि', 'दिव्य ज्योति' आदि कई नामों से स्मरण किया गया है। पलटू साहिब ने भी स्थान-स्थान पर शब्द या नाम के नादमय तथा प्रकाशमय गुणों का वर्णन किया है।

नाम का प्रकाश तथा नाम की ध्वनि बिना स्पर्श, चोट या रगड़ के पैदा होती है। इसका कोई आदि, मध्य या अन्त नहीं है। इसलिए ऋषियों-मुनियों ने इसको 'नाद', 'अनहद नाद', 'अनहद बानी', 'अनहद ध्वनि' या 'आकाशवानी' आदि कहा है। मुसलमान सन्तों ने इसको 'कलमा', 'कलाम', 'कुन', 'सौत', 'बांग', 'आवाज', 'कलाम-ए-इलाही', 'नदाए-सुलतानी', 'इस्मे-आजम' (बड़ा-नाम), 'सुलतानुल-अज़कार'—

१ देखें : इसी पुस्तक के पृष्ठ ३३ से ४४।

पानी लहरि लहरि पानी,
को भेद सकै अलगाय है जी ।
पलटू हरफ[1] मसी दोय दोय नाहीं,
यह बात ले ठीक ठहराय है जी ॥
(भाग २, झूलना ५२)

पलटू खोजै पूरबे घर में है जगन्नाथ ॥
घर में है जगन्नाथ सकल घट व्यापक सोई ।
पसु पंछी चर अचर और नहिं दूजा कोई ॥
पूरन प्रगटे ब्रह्म देंह धरि सब में आये ।
दिया कर्म को आड़ भेद यह बिरलन पाये ॥
उपजै बिनसै देंह जीव सो मरता नाहीं ।
कहन सुनन को जुदा रहत है सब घट माहीं ॥
चलते चलते पग थका एको लागा न हाथ ।
पलटू खोजै पूरबे घर में है जगन्नाथ ॥
(भाग १, कुंडली २६४)

खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ॥
घर ही लागा रंग कीन्ह जब संतन दाया ।
मन में भा बिस्वास छूटि गइ सहजै माया ॥
[2]बस्तु जो रही हिरान ताहि का लगा ठिकाना ।
अब चित चलै न इत उत आपु में आपु समाना ॥
उठती लहर तरंग हृदय में सीतल लागे ।
भरम गई है सोय बैठि कै चेतन जागे ॥
पलटू [3]खातिर जमा भइ सतगुरु कै परसंग ।
खोजत खोजत मरि गये घर ही लागा रंग ॥
(भाग १, कुंडली ९५)

साहिब तुम सब के वाली, तेरे बिनु कहूँ न खाली ॥
सब घट तेरा नूर बिराजै, [4]कहूँ चमन कहुं गुल कहुं माली ।
पलटू साहिब जुदा नहीं है, मिहदी के पात छिपी ज्यों लाली ॥
(भाग ३, शब्द ११)

---

१. अक्षर, २. जो वस्तु लेना चाहते थे, ३. संतुष्टि हो गई, ४. कहीं बाग है, कहीं फूल है और कहीं माली है।

रूप कहो अनरूप पवन अनरेख ते ।
अरे हाँ पलटू गैब दृष्टि से सन्त नाम वह देखते ॥
नाम डोरि है गुप्त कोऊ नहिं जानता ।
निःअच्छर निःरूप दृष्टि नहिं आवता ॥
ररंकार आकार पवन को देखना ।
अरे हाँ पलटू देखत है इक संत और सब पेखना ॥
(भाग २, अरिल २ व ३)

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी ।
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी ॥
हाँ को करै खमोस होस ना तन को राखै ।
गगन गुफा के बीच पियाला प्रेम का चाखै ॥
बिसरै भूख पियास जाय मन रँग में लागै ।
पाँच पचीस रहे बार संग में सोऊ भागै ॥
आपुइ रहै अकेल बोलै बहु मीठी बानी ।
सुनतै अब वह बन कहा मैं कहौं बखानी ॥
पलटू गुरु परताप ते रहै जगत में सोय ।
नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय ॥
(भाग १, कुंडली ११)

दीपक बारा नाम का महल[१] भया उजियार ॥
महल भया उजियार नाम का तेज बिराजा ।
सब्द किया परकास मानसर[२] ऊपर छाजा ॥
दसो दिसा भई सुद्ध बुद्ध[३] भई निर्मल साची ।
छूटी कुमति की गाठि सुमति परगट होय नाची ॥
होत छतीसो राग दाग तिर्गुन का छूटा ।
पूरन प्रगटे भाग करम का कलसा फूटा ॥

१. शरीर, २. मानसरोवर, ३. बुद्धि, ४. दया का भरा घड़ा फूट गया - त्रिकुटी में पड़े कर्मों के भंडार का नाश हो गया।

पलटू अँधियारी मिटी बाती दीन्ही टार।
दीपक बारा नाम का महल भया उजियार॥

(भाग १. कुंडली १५)

राम के नाम से भूलना नाहिं है,
खायगा यार तू फेरि गोता।
काम औ क्रोध में लगा दिन राति तू,
लोभ औ मोह का खेत जोता।
भई जागीर, तागीर[1] हजूर से,
काल ने आय के लिहा पोता[2]।
दास पलटू कहै पड़ा किस ख्याल में,
घरी पल पहर में कूच होता।

(भाग २. रेख़ता २६)

अरे मोरे सबद बिबेकी हंसा हो, बैठो सबद की डार॥
[3]सबदै ओढ़ो सबद बिछाओ [4]सबदै भूख अहार।
निसि दिन रहो सबद के घर में, [5]सबदै गुरू हमार।
लै हथियार सबद के मारो, सबद खेत ठहराओ।
कबहुँ कुचाल जो होइ तुम्हारी, सबद में भागि लुकाओ॥
आदि अनादि सबद है भाई, सबदै मूल बिचारा।
जिनके चोट सबद की लागी, आवागवन निवारा॥
सबदै मूल है सबदै साखा, सबदै सबद समाना।
पलटूदास जो सबद बिबेकी, सबद के हाथ बिकाना॥

(भाग ३. शब्द १५)

सबद छुड़ावै राज को सबदै करै फकीर॥
सबदै करै फकीर सबद फिर राम मिलावै।

---

१. तबादला, २. माल-गुजारी, कर, ३. शब्द ही उनकी ओढ़नी है, शब्द ही बिछावन है, ४. उनको शब्द की ही भूख है और शब्द ही उनका आहार है, ५. गुरु नानक साहिब ने कहा है : 'सबदु गुरू सुरति धुनि चेला'। दूसरे सब पूर्ण सन्तों ने भी 'शब्द गुरु' का उपदेश दिया है क्योंकि पूरा सतगुरु शब्द का रूप होता है और वह जीव को भी शब्द से मिला कर शब्द का ही रूप कर देता है।

जिन के लागा सबद तिन्है कछु और न भावै ॥
मरे सबद की घाव उन्है को सकै जियाई ।
होइ गा उनका काम परी रोवै दुनियाई ॥
घायल भा वह फिरै सबद कै चोट है भारी ।
जियतै मिरतक होय झुकै फिर उठै सँभारी ॥
पलटू जिन के सबद का लगा कलेजे तीर ।
सबद छुड़ावै राज को सबदै करै फकीर ॥
(भाग १, कुंडली ८८)

मुए सोई जीवते भाई, जिन्ह लागी सबद की चोट ॥
उनको काऊ कुछ कहै, उन तजी है जक्त की लाज ।
वो सहज परायन होइ गये, उन मुकत किहा सब काज ॥
उनको और न भावई, इक भावत है सतसंग ।
वो लोहा से कंचन भये, लगि पारस के परसंग ॥
जिन्ह ने सबद बिचारिया, तिन्ह तुच्छ लगै संसार ।
वो आय पड़े सतसंग में, सब डारि दिहा सिर भार ॥
सबद छुड़ावै राज को, फिरि सबदै करै फकीर ।
पलटूदास वो ना जियै, जिन्ह लगा सबद का तीर ॥
(भाग ३, शब्द १६)

पीवता नाम सो जुगन जुग जीवता,
नाहिं वो मरै जो नाम पीवै ।
काल ब्यापै नहीं अमर वह होयगा,
आदि औ अंत वह सदा जीवै ॥
संत जन अमर है उसी हरि नाम से,
उसी हरि नाम पर चित्त देवै ।
दास पलटू कहै सुधा रस[१] छोड़ि कै,
भया अज्ञान तू छाछ लेवै ॥
(भाग २, रेख़ता ५)

---

१ अमृत ।

लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय ॥
जो चाहै सो लेय जायगी लूट ओराई ।
तुम का लुटिहौ यार गांव जव दहिहैं[१] लाई ॥
ताकै कहा गँवार मोट भर वाँध सितावी[२] ।
लूट में देरी करै ताहि की होय खरावी ॥
वहुरि न ऐसा दाँव नहीं फिर मानुष होना ।
क्या ताकै तू ठाढ़ हाथ से जाता सोना ॥
पलटू मैं उतृन[३] भया मोर दोस जिन देय ।
लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय ॥

(भाग १, कुंडली १२)

मीठ वहुत सतनाम है पियत निकारै जान ॥
पियत निकारै जान मरै की करै तयारी ।
सो वह प्याला पियै सीस को धरै उतारी ॥
आँख मूंदि कै पियै जियन की आसा त्यागै ।
फिरि वह होवै अगर[४] मुए पर उठि कै जागै ॥
हरि से वे हैं वड़े पियो जिन हरि रस जाई ।
ब्रह्मा विस्नु महेस पियत कै रहे डेराई ॥
पलटू मेरे वचन को ले जिज्ञासू मान ।
मीठ वहुत सतनाम है पियत निकारै जान ॥

(भाग १, कुंडली १३)

लागी गाँसी सवद की पलटू मुआ तुरन्त ॥
पलटू मुआ तुरन्त खेत के ऊपर जाई ।
सिर पहिले उड़ि गया रुंड[५] से करै लड़ाई ॥
तन में तिल तिल घाव परदा खुलि लटकत जाई ।
हैफ[६] खाइ सव लोग लड़ै यह कठिन लड़ाई ॥

१. जनावेगा, २. शीघ्र, ३. सफल हो गया, पार हो गया, ४. जो जीते-जी मरना सीखे, जो अभ्यास द्वारा जब चाहे सुरत को शरीर में से समेट कर अन्दर नाम से जोड़ ले और जब चाहे सुरत शरीर में वापिस उतार के जीवित हो जाए, ५. धड़, ६. खेद ।

*सतगुरु मारा तीर बीच छाती में मेरी।
तीर चला होइ पवन निकरि गा तारू[1] फोरी ॥
कहने वाले बहुत हैं कथनी कथैं बेअंत।
लागी गाँसी सबद की पलटू मुआ तुरंत॥
(भाग १, कुंडली १०१)

हाथी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक॥
कहै सुनै सो खाक खाक है मुलुक खजाना।
जोरू बेटा खाक खाक जो साचै माना॥
महल अटारी खाक खाक है बाग बगैचा।
सेत सपेदी खाक खाक है हुक्का नैचा॥
साल दुसाला खाक खाक मोतिन कै माला।
नौबतखाना खाक खाक है ससुरा साला॥
पलटू नाम खुदाय का यही सदा है पाक।
हाथी घोड़ा खाक है कहै सुनै सो खाक॥
(भाग १, कुंडली १८)

सबद सबद सब कहत है, क्या सबद कहाई।
केतिक ब्रह्मा लिखि गये, सो हम हीं भाई॥
एक जोति बादसाह भइ, तीन्युं लोक पसारा।
तेहि को मारि गिराइया, सिर छत्र हमारा॥

*इस प्रसंग की कबीर साहिब के निम्नलिखित दोहों से तुलना करके देखें कि किस प्रकार दोनों सन्त एक ही भाव प्रकट कर रहे हैं :

गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु मे भाव।
सोई गुरु नित बंदीए, जो शबद बतावे दाव॥ (कबीर)
कबीर गूगा हूआ बावरा बहरा हूआ कान॥
पावहु ते पिगुल भइआ मारिआ सतिगुर बान॥
कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु॥
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु॥
(आदि ग्रन्थ, [illegible]

1. तालु।

बहुत समाधी सिव थके, [१]वहँ पवन न पैसा ।
केतिक जुग परलै गये, तव के हम बैसा ॥
चाँद सुरुज एको नहीं, धरती नभ साता ।
राम कृस्न कोटिन मुए, कहूँ तब की बाता ॥
उपजत विनसत गया सब, बिस चारि अठैसा[२] ।
सो सब पलटू देखिया, हम जैसे क तैसा ॥

(भाग ३, शब्द १५६)

जेहि सुमिरे गनिका[३] तरी ता को सुमिरु गँवार ॥
ता को सुमिरु गँवार भला अपना जो चाहो ।
झूठा है संसार [४]रैन सुपने सा जानो ॥
माता पिता सुत वन्धु झूठ इनको सब जानो ।
सतसंगति हरि भजन सत्त दुइ इनको मानो ॥
और देव सब वृथा[५] आस इन की ना कीजै ।
सब देवन के देव हरी अन्तर भजि लीजै ॥
पलटू हरि के भजन विनु कोउ न उतरै पार ।
जेहि सुमिरे गनिका तरी ता को सुमिरु गँवार ॥

(भाग १, कुडली १३४)

भीतर औटै तत्व को उठै सबद की खानि ॥
उठै सबद की खानि रहै अंतर लौ लागी ।
सुरति देइ उदगारि[६] जोगिनी आपुइ जागी ॥
सहज घाट हरि ध्यान ज्ञान से [७]मन परमोधै ।
नहि संग्रह नहि त्याग आपनी काया सोधै ॥
प्रेम भभूत लगाइ धरै धीरज मृगछाला ।
तिलक उनमुनी भाल जपत है अजपा माला ॥

---

१. वहाँ नहीं पहुँच सका, २. २०+४+२८=५२ अर्थात् ५२ अक्षरों के फेर में; ३. एक वेश्या जो प्रभु के सच्चे नाम के सुमिरन से पार हो गई थी, ४. रात के स्वप्न की तरह, ५. व्यर्थ, ६. जगाये, ७. मन को शिक्षा या ज्ञान दें ।

पलटू ऐसा होय जो सो जोगी परमान ।
भीतर ओटै तत्व को उठै सबद की खानि ॥
(भाग १, कुंडली २२८)

राखु परवाह तू एक निज नाम की,
खलक मैदान में बांध टाटी ।
मीर उमराव दिन चारि के पाहुना[1],
छोडि घर माँहि दौलत्त हाथी ॥
पकरि ले सबद जिन तोहि पैदा किया,
और सब होइँगे खाक माटी ।
दास पलटू कहै देखु संसार गति,
बिना निज नाम नहिं कोई साथी ॥
(भाग २, रेखता ६)

नाम के रे परताप से भये आन के आन ॥
भये आन के आन बड़े के पाँव पड़ूँगा ।
का बपुरा तिल तेल फूल संग बिकता महँगा ॥
संत हैं बड़े दयाल आप सम मो को कीन्हा ।
जैसे भृङ्गी कीट सिच्छा[2] कुछ ऐसी दीन्हा ॥
राई किहा सुमेर [3]अजया गजराज चढ़ाई ।
तुलसी होइगा रेंड मरन की पैज बड़ाई ॥
पलटू जातिन नीच मैं सब औगुन की खान ।
नाम के रे परताप से [4]भये आन के आन ॥
(भाग १, कुंडली १६)

इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भये मेरे भाग हैं जी ।
गगन की डारि पपिहा बोलै,
सोवत उठी मैं जागि हों जी ॥

1. अतिथि, 2. शिक्षा, 3. बकरी को हाथी पर सवारी कराई, 4. और से और हो गए ।

चिराग बरै बिनु तेल बाती,
नहि दीया नहि आग है जी।
पलटू देखि के मगन भया,
सब छुट गया तिर्गुन दाग है जी॥

(भाग २, झूलना ६)

बूड़ी जात जहाज है नाम निर्वतिक[1] बोल॥
नाम निर्वतिक बोल हाथ से तेरे जाती।
मांझ धार में फटी सूम की जोगवै थाती॥
ऐसे मूरख लोग लालच में जनम गँवावैं।
गई हाथ से चीज तेहू पर लेखा लावै॥
[2]कंठा रूँधन भये मोह में लागा अजहूँ।
कीन्हे प्रान पयान [3]नाम ना सुमिरे तबहूँ॥
पलटू नर तन रतन सम भा कौड़ी के मोल।
[4]बूड़ी जात जहाज है नाम निर्वतिक बोल॥

(भाग १, कुडली ५५)

सुरत शब्द के मिलन में मुझ को भया अनंद॥
मुझको भया अनंद मिला पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी॥
मुलुक भया सलतन्त मिला हाकिम को राजा।
रैयत करै अराम खोलि के दस दरवाजा[5]॥
छूटी सकल बियाधि[6] मिटी इंद्रिन की दुतिया।
को अब करै उपाधि चोर से मिलि गइ कुतिया॥
पलटू सतगुरु साहिब काटो मेरी बंद।
सुरत शब्द के मिलन में मुझको भया अनंद॥

(भाग १, कुडली ८९)

---

१. बचाने वाला, २. गले में रोना आ गया, ३. प्राण निकल गए, ४. जहाज चला जा रहा है, ५. दसवां द्वार जोकि आन्तरिक रूहानी जगत का तीसरा मंडल है, ६. विपत्ति।

सुरति सुहागिनि उलटि कै मिली सबद में जाय ।।
मिली सबद में जाय कन्त को बसि में कीन्हा ।
चलै न सिव कै जोर जाय जब सक्ती लीन्हा ।।
फिर सक्ती ना रही मिली जब सिव में जाई ।
सिव भी फिर ना रहे सक्ति से सीव कहाई ।।
अपने मन कै फेर और ना दूजा कोई ।
सक्ती सीव है एक नाम कहने को दोई ।।
पलटू सक्ती सीव का भेद गया अलगाय ।
सुरत सुहागिनि उलटि कै मिली सबद में जाय ।।
(भाग १, कुंडली २२६)

जप तप तीरथ बर्त है, जोगी जोग अचार ।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार ।।
(भाग १, साखी ७)

पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय ।।
मनै रसायन होय करै या तन की सीसी ।
संपुट दै गुरु ज्ञान बिस्वास दवाई पीसी ।।
[1]दसौ दिसा से मूंदि जोग की भाठी बारै ।
तेहि पर देहि चढ़ाय ब्रह्म की अग्नि से जारै ।।
ईंधन लावै ध्यान प्रेम रस करै तयारी ।
सबद सुरति के बीच तहाँ मन राखै मारी ।।
जड़ि बूटी के खोजते गई सिध्याई खोय ।
पलटू पारस नाम का मनै रसायन होय ।।
(भाग १, कुंडली २६६)

[2]देखो जिउ की खोय को फिर फिर गोता खाय ।।
फिर फिर गोता खाय तनिक ना लज्जा आवै ।
पड़िगा वही सुभाव छुटै ना लाख छुटावै ।।

१. ख्याल हर ओर से हटा कर अन्दर जोड़ दें, २. जीव की आदत देखें कि हर जन्म में दुःख सहता है परन्तु चौरासी में भ्रमण की आदत नहीं छोड़ता ।

*निमिख भरे की खुसी जन्म कोटिन दुख पावै।
चौरासी घर जाय आपु में आपु बँधावै॥
स्वान हाड़ जो खाय दिया चाटै पै चाटै।
छुटै न जिउ की खोय पकरि के पुरजे काटै॥
पलटू भजै न नाम को मूरख नर तन पाय।
देखो जिउ की खोय को फिर फिर गोता खाय॥

(भाग १, कुंडली २२९)

चिन्ता रूपी अगिन में जरै सकल संसार॥
जरै सकल संसार जरत निरपति[1] को देखा।
बादसाह उमराव जरत हैं सैयद[2] सेखा॥
सुर नर मुनि सब जरैं जोगी औ जती सन्यासी।
पंडित ज्ञानी चतुर जरै कनफटा उदासी॥
जंगम[3] सिवरा जर जरै नागा बैरागी।
तपसी दूना जरै बचै नहिं कोऊ भागी॥
पलटू बचते संत जन जेकरे नाम अधार।
चिन्ता रूपी अगिन में जरै सकल संसार॥

(भाग १, कुंडली २३१)

खोजत हीरा को फिरै [4]नहीं पोत को दाम॥
नहीं पोत को दाम जौहरि की गांठ खुलावै।
बातन की बकवाद जौहरी को बिलमावै॥
लम्बी बोलत बात करै बातन की लदनी।
कौड़ी गाँठि नाहिं करत है बातें इतनी॥
[5]लखिगा जौहरी ताड़ फिरा है गाहक खाली।
थैली लई समेटि दिहा गाहक को टाली॥

---

*क्षण भर की खुशी के लिए करोड़ों दुःख सहना है। गुरु साहिब ने भी कहा है: निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि॥ (आदि ग्रन्थ, ४०३)

१. राजा. २. हजरत मुहम्मद के वंश के लोग. ३. सदा भ्रमण करने वाले। ४. पल्ले पैसे नहीं. ५. जौहरी समझ गया।

लोक लाज छूटै नहीं पलटू चाहै नाम।
खोजत हीरा को फिरै नहीं पोत को दाम॥
(भाग १, कुंडली १२८)

तन मन धन सब आनि आगे धरै,
तेहू को नाहिं इतबार कीजै।
ज्ञानी औ चतुर को सबद ना दीजिये,
माया के जीव के सबद छीजै॥
जहाँ सो मिला फिरि उलटि फिरि जायगा,
प्रीति कितनो करै परखि लीजै।
दास पलटू कहै प्रेमी जो सबद का,
तेहू को परखि कै सबद दीजै॥
(भाग २, रेखता ८८)

माहातम[1] जानै नहीं, मेंड़की गंगा बीच।
पलटू सबद लगै नहीं, कतनो रहै नगीच[2]॥
(भाग ३, साखी ५)

ज्ञान देय मूरख कँहै, पलटू करै विवाद।
बाँदर को आदी[3] दिया, कछु ना कहै सवाद॥
(भाग ३, साखी ११२)

सतगुरु बपुरा[4] क्या करै, चेला करै न होस।
पलटू भीजै मोम ना, जल को दीजै दोस॥
(भाग ३, साखी १२५)

*ज्ञान धनुष सतगुरु लिहे, सबद चलावै बान।
पलटू तिल भर ना धसै, जियतै भया पषान॥
(भाग ३, साखी १२६)

*गाँसी छूटै सबद की, मूरख करै न ज्ञान।
पलटू सतगुरु क्या करै, हिरदय भया पखान[5]॥
(भाग ३, साखी १६५)

---

१. महातम, महिमा, बड़ाई, २ निकट, ३ अदरक, ४ बेचारा ५ पत्थर

*कबीर साहिब ने भी कहा है:
कबीर साचा सतिगुरु किआ करै जउ सिखा महि चूक॥
अंधे एक न लागई जिउ बांसु बजाईऐ फूक॥ (आदि ग्रन्थ, १३[illegible]

सन्त, साधू, हरिजन, फ़कीर व सतगुरु

पलटू साहिब ने परमात्मा की बहुत प्रशंसा की है पर सन्तों की प्रशंसा में भी कोई कमी नहीं छोड़ी। आप ने सन्त को परमेश्वर की ही तरह अलख और अगम कहा है। भाव यह है कि सन्तों की गति कहने सुनने से परे है। सन्त-जन सर्व-समर्थ होते हैं। वे मन, माया तथा काल के घेरे से पार चले जाते हैं। वे अपनी शरण में आने वाले जीवों को भी मन, माया, काल, आवागवन तथा चौरासी के चक्कर से आज़ाद कर देते हैं।

पलटू साहिब ने सन्तों की प्रशंसा में उनकी शीतलता, सहनशीलता तथा क्षमा के गुणों पर बहुत बल दिया है। सन्त दया का रूप होते हैं, इसलिए वे न किसी के अवगुण देखकर घबराते हैं, न ही किसी की शत्रुता तथा घृणा का बुरा मानते हैं। वे समदर्शी होते हैं तथा प्रत्येक प्रकार के जीवों से एक जैसा प्यार करते हैं। उनके लिए न कोई बड़ा-छोटा होता है, न अमीर-गरीब, न स्त्री-पुरुष तथा न ही हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-पारसी।

सन्त-जन प्रत्येक प्रकार के बाहरमुखी भेष, बाह्य आडम्बर, रीति-रिवाज तथा कर्म-काण्ड आदि से ऊपर होते हैं। वे न किसी विशेष वेष-भूषा से बँधे होते हैं, न ही किसी विशेष कौम, मज़हब या देश के जीवों से। वे आत्म-दर्शी होते है तथा बिना किसी प्रकार के बाहरमुखी भेदभाव के प्रत्येक को शब्द या नाम की अन्तर्मुख साधना का एक ही साधन समझाते हैं।

सन्त सच्चे परोपकारी होते हैं जो जीवों पर दया करके उनको परमेश्वर-प्राप्ति की युक्ति सिखाते हैं तथा अनेक प्रकार के कष्ट सहन

करते हुए जीवों की सहायता करते हैं।

सन्त नाम के रसिया तथा नाम के अभ्यासी होते हैं। वे नाम में समाकर नाम का रूप हो चुके होते हैं तथा वे भवसागर में फँसे जीवों को नाम के जहाज पर बैठा कर सचखण्ड पहुँचाने के लिए संसार में आते हैं। चाहे कोई लाखों उपाय कर ले, लाखों स्थानों पर नाम की खोज कर ले, परन्तु बिना सन्तो के मिले नाम का भेद प्राप्त होना तथा नाम से मिलाप हो सकना असम्भव है।

सन्त-जन सच्चे त्यागी होते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मा को संसार तथा शरीर में से निकाल कर शब्द या परमात्मा में लीन कर लिया होता है। वे संसार तथा इसके पदार्थो के मोह से ऊपर उठ चुके होते है। माया उनकी दासी होती है। वे जीवन मुक्त होते है।

सन्त-जन ज्ञान रूप होते हैं। वे अपने सत्संग द्वारा जीवो को प्रत्येक प्रकार के शंकाओं व भ्रमों में से निकाल कर सच्ची परमेश्वर भक्ति की ओर लगा देते है।

सन्त-जन दाता होते है भिखारी नही। वे स्वय अपनी जीविका कमाते है तथा कभी अपने निजी हित के लिए किसी की एक पाई तक नही लेते। उनके पास नाम, प्रभु-भक्ति, प्रभु की रजा तथा प्रभु सेवा का अमूल्य धन होता है, जिसकी प्राप्ति के लिए सारा संसार उनका सेवक बनने के लिए तैयार रहता है। लोग उनको अपना सब कुछ देना चाहते है परन्तु पूर्ण सन्त किसी से कुछ नही लेना चाहते। वे अलमस्त, अलगरज और बे-परवाह होते है तथा कभी भी अपने दिए हुए ज्ञान [illegible] नाम की कोई सेवा या दक्षिणा स्वीकार नहीं करते। वे तो स्वयं [illegible] हाथों से इस धन को मुफ्त लुटाते है।

सन्त-जन संसार में प्रेम या नाम का प्रकाश फैलाते है [illegible] कार्य को करने के लिए उन्हे अनेक कष्ट झेल कर स्थान-[illegible] पड़ता है। वे प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य को करते है। जब [illegible] होता है तथा अज्ञानी लोग उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट [illegible] भी वे सब्र-संतोष और खुशी से प्रभु प्रेम की प्याली [illegible]

भरी सेवा करते रहते हैं। वे प्रभु का रूप होते हैं तथा उसी के समान निष्काम, निर्वैर, दया तथा क्षमा का पुञ्ज होते हैं :

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार ॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं ॥
प्रीत बढ़ावैं जक्त में, धरनी पर डोलैं।
कितनो कहै कठोर बचन वे अमृत बोलैं ॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा ॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार ॥

(भाग १, कुंडली ४)

सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत ॥
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं।
जो कोइ आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावैं ॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी।
कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी ॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगंध लगावैं।
तीन ताप मिट जाय संत के दरसन पावैं ॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरंत।
सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत ॥

(भाग १, कुंडली २३)

सील सनेह सीतल बचन,
यही संतन की रीति है जी।
सुनत के प्रान जुड़ाय जावैं,
सब से करते वे प्रीति हैं जी ॥
चितवनि चलनि मुसक्यानि नवनि,
नहिं राग दोष हानि जीति है जी।

पलटू छिमा संतोष सरल,
तिन को गावैं स्रुति नीति है जी ॥
(भाग २, झूलना १०

संत बराबर कोमल दूसर को चित नाहिं ॥
दूसर को चित नाहिं करै सब ही पर दाया ।
हित अनहित सब एक असुभ सुभ हाथ बनाया ॥
[1]कोमल कुसुमी चाह नही सुपने में दूषन ।
देखैं परहित लागि प्रेम रस चूवैं ऊखन[2] ॥
मिलनसार मुसकान वचन मृदु बोली मीठी ।
पुलकित सीतल गात सुभग रतनारी दीठी[3] ॥
पलटू कौनो कछु कहै तनिको ना अकुलाहिं ।
संत बराबर कोमल दूसर को चित नाहिं ॥
(भाग १, कुंडली २४

संत दरबार तहसील संतोष की,
कचहरी ज्ञान हरि नाम डंका ।
रिद्धि औ सिद्धि दोउ हाथ बाँधे खड़ी,
विवेक ने मारि कै दिहा धक्का ॥
मुक्ति सिर खोलि कै करै फिरियाद को,
दिहा दुदकार यह अदल बंका[4] ।
मारि माया कहै अमल ऐसा किहा,
दास पलटू अहै हरीफ़[5] पक्का ॥
(भाग २, रेखता १८

काम क्रोध जिन के नही लगै न भूख पियास ॥
लगै न भूख पियास रहै तिरगुन से न्यारा ।
लोभ मोह हंकार नीद की गर्दन मारा ॥
सत्रु मित्र सब एक एक है राजा रंका ।
दुख सुख जीवत मरन तनिक ना व्यापै संका ॥

१. अर्थात् नर्म दिल होने [illegible] २. गन्ना, ३. दृष्टि, ४. बाँका, ५ मर्द ।

कंचन लोहा एक एक है गरमी पाला।
अस्तुति निन्दा एक एक है नगन दुसाला॥
पलटू उन के दरस से होत पाप को नास।
काम क्रोध जिन के नहीं लगै न भूख पियास॥

(भाग १, कुंडली ३४)

ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच[1]॥
ना काहू से रोच दोऊ को इक-रस जाना।
वैर भाव सब तजा रूप अपना पहिचाना॥
जो कंचन सो काँच दोऊ की आसा त्यागी।
हारि जीत कछु नाहिं प्रीति इक हरि से लागी॥
दुख सुख संपति बिपति भाव ना यहु से दूजा।
जो बाम्हन सो सुपच[2] दृष्टि सम की पूजा॥
ना जियने की खुसी है पलटू मुए न सोच।
ना काहू से दुष्टता ना काहू से रोच॥

(भाग १, कुंडली ३५)

विगत राग[3] जो होय ज्ञान में चक्कवै॥
तुरिया से आतीत भजन में पक्कवै॥
रहनी गहनी एक सबद पहिचानिये।
अरे हाँ पलटू ऐसा जो कोइ होय गरू करि मानिये॥

(भाग २, अरिल १४)

आसन दृढ़ जो होय नींद आहार में।
अठएँ लोक[4] की बात कहै टकसार में॥
आठो पहर असोच रहै दिल खुसी पर।
अरे हाँ पलटू तन मन धन सब वार डारिहौं उसी पर॥

(भाग २, अरिल १५)

केहू भेप में नाहिं रहै अड़बंग[5] है।
[6]देवे मंहै कुसाद खाय में तंग है॥

---

१. रुचि, प्यार, २. डोम, एक नीच जाति, ३. कामना रहित, ४. सचखण्ड, बेपरवाह, ६. दूसरों को देने में उदार हृदय परन्तु अपने खर्च में तंगी रखने वाला।

जग से रहै उदास मरहमी[1] अंत के।
अरे हाँ पलटू ऐसी रहनि रहै सो लच्छन संत के ॥
(भाग २, अरिल १३)

संत संत सब बड़े है, पलटू कोऊ न छोट।
आतम-दरसी मिहीं है, और चाउर सब मोट ॥
(भाग ३, साखी १)

गगन कि धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मैं वा का चेरा ॥
सुन में नगर बसावई, भूतत भे जागै।
जल मे अगिन छपावई, संग्रह में त्यागै ॥
जंत्र बिना जन्त्री बजै, रसना बिनु गावै।
सोहं सबद अलापि कै, मन को समुझावै ॥
*सुरति डोर अमृत भरै, जहँ कूप उरधमुख।
उलटै कमल हि गगन में, तब मिलै परम सुख ॥
भजन अखंडित लागई, जस तेल कि धारा।
पलटूदास दंडौत करि, तेहि बारम्बारा ॥
(भाग ३, शब्द १)

बूझि विचारि गुरु कीजिये, जो कर्म से न्यारा।
कर्म-बन्ध हरि दूरि है, बूड़हु मँझधारा ॥
काम क्रोध जिनके नहीं, नहि भूख पियासा।
लोभ मोह एको नहीं, नहि जग की आसा ॥

---

१. भेदी।

*कबीर साहिब भी कहते हैं कि आन्तरिक सुन्न में नाम रूपी अमृत का उलटा कुआ है, परन्तु कोई विरले गुरमुख या साधू उस अमृत को पी सकते हैं। निगुरे इस अमृत को नहीं पी सकते :

गगन मंडल बिच उर्धमुख कुइआ,
गुरमुख साधू भर भर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन पीया,
जा के हिरदे अंधियारा है। (सन्तों की बानी, २

ज्यों कंचन त्यो काँच है, अस्तुति सो निन्दा ।
सत्रु मित्र दोउ एक हैं, मुरदा नहिं जिन्दा ॥
जोग भोग जिनके नहीं, नहिं संग्रह त्यागी ।
बन्द मोष एको नहीं, [1]सत सबद के दागी ॥
पाप पुन्य जिनके नहीं, नहिं गरमी पाला ।
पलटू जीवन-मुक्त ते, साहिब के लाला ॥
(भाग ३, शब्द २)

साध बचन साचा सदा जो दिल साचा होय ॥
जो दिल साचा होय रहै ना दुबिधा भागै ।
जो चाहै सो मिलै बात में बिलँब न लागै ॥
मन बच कर्म लगाय संत की सेवा लावै ।
[2]उकठा काठ बियास साच जो दिल में आवै ॥
जिनको है बिस्वास तेही को बचन फुरानी ।
ह्वैगा उन का काम सन्त की महिमा जानी ॥
पलटू गांठि में बाँधिये खाली पड़ै न कोय ।
साध बचन साचा सदा जो दिल साचा होय ॥
(भाग १, कुंडली २३५)

कोइ कोइ संत सुजान, जानै बस्तु आपनी ॥
जिन जाना तिन हीं सुख पाया, और सबै हैरान ॥
संग्रह त्याग नहीं कुछ एको, नहीं मान अपमान ॥
सम्पति बिपति अस्तुती निंदा, ना कुछ लाभ न हान ॥
पलटूदास खोजत सब मरिगा, परा रहै चौगान[3] ॥
(भाग ३, शब्द १५२)

पलटू ऐसे दास को भरम करै संसार ॥
भरम करै संसार होइ आसन का पक्का ।
भली बुरी कोउ कहै [4]रहै सहि सब का धक्का ॥

१. जिन पर सच्चे नाम की मोहर लगी हुई है, २. सूखी लकड़ी हरी हो जाती है, ३. मैदान, ४. सबकी ज्यादती सहन कर लेता है ।

धीरज धै संतोष रहै दृढ़ ह्वै ठहराई।
जो कछु आवै खाइ बचै सो देइ लुटाई॥
लगै न माया मोह जगत की छोड़ै आसा।
बल तजि निरबल होय सबुर मे करै दिलासा॥
काम क्रोध को मारि कै मारै नींद अहार।
पलटू ऐसे दास को भरम करै संसार॥

(भाग १, कुंडली १४०)

अस्तुति निन्दा कोउ करै, लगै न तेहि के साथ।
पलटू ऐसे दास के, सब कोइ नावै माथ॥

(भाग ३, साखी १२)

दुष्ट मित्र सब एक हैं, ज्यों कंचन त्यों काँच।
पलटू ऐसे दास को, सुपने लगै न आँच॥

(भाग ३, साखी १६)

ना जीने की खुसी है, पलटू मुए न सोच।
ना काहू से दुष्टता, ना काहू से रोच॥

(भाग ३, साखी १७)

आठ पहर लागी रहै, भजन तेल की धार।
पलटू ऐसे दास को, कोउ न पावै पार॥

(भाग ३, साखी २१)

सिंह जो भूखा रहै चरै ना घास को।
हंस पिवै ना नीर करै उपवास को॥
सती एक औ सूर पाँच हैं काम के।
अरे हाँ पलटू संत न माँगैं भीख भरोसे राम के॥

(भाग २, अरिल ६५)

हंस चुगै ना घोंघी सिंह चरै न घास॥
सिंह चरै ना घास मारि कुंजर को खाते।
जो मुरदा ह्वै जाय ताहि के निकट न जाते॥
वे ना खाहिं असुद्ध रीत कुल की चलि आई।
खाये बिनु मरि जाहिं दाग ना सकहिं लगाई॥

सन्त सभन सिरताज धरन धारी सो धारी ।
नई बात जो करैं मिलत है उनको गारी ॥
भीख न माँगै सन्त जन कहि गये पलटूदास ।
हंस चुगैं ना घोंघी सिंह चरैं ना घास ॥

(भाग १, कुंडली २४०)

साहिब[1] वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ॥
जो कोइ पहुँचा होय नूर का छत्र विराजै ।
सबर तखत पर बैठि तूर अठपहरा बाजै ॥
तम्बू है असमान जमीं का फरस बिछाया ।
छिमा किया छिड़काव खुसी का मुस्क लगाया ॥
नाम खजाना भरा जिकिर[2] का नेजा चलता ।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ[3] डरता ॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय ।
साहिब वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ॥

(भाग १, कुंडली ८)

बादसाह का साह फकीर है जी,
नौबत गैब का बाजता है ।
ज्ञान ध्यान की फौज को साधि के जी,
सबर के तख्त पर गाजता है ॥
[4]लाहूत खजाना मारफत का,
सिर नूर का छत्र विराजता है ।
पलटू फकीर का घर बड़ा,
दीन दुनियाँ दोऊ भीख माँगता है ॥

(भाग २, झूलना ८)

कबही फाका फकर है कबही लाख करोर ॥
कबही लाख करोर गमी सादी कछु नाहीं ।
ज्यों खाली त्यों भरा साबुर है मन के माहीं ॥

---

१. बड़ा, २. सुमिरन, ३. शैतान भी डरता है, ४. मुसलमान फ़क़ीरों द्वारा एक रूहानी आन्तरिक मंडल का रखा हुआ नाम ।

सन्त सभन सिरताज धरन धारी सो धारी।
नई वात जो करैं मिलत है उनको गारी ।।
भीख न माँगै सन्त जन कहि गये पलटूदास।
हंस चुगै ना घोंघी सिंह चरैं ना घास ।।

(भाग १, कुंडली २४०)

साहिव[1] वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ।।
जो कोइ पहुँचा होय नूर का छत्र विराजै।
सवर तखत पर वैठि तूर अठपहरा वाजैं ।।
तम्बू है असमान जमीं का फरस विछाया।
छिमां किया छिड़काव खुसी का मुस्क लगाया ।।
नाम खंजाना भरा जिकिर[2] का नेजा चलता।
साहिव चौकीदार देखि इवलीसहुँ[3] डरता ।।
पलटू दुनिया दीन में उनसे वड़ा न कोय।
साहिव वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ।।

(भाग १, कुंडली ८)

वादसाह का साह फकीर है जी,
नौवत गैव का वाजता है।
ज्ञान ध्यान की फौज को साधि के जी,
सवर के तख्त पर गाजता है ।।
[4]लाहूत खजाना मारफत का,
सिर नूर का छत्र विराजता है।
पलटू फकीर का घर वड़ा,
दीन दुनियाँ दोऊ भीख माँगता है ।।

(भाग २, झूलना ८)

कवहीं फाका फकर है कवहीं लाख करोर ।।
कवहीं लाख करोर गमी सादी कछु नाहीं।
ज्यों खाली त्यों भरा सावुर है मन के माहीं ।।

१. वड़ा, २. सुमिरन, ३. शैतान भी डरता है, ४. मुसलमान फ़कीरों द्वारा एक रूहानी आन्तरिक मंडल का रखा हुआ नाम।

कवहो फूलन सेज हाथी की है असवारी ।
कवही सोवैं भुइं पियादे मंजिल गुजारी ॥
कवही मलमल जरी ओढ़ते साल दुसाला ।
कवही तापैं आग ओढ़ि रहते मृगछाला ॥
पलटू वह यह एक है परालब्ध नहिं जोर ।
कवही फाका फकर है कवही लाख करोर ॥

(भाग १, कुंडली १०)

दुइ पासाही फकर[१] को इक दुनियाँ इक दीन ॥
इक दुनियाँ इक दीन दोऊ को राखैं राजी ।
सब की मिलैं मुराद गैब की नौबति बाजी ॥
हाथ जोरि मुहताज सिकन्दर रहते ठाढ़े ।
हुकुम बजावहि भूप जबाँ[२] से जो कछु काढ़ें ॥
चलैं फ़हम[३] की फौज दरोग[४] की कोट ढहाई ।
वेदावा तहसील सवुर कै तलब लगाई ॥
पलटू ऐसी साहिबी साहिब रहै तबीन[५] ।
दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन ॥

(भाग १, कुंडली ११८)

फाका[६] जिकर[७] किनात[८] ये तीनों बात जगीर ॥
तीनो बात जगीर खुसी की कफनी डारे ।
दिल को करै कुसाद[९] आई भी रोजी टारै ॥
इवादत[१०] दिन रात याद में अपनी रहना ।
खुदी[११] खूब को खोइ जनाजा जियतै करना ॥
सीकन्दर और गदा[१२] दोऊ को एकै जानै ।
तव पावै टुक नसा फना[१३] का प्याला छानै ॥

---

१. फ़कीरी, २. जुबान, ३. विचार, ४. झूठ, ५. ताबेदार, ६. व्रत, ७. सुमिरन, ८. उपवास, संतोष, ९. उदार, १०. आराधना, भजन, ११. अहं, १२. भिक्षुक, १३. मौत ।

हलुवाई ज्यों अवटि जारि कै, करत खांड़ से कंद ।
पलटूदास यह विनती मोरी, अजहुँ चेत मतिमंद ।।
(भाग ३, शब्द २०)

बिना सतसंग ना कथा हरि नाम की,
बिना हरि नाम ना मोह भागै ।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति बिनु नाहि अनुराग लागै ।।
बिना अनुराग से भक्ति ना मिलैगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नाहि जागै ।।
प्रेम बिनु नाम ना नाम बिनु संत ना,
पलटू सतसंग बरदान मांगै ।।
(भाग २, रेख़ता २१)

पारस के परसंग मे लोहा महँग बिकान ।।
लोहा महँग बिकान छुए से कीमत निकरी ।
चंदन के परसंग चंदन भई बन की लकरी ।।
जैसे तिल का तेल फूल संग महँग बिकाई ।
[1]सतसंगति में पड़ा संत भा सदन कसाई ।।
[2]गंग में है सुभगंग मिली जो नारा सोती ।
सीप बीच जो पड़ै बूंद सो होवै मोती ।।
पलटू हरि के नाम से गनिका चढ़ी विमान ।
पारस के परसंग से लोहा महँग बिकान ।।
(भाग १, कुंडली ८१)

मलया के परसंग मे सीतल होवत सांप ।।
सीतल होवत सांप ताप को तुरत बुझाई ।
संगत के परभाव सीतलता वा में आई ।।
मूरख ज्ञानी होय जाय ज्ञानी में बैठै ।
फूल अलग का अलग बासना तिल में पैठै ।।

१. सदना कसाई सत्संग में आकर पूर्ण सन्त बन गया. २. गंगा में मिल कर गन्दा भी गंगा हो जाता है ;

कंचन लोहा होय जहाँ पारस छुइ जाई।
[1]पनपै उकठा काठ जहाँ उन सरदी पाई॥
पलटू संगत किये से मिटते [2]तीनिउँ ताप।
मलया के परसंग से सीतल होवत साँप॥
(भाग १, कुण्डली ८०)

मनै मूरति करै तनै देवल बना,
निकट में छोड़ि कहँ दूरि धावै।
[3]जल पाषान कछु खाय बोलै नहीं,
बिना सतसंग सब भटकि आवै॥
यह तहकीक[4] कर बोलता कौन है,
यही है राम जो नित्त खावै।
*दास पलटू कहै बोलता पूजिये,
करै सतसंग सब भेद पावै॥
(भाग २, रेखता २४)

लड़िका चूल्हे में लुका ढूँढ़त फिरै पहार॥
ढूँढ़त फिरै पहार नहीं घर की सुधि आनै।
जप तप तीरथ बरत जाय के तिल तिल छानै॥
गई आप को भूलि और की बात न मानै।
चूल्हे लड़िका रहै चतुरई अपनी ठानै॥
भरमी फिरै भुलान जाइ कै देस देसान्तर।
लड़िका से नहिं भेंट मिलन है पानी पाथर॥
पलटू सतसंगति करै [5]भूल से वाही मार।
लड़िका चूल्हे में लुका ढूँढ़त फिरै पहार॥
(भाग १, कुण्डली २०३)

१. रखा हुआ गन्ना ठंड से जल उकठा है, २. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रोग, ३. जल और पत्थर न बोलते हैं, न खाते हैं, ४. खोज।

*पलटू साहिब की ही एक साखी है –

हिन्दू पूजै देवरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद॥ (भाग ३, साखी …)

५. भूल मिटाने के लिये सत्संग ही सार है।

मरै सिर पटकि कै धोख्र धंधा करै,
जाय तू कहाँ कुछ होस नाहीं ।
बैठु सतसंग में बात को बूझि ले,
बिना सतसंग ना भर्म जाहीं ॥
सबै है राम का राम का वही है,
[1]दौरि कै राम जब धरै बाहीं ।
दास पलटू कहै जिन्हैं तू खोजता,
सोई तो राम है तुसी पाहीं[2] ॥
(भाग २, रेखता १२)

[3]वस्तु धरी है पाछे आगे लिहिनि तकाय ॥
आगे लिहिनि तकाय पाछे की मरम न जानी ।
ज्यों ज्यों आगे जाय दिनों दिन अधिक दुरानी ॥
फिरि के ताकै नाहिं वस्तु कहवां से पावै ।
*ज्यों मिरगा कै बास भरम कै जन्म गँवावै ॥
अरुझा वेद पुरान ज्ञान बिनु को सुरझावै ।

---

१. यों तो हम सब राम (परमात्मा) के अंश हैं, परन्तु विशेष कर वही जीव उसका है जिसकी बाँह दौड़ कर वह राम पकड़ लेता है. २. तेरे पास, तेरे निकट, ३. वस्तु पीछे पड़ी है परन्तु लेने के लिये आगे देखते हो।

*गुरु अमरदास जी भी कहते हैं कि शब्द या नाम रूपी कस्तूरी जीव रूपी हरिण के अपने अन्दर है परन्तु मनमुख लोग इसको बाहर खोजते फिर रहे हैं। इसके विपरीत जो जीव सतगुरु की दया से अपने अन्दर नाम के अमृत को पी लेते हैं, वे पारब्रह्म में समा जाते हैं और सदा के लिये शान्ति प्राप्त कर लेते हैं :

घर ही महि अंम्रितु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ ॥
जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै भ्रमदा भरमि भुलाइआ ॥
अंम्रितु तजि बिखु संग्रहै करतै आपि खुआइआ ॥
गुरमुखि विरले सोझी पई तिना अंदरि ब्रहमु दिखाइआ ॥
तनु मनु सीतलु होइआ रसना हरि सादु आइआ ॥
सबदे ही नाउ ऊपजै सबदे मेलि मिलाइआ ॥
बिनु सबदै सभु जगु बउराना बिरथा जनमु गवाइआ ॥
अम्रितु एको सबदु है नानक गुरमुखि पाइआ ॥
(आदि ग्रन्थ, ६४४)

सतसंगत से विमुख वस्तु कहवाँ से पावं ॥
पलटू छूटं कर्म ना कैसे सकं उठाय।
वस्तु धरी है पाछे आगे लिहिनि तकाय ॥
(भाग १, कुंडली २०१)

कहँ खोजन को जाइये घरहीं लागा रंग ॥
घरहीं लागा रंग छुटे तीरथ व्रत दाना।
जल पपान सब छुटे आपु में उट्ठि समाना ॥
काम क्रोध को छाड़ि परम सुख मिला अनंदा।
लोभ मोह को जारि करम का काटा फंदा ॥
लगै न भूख पियास जगत की आसा त्यागा।
सबद मँहै गलतान[1] सुरति का पोहै धागा ॥
पलटू दिढ़ ह्वै लगि रहै छुटै नहीं सतसंग।
कहँ खोजन को जाइये घरहीं लागा रंग ॥
(भाग १, कुडली २२७)

छोड़ि कथनी कँहै ज्ञान[2] से जुदा रहु,
रैन औ दिवस क्या पढ़ै गीता।
केतिक पंडित मुए नरक में सिधारते,
लोभ औ मोह बसि रहा रीता[3] ॥
बिना रहनी रहे मुक्ति ना मिलैगी,
काम औ क्रोध को नाहिं जीता।
दास पलटू कहै बैठु सतसंग में,
[4]आपु में देखि ले राम सीता ॥
(भाग २, रेखता ६६)

फिर फिर नहीं दिवारी[5] दियना लीजै वार ॥
दियना लीजै वार महल[6] में ह्वै उँजियारा।

---

१. मस्त, मग्न, २. वाचक ज्ञान, ३. खाली, ४. अपने आप में परमात्मा और सतगुरु के दर्शन कर लें, ५. दीवाली के दिन दीपक जलाते हैं। यहाँ मनुष्य जन्म को दीवाली कह रहे है और शब्द या नाम का अन्दर दीपक जलाने का उपदेश दे रहे हैं. ६ शरीर।

उदय होय [1]ससि भानु अमावस मिटै अँधियारा ।।
ज्ञान होय परगास कुमति जूआ में हारै ।
दुतिया[2] खंडन करै एक को बैठि विचारै ।।
रचि रचि तीसौ सखी अभूपन[3] प्रेम बनाई ।
गोवरधन मन पूजि बहुरि सब घर को आई ।।
पलटू सतसंगत मिला खेलि लेहु दिन चार ।
फिर फिर नहीं दिवारी दियना लीजै बार ।।
(भाग १, कुंडली ८२)

बैरागिनि भूली आप में जल में खोजै राम ।।
जल में खोजै राम जाय कै तीरथ छान ।
भरमै चारिउ खूंट नहीं सुधि अपनी आनै ।।
फूल माहि ज्यों बास काठ अगिन छिपानि ।
खोदे बिनु नहि मिलै अहै धरती में पानी ।।
जैसे दूध घृत छिपा छिपी मिहँदी में लाली ।
ऐसे पूरन ब्रह्म कहूँ तिल भरि नहि खाली ।।
पलटू सतसंग बीच में करि ले अपना काम ।
बैरागिनि भूली आप में जल में खोजै राम ।।
(भाग १, कुंडली ७९)

जिन पाया तिन पाया है, सतसंग सखी री ।।
तीरथ बरत करै कोउ कितनौं, नाहक जनम गँवाया है ।।
जप तप जज्ञ करै कोउ कितनौं, फिरि फिरि गोता खाया है ।।
वेद पढ़ि पढ़ि पंडित मरिगा, फिरि चौरासी आया है ।।
पलटूदास बात है सहजी, संतन भेद बताया है ।।
(भाग ३, शब्द २२)

चतुरन से हम दूरि, कहत ऊधो से स्री मुख[4] ।।
तीरथ बरत जोग जप तप में, मो से न भेंट सहै कितनो दुख ।।
ज्ञान कथै बहु भेष बनावे, इहो बात सब तुक्ख[5] ।।

१. चांद और सूर्य, २. द्वैत, ३. आभूषण, ४. भगवान कृष्ण, ५. तुच्छ ।

नेम आचार करै कोउ कितनो, कवि कोविद सब खुक्ख[1] ॥
[2]तिरदंडी सरवंगी नागा, मरै पियासा औ भुक्ख[3] ॥
तजि पाखंड करै सतसंगति, जहाँ भजन में सुक्ख ॥
पलटूदास हरि कहि ऊधो से, सतसंगति में मुक्ख ॥

(भाग ३, शब्द २१)

बिन खाये चित चैन नहिं खाये आलस होय ॥
खाये आलस होय कहो कैसो विधि कीजै।
दोऊ विधि से विपति दोस का को हम दीजै ॥
मन बैरी है बड़ा कहे में अपने नाही।
पुन्न में करता पाप पाप में पुन्न कराही ॥
सुभ आसुभ के बीच पड़ा है जीव बिचारा।
दोऊ में वह मिला बात सब वही बिगारा ॥
पलटू सतसंगत दोऊ छुटै करै जो कोय।
बिन खाये चित चैन नहिं खाये आलस होय ॥

(भाग १, कुंडली ८४)

कौन तू सकस है चेत करु आपु को,
कहाँ तू आइ कै मन्न लाया।
केतिक बेर तू गया ठगाय है,
आपना भेद तू नाहिं पाया ॥
भटक यह मिटैगी काम तब होयगा,
केतिक बेर तू भटकि आया।
दास पलटू कहै होय संस्कार जब,
बिना सतसंग ना छुटै माया ॥

(भाग २, रेखता २२)

भाग रे भाग फक्कीर के बालके,
[4]कनक औ कामिनी बाघ लागा।

---

१. थोथा, खाली, २. योगियों के भेद, ३. भूख, ४. सोना और स्त्री शेर की तरह
रे पीछे पड़ा हुआ है।

मारि तोहि लेहिंगे पड़ा चिल्लायगा,
बड़ा बेकूफ तू नाहिं भागा ॥
सिंगी ऋषि हू से तो मारि लिये,
बचे ना कोऊ जो लाख त्यागा ।
दास पलटू कहै बचैगा सोई जो,
बैठि सतसंग दिन राति जागा ॥

(भाग २, रेख़ता ८५)

बहता पानी जात है धोउ सिताबी[१] हाथ ॥
धोउ सिताबी हाथ करो कुछ [२]नीकी करनी ।
[३]बीस-सात है नरक मिली अठएँ बैतरनी ॥
तोहि से परिहि सो बयरा[४] जम धिकवै भाथी ।
स्वारथ के सब लोग औसर के कोऊ न साथी ॥
आगे बूझि बिचारि करो डर वहि दिन केरी ।
संत सभा में बैठु परै नहिं जम की बेरी[५] ॥
पलटू हरि जस गाइले यही तुम्हरे साथ ।
बहता पानी जात है धोउ सिताबी हाथ ॥

(भाग १, कुण्डली १२०)

अमृत को सागर भर्‌यो देखे प्यास न जाय ॥
देखे प्यास न जाय पिये बिनु कौन बतावै ।
कल्प वृच्छ को देखि खाये बिनु भूख न जावै ॥
और की दौलत देखि दरिद्दर नाहिं नसाई ।
अन्धा पावै आँखि साच वा की बैदाई ॥
लोहा कंचन होय पारस की करै सरहना[६] ।
क्या मलया की सिफत काठ को काठै रहना ॥

---

१. जल्दी, २. नेक काम, ३. नरकों की संख्या सत्ताइस बताई जाती है और अट्ठाइसवीं बैतरणी नदी है जिसे जीव को पार करना पड़ता है। कहते हैं कि बैतरणी गन्दगी से भरी हुई एक भयानक नदी है जो दुष्ट जीवात्मा को पार करनी पड़ती है, ४. बैर, ५. बेड़ी, बन्धन, ६. उन्तुति।

सतगुरु तुम्हरे वचन को पलटू न पतियाय।
अमृत को सागर भर्‌यो देखे प्यास न जाय॥
(भाग १, कुंडली १२२)

पिय से मान न कीजे रजनी[1], सजनीं हठ तज दीजे॥
जो तू पिय को चाहे प्यारी, सतसंगति भजि लीजे॥
पलटुदास तन मन धन दे के, प्रेम पियाला पीजे॥
(भाग ३, शब्द ४१)

रँगि ले रंग करारी है, फिर छुटै न धोये॥
ज्ञान को माट ताहि बिच बोरो, मन बुधि चित रँग डारी है॥
तन मन धन सब देइ रँगाई, रंग मजीठी[2] भारी है॥
रंग बहुत यह सोखि लेइगी, बहुत दिनन की सारी है॥
सतसंगति में बैठि रंगावै, सोइ पतिवरता नारी है॥
पलटूदास पहिरि के निकरै, अपने पिय की प्यारी है॥
(भाग ३, शब्द ५९)

पलटू मेरी बनि परी मुद्दा[3] हुआ तमाम॥
मुद्दा हुआ तमाम परे सतसंगति माही।
निस दिन तौलै पूर घाट[4] अब सुपनेहु नाहीं॥
पूंजी पाई साच दिनों दिन होती बढ़ती।
सतगुरु के परताप भई है दौलत चढ़ती॥
कोठी दसवें द्वार[5] सहज की खेप चलावो।
कोई न टोकनहार नफा घर बैठे पावो॥
दूनों पाँव पसारि के निस दिन करो अराम।
पलटू मेरी बनि परी मुद्दा हुआ तमाम॥
(भाग १, कुंडली ८६)

पलटू साहिब उपदेश करते हैं कि ऐसे सत्संग में जाओ जहाँ ज्ञान का प्रकाश और सुबुद्धि उपजे। वहाँ मत जाइये जहाँ जाकर परमार्थ बिगड़ता हो और कुबुद्धि उत्पन्न हो :

१. रात्रि, २ पक्का लाल रंग, ३. मनोरथ या काम पूर्ण हो गया, ४ कमी, ५ दसवाँ द्वार।

संगति ऐसी कीजिये, जहवाँ उपजै ज्ञान।
पलटू तहाँ न बैठिये, घर की होया जियान[1] ॥
(भाग ३, साखी ८२)

सतसंगति में जाइ कै, मन को कीजै सुद्ध।
पलटू उहाँ न जाइये, जहवाँ उपजि कुबुद्ध ॥
(भाग ३, साखी ८३)

१. हानि।

अहम् को त्यागना तथा शरण में रहना

जीव को चाहिए कि मन-बुद्धि, मान-वड़ाई के हर प्रकार के अभिमान, अहंकार का त्याग करके पूरे सतगुरु की शरण दृढ़ करे। मान-वड़ाई तथा वल-वुद्धि आदि के अहंकार से आज तक किसी को कुछ लाभ नहीं हुआ। जो जीव सन्तों की संगति में जाकर भी अहंकार का त्याग नहीं करता, उसकी अवस्था उस अभागे व्यक्ति जैसी है जो तालाव या नदी के किनारे पहुँच कर भी प्यासे का प्यासा रह जाता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अहम् का त्याग कर देता है, वह सन्तों के मार्ग की साधना करता हुआ, एक दिन सच्चा दरवेश या फ़क़ीर वन जाता है। शरण है ही उसका नाम जिसमें 'मैं मेरी' लेशमात्र भी शेष न रहे तथा 'तू ही तू' हो जाए।

सतगुरु की शरण लेने वाले के लिए सतगुरु की रजा में रहना आवश्यक है। शरणार्थी जीव को चाहिए कि दु:ख-सुख दोनों को सतगुरु की मौज समझे तथा अपने आप को पूरी तरह सतगुरु के भाणे में रखे। उसको तन और मन से सतगुरु की आज्ञा माननी चाहिए। जब वह पूरी तरह सतगुरु के 'हुक्म' में आ जाता है तो दु:ख-सुख की द्वैत से भी सदा के लिए मुक्त हो जाता है। फिर वह ऐसा सच्चा गुरु-भक्त या प्रभु-भक्त वन जाता है जो सदा दु:ख-सुख से वेपरवाह रहता है।

> वढ़ते वढ़ते वढ़ि गये जैसे बढ़ी खजूर ॥
> जैसे बढ़ी खजूर पथिक[१] छाया नहिं पावे।
> ज्यों त्यों के जो फरै ताहि कैसे कोउ खावे ॥
> पात में कांटा रहै छुवत के लोहू आवै।

१. राही।

पेड़ सोऊ बेकाम कुवा को धरन बनावै ॥
[1]सम्पति में बढ़ि जाय दया बिन भला भिखारी ।
जातिहु में बढ़ि जाय भक्ति बिन भला चमारी ॥
पलटू सोभा दोऊ की दया भक्ति से पूर ।
बढ़ते बढ़ते बढ़ि गये जैसे बढ़ी खजूर ॥
(भाग १, कुंडली १६८)

बड़ा भया तौ क्या भया,
जो दिल का नाहिं उदार है जी ।
बड़ा सब से समुद्र भया,
पानी पड़ा वो खार है जी ॥
समुद्र सेती इक कूप भला,
पियै सकल संसार है जी ।
पलटू सबसे छोट भया,
सोई सब का सिरदार है जी ॥
(भाग २, झूलना ४७)

बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार ।
पलटू मीठो कूप जल[2], समुँद पड़ा है खार ॥
(भाग ३, साखी ११४)

सब से बड़ा समुद्र है, पानी लैगा खारि ।
पलटू खारि जानि कै, लीन्हों रतन निकारि ॥
(भाग ३, साखी ११५)

इमता ममता को दूरि करै,
यही तो मूल जंजाल है जी ।
चाह अचाह को छोड़ि देवै,
यहि सहज सुभाव की चाल है जी ॥
मोर औ तोर विकार छूटै,
सब मे मिलै हर हाल है जी ।

१. निर्दयी धनी से दयालु भिक्षुक अच्छा है, २. कुएं के पानी की बड़ाई है ।

पलटू जिन बासना बीज भूना[1],
वोही साहिब का नाम है जी ॥
(भाग २, झूलना ८२)

मान बड़ाई कारने पचि मूआ संसार ॥
पचि मूआ संसार जती जोगी सन्यासी ।
उनहूँ को है चाह गुफा के भीतर बासी ॥
सिद्ध सिद्धाई करें परभुता कारन जाई ।
गोड़ धरावन हेतु महंत उपदेस चलाई ॥
राजा रंक फकीर फिरैं जो खाक लगाये ।
सब के मन में चाह है खुसी बड़ाई पाये ॥
पलटू हरि के भगत से गई परभुता हार ।
मान बड़ाई कारने पचि मूआ संसार ॥
(भाग १, कुंडली १६६)

मेरी मेरी तू क्या करै,
मेरी मंहै अकाज है जी ।
साहिब सब काम सँभारि लेवै,
मेरी से आवै बाज[2] है जी ॥
जिसका तू दास कहावता है,
तिसको इस बात की लाज है जी ।
पलटू तू मेरी छोड़ि देवै,
तीनि लोक तेरा राज है जी ॥
(भाग २, झूलना ४३)

[3]खुदी खोय की खोवै सोई है दुरवेस ॥
सोई है दुरवेस रूह को करै सफाई ।
दिल अंदर दीदार [4]नबी का दरसन पाई ॥
बिन बादल बरसात अबर[5] बिन बरसत पानी ।

१. भुना हुआ बीज उग नहीं सकता। आप समझा रहे हैं कि जिन्होंने आशा-तृष्णा और विषय-वासना का नाश कर दिया, वही सच्चे प्रभु-भक्त हैं, २. बाज आना, छोड़ देना, ३. अहंकार को त्यागने वाला ही सच्चा फकीर है, ४. गुरु, ५. अब्र, बादल।

गरमी आतस[१] बिना जबाँ बिन बोलत बानी ।।
लामकान[२] बेचून[३] लाहुत को दिल दौड़ावै ।
फना[४] को करै कबूल सोई वह काबा[५] पावै।।
पलटू जारै फिकर को रहै जिकर[६] में गेस ।
मुर्दा खोय को खोवै सोई है दुरवेस ।।

(भाग १, कुंडली १६६)

पलटू नीच से ऊँच भा नीच कहै ना कोय ।।
नीच कहै ना कोय गये जब से सरनाई ।
नारा बहि कै मिल्यो गंग में गंग कहाई ।।
पारस के परसंग लोह से कनक कहावै ।
आगि मंहै जो परै जरै आगै होइ जावै ।।
राम का घर है बड़ा सकल औगुन छिपि जाई ।
जैसे तिल को तेल फूल सँग बास बसाई ।।
भजन केरे परताप तें तन मन निरमल होय ।
पलटू नीच से ऊँच भा नीच कहै ना कोय ।।

(भाग १, कुंडली १४२)

करम धरम सब छाड़ि कै पड़े सरन में आय ।।
पड़े सरन में आय तजी बल बुधि चतुराई ।
जप तप नेम अचार नहीं जानों कछु भाई ।।
पूजा ज्ञान न ध्यान तिलक नहिं देवै जानों ।
जोग जुगत कछु नहीं नहीं तीरथ ब्रत मानों ।।
एक भरोसा पाय दिया सिर भार गराई[७] ।
पंछी को पता[८] गया रहा इक नाम सहाई ।।
पलटू मैं जियतै मुवा नाम भरोसा पाय ।
करम धरम सब छाड़ि के पड़े सरन में आय ।।

(भाग १, कुंडली १५४)

१. सूर्य, अग्नि, २. अनामी पद, ३. जो बिना चूना लगे बना हो अर्थात् वह मंडल जहाँ माया की पहुँच नहीं, ४. अपने आप को मिटा देना, ५. मुसलमानों का तीर्थ-स्थान, यहाँ [illegible] अर्थात् [illegible] की ओर संकेत है, ६. सुमिरन, ७. गिरा दिया, ८. पता ।

जप तप ज्ञान वैराग जोग ना मानिहौं।
सरग नरक वैकुंठ तुच्छ सब जानिहौं॥
लोक वेद ना सुनौ आपनी कहौंगा।
अरे हां पलटू एक भक्ति सिर धरौं सरन तुं रहौंगा॥
(भाग २, अरिल ६६

साहिब मेरा सब कुछ तेरा, अब नाहीं कुछ मेरा है॥
यहि हमता ममता के कारन, चौरासी किहा फेरा है॥
मृग-जल निरखि के तृषा बुझै नहिं, सूखे अटका बेरा[1] है॥
यह संसार रैन का सुपना, रूपा भ्रम सीपी केरा है॥
पलटूदास सब अरपन कीन्हा, तन मन धन औ देरा है॥
(भाग ३, शब्द ७२

[2]कोउ कितनौ चुगुली करै सुनै न बात हमार॥
सुनै न बात हमार गये जब से सरनाई।
सब ऐगुन करि माफ लिहिनि मोकैंह अपनाई॥
करत फिरौं अन्याय काम ना क्रोध विचारा।
कैसेउ पूत कपूत पिता को आखिर प्यारा॥
लोभी लंपट चोर कुकरमी जातिन नीचा।
अपने सरन की लाज जानि पद दीन्हेउ ऊंचा॥
पलटू हम से राम से ऐसो भा ब्योहार।
कोउ कितनौ चुगुली करै सुनै न बात हमार॥
(भाग १, कुंडली १५६

पलटू सोवै मगन में साहिब चौकीदार॥
साहिब चौकीदार मगन होइ सोवन लागे।
दूनों पांव पसारि देखि कै दुस्मन भागे॥
जाके सिर पर राम ताहि को वार न बांकै।
गाफिल में मैं रहौं आपनी आपुइ ताकै॥

१. बेड़ा, नाव, २ कोई कितनी भी चुगली करे. हमारा मालिक (सतगुरु) हमा विरुद्ध कोई शिकायत नहीं सुनता।

हम को नाहीं सोच सोच सब उन को भारी।
छिन भरि परैं न भोर लेत है खबर हमारी॥
लाज तजा जिन राम पर डारि दिहा सिर भार।
पलटू सोवै मगन में साहिब चौकीदार॥

(भाग १. कुंडली १५५)

जीवित मरना

जीते-जी मरना सन्तों के आध्यात्मिक उपदेश का व्यवहारिक पहलू है। मृत्यु के समय पहले हाथ-पांव ठंडे होते हैं, फिर धड़ ठंडा होता है। अन्त में जब आत्मा आंखों के पीछे चली जाती है तो इस शरीर को छोड़ कर एक ओर हो जाती है। इसी प्रकार सन्त-जन सुरत को सुमिरन तथा ध्यान की सहायता से आंखों के पीछे तीसरे तिल या शिव-नेत्र में एकाग्र करने की युक्ति सिखाते हैं। जब अभ्यासी बताई गई युक्ति के अनुसार सुमिरन तथा ध्यान करता है तो उसकी रूह अन्दर तथा ऊपर की ओर सिमटना आरम्भ कर देती है। जब सुरत पिण्ड से सिमट कर पूरी तरह आंखों के पीछे एकाग्र हो जाती है तब शरीर सुन्न हो जाता है। उस समय जीव के अन्दर चेतनता होती है तथा आत्मा का शरीर से सम्बन्ध भी बना रहता है। जब अभ्यास की समाप्ति पर सुरत दुबारा आंखों से नीचे के भाग में उतर आती है तो शरीर फिर जीवित या चेतन हो जाता है। इसी को सन्तों ने 'जीवित मरना' कहा है। पलटू साहिब इस विषय में कहते हैं . 'जीते जी मर जाए, मुए पर उठ जागै।'

सन्तों ने इस साधना की बहुत बड़ाई की है क्योंकि वास्तविक तौर पर जो भी आध्यात्मिक उन्नति होती है, इसी साधना द्वारा हो पाती है। यह साधना बहुत कठिन है, परन्तु पूरे सतगुरु के शिष्य के लिए असम्भव नहीं है। जब मुर्शिद की मेहर होती है तो जीवात्मा सहज ही 'गगन की खिड़की खोल कर' अन्दर के आध्यात्मिक मंडलों में चली जाती है तथा वहां पर हो रहे निरन्तर शब्द, आकाशवाणी या अनहद नाद से जुड़ जाती है। इस से आत्मा को अद्भुत आनन्द की

प्राप्ति होती है तथा इसका अन्तर में सतगुरु के नूरी स्वरूप से मिलाप हो जाता है। बाकी की सारी यात्रा आत्मा सतगुरु के साथ करती है। इसको पलटू साहिब ने 'तब जाय सतगुरु पाए जी' का नाम दिया है।

पलटू साहिब ने इस प्रकार जीवित मरने को ही सच्ची मुक्ति का साधन माना है। आप कहते हैं कि मरने के बाद वाली मुक्ति तो केवल छल है जिसके सच होने पर कोई भरोसा या विश्वास नहीं, परन्तु सतगुरु की बनाई हुई युक्ति के अनुसार जीते जी मरने के अभ्यास द्वारा जीवन काल में ही सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेता है :

जियतै मरना भला है नाहिं भला बैराग ॥
नाहिं भला बैराग अस्त्र[1] बिन करै लड़ाई।
आठ पहर की मार चूके से ठौर न पाई ॥
रहै खेत पर ठाढ़ सीस को लेय उतारी।
दिन दिन आगे चलै गया जो फिरै पछारी ॥
पानी माँगै नाहिं नाहिं काहू से बोलै।
छकै पियाला प्रेम गगन की खिड़की[2] खोलै ॥
पलटू खरी कसौटी चढ़ै दाग पर दाग।
जियतै मरना भला है नाहिं भला बैराग ॥

(भाग १, कुंडली १०६)

साहिब के घर बीच गया जो चाहिये।
सिर को धरै उतारि कदम को नाइये ॥
[3]जियते जी मरि जाय सोई बहुरायगा।
अरे हाँ पलटू जेकरे जिव की चाह सोई भगि जायगा ॥

(भाग २, अरिल ६२)

राम के घर की बात कसौटी खरी है।
झूठा टिकै न कोय आजु की घरी नै ॥

---

१. हथियार, २. संकेत तीसरे नेत्र या तीसरे तिल की ओर है जो कि दोनों नेत्रों के पीछे ललाट में है, ३. जीते जी मरने वाला बाजी जीत जायगा परन्तु जीने की आशा रखने वाला बाजी हार जायगा।

जियतै जो मरि जाय सीस लै हाथ में।
अरे हाँ पलटू ऐसा मर्द जो होय परै यहि बात में ॥
(भाग २, अरिल ६०)

मरते मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
पलटू जो जियतै मरै, सहज परायन होय ॥
(भाग ३, साखी ९९)

पात पात कै आपा[1] लुटाय देवै,
पाछे फूलै परास है जी।
कदली बाँस मंहै जब फर लागा,
फिर नहिं कुछ उसकी आस है जी ॥
[2]जियत मरै तन त्यागि देवै,
[3]सहै जगत उपहास है जी।
पलटू पहिले यह करि लेवै,
[4]तब जाय सतगुरु के पास है जी ॥
(भाग २, झूलना ४८)

मुक्ति मुक्ति सब खोजत है,
मुक्ति कहो कहँ पाइये जी।
मुक्ति के हाथ औ पाँव नहीं,
किस भाँति सेती दिखलाइये जी ॥
ज्ञान ध्यान की बात बूझिये,
या मन को खूब समझाइये जी।
पलटू मूए पर किन्ह देखा,
जीवत ही मुक्त हो जाइये जी ॥
(भाग २, झूलना ९३)

आसिक का घर दूर है पहुँचै विरला कोय ॥
पहुँचै विरला कोय होय जो पूरा जोगी।

---

१. अहम्, अहंकार, २. सुरत को पिंड में से समेट कर आन्तरिक रूहानी मंडलों में ले जायें, ३. संसार की हंसी सहन करें, ४. सतगुरु के नूरी स्वरूप के दर्शन होते हैं।

१बिंद करे जो छार नाद के घर में भोगी ॥
जीते जी मरि जाय मुए पर फिर उठि जागै ।
ऐसा जो कोइ होइ सोई इन बातन लागै ॥
पुरजे पुरजे उड़ै अन्न बिनु बस्तर पानी ।
ऐसे पर ठहराय सोई महबूब२ बखानी ॥
पलटू आपु लुटावही काला मुँह जब होय ।
आसिक का घर दूर है पहुँचै बिरला कोय ॥

(भाग १, कुंडली ७२)

*पहिले फना फिर सेख होवै,
कदम मुरसिद को पाइ के जी ।
तब फना फिल्लाह होवै,
मारफत मकान ठहराइ के जी ॥
मुरसिद मुरीद पर मिहर करै,
लाहूत को देइ पहुँचाइ के जी ।
पलटू हू हू आवाज आवै,
रूह खास दीदन उहां जाइ के जी ॥

(भाग २. झूलना ३८)

---

१. जो काम को वश में कर ले और अन्दर अनहद शब्द के नाद का रस भोगे,
२ प्रिय, प्रीतम ।

*फ़नाह-फ़ि-शेख़ (गुरु में लीन होकर) बक़ाअ (अमर जीवन) प्राप्त करना सूफ़ियों का प्रसिद्ध सिद्धान्त है । पलटू साहिब संकेत कर रहे हैं कि साधक अपनी सुरत को सतगुरु में लीन करके आन्तरिक रूहानी मंडल पार करने शुरू कर देता है । नासूत, मलकूत, जबरूत और हाहूत को पार करने से उसको हक़, सच या परमात्मा के साक्षात दर्शन हो जाते हैं । दादू साहिब ने इसको 'खुदी खोइ आपना पट चीन्हां तौ हो गिआ दीदम दीदा' कहा है । पलटू साहिब इसको 'रूह खास दीदन उहां जाइ के जी' का नाम देते हैं । आपके कहने का भाव है कि जीते-जी मरने से ही आन्तरिक रूहानी सफ़र तय हो सकता है और जीते-जी मरने से ही परमेश्वर की प्राप्ति हो सकती है ।

अन्तर के मार्ग का भेद, चढ़ाई तथा प्राप्ति

जब साधक जीते-जी मरने का अभ्यास करता है तथा उसकी रूह अन्दर चढ़ाई करती हैं तो उसको अन्दर अनेक प्रकार के आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होते हैं। पलटू साहिब ने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर इन आन्तरिक भेदों का वर्णन किया है जिसके कुछ संकेत 'पलटू साहिब की पहुँच तथा नम्रता' नामक अध्याय में मिलते हैं।

सन्तों ने समझाया है कि हमारी आध्यात्मिक यात्रा की दो मंज़िलें हैं। एक पड़ाव पैरों के तलवों से आँखों तक है तथा दूसरा आँखों से ऊपर सिर की चोटी तक है। दूसरे सन्तों की तरह पलटू साहिब ने भी शरीर में आँखों से ऊपर के भाग को 'उलटा कुँआ' कहा है। वहाँ पहुँच कर आत्मा को शब्द का अगम्य प्रकाश भी दिखाई देता है तथा शब्द की दिव्य-ध्वनि भी सुनाई देती है। यही वह निर्मल अमृत या प्रेम-रस है जो सच्चे आनन्द तथा सच्चे ज्ञान का दाता है। कोई विरला भाग्यशाली जीव है जिसको परमेश्वर की अपार कृपा से इस अमूल्य दात की प्राप्ति होती है। अन्य सन्तों की तरह पलटू साहिब ने भी अन्तर की आध्यात्मिक यात्रा के वर्णन सांकेतिक रूप में किए हैं। आपने कहीं पर सहस-दल-कमल (पहला आध्यात्मिक मण्डल) का, कहीं त्रिकुटी, (दूसरा आध्यात्मिक मण्डल) का, कहीं सुन्न (तीसरा आध्यात्मिक मण्डल) तथा कहीं ला मकां (चौथा लोक या सचखण्ड) का वर्णन किया है। आपने सबसे ऊँची आध्यात्मिक अवस्था अनामी लोक की ओर भी संकेत दिया है। आपने कहीं-कहीं इन मण्डलों के अरबी नामों लाहूत, नासूत, जबरूत आदि का भी प्रयोग किया है।

आपने पूरी यात्रा का क्रम वार वर्णन तो नहीं किया है परन्तु

आपकी वाणी में भिन्न-भिन्न मण्डलों के संकेत अवश्य मिलते हैं। कुछ रेखताओं में यह वर्णन अधिक विस्तार से दिया गया है, परन्तु यह इल्म-ए-सीना या गुप्त भेद है जिसको समझने के लिए ऐसे पूर्ण ज्ञानी या सन्त-सतगुरु की आवश्यकता है जो इन मण्डलों पर जाता हो तथा जो अपने अनुभव के आधार पर इनके गूढ़ भेद समझा सकता हो।

पलटू साहिब ने ऐसे झीने मण्डलों का वर्णन भी किया है जहाँ देवी-देवता, चन्द्र, सूर्य, धरती-आकाश कुछ भी नहीं है। उस मण्डल की प्रकृति ऐसी अद्भुत है कि वहाँ निचले मण्डलों वाला शब्द ओंकार या सोंह भी नहीं। इसको पलटू साहिब ने आठवां लोक या अनाम लोक कहा है। आप कहते हैं कि यह आध्यात्मिक यात्रा का अंतिम पड़ाव है जिसका शब्दों में वर्णन कर सकना असम्भव है। *इसलिए मैंने

---

*दादू साहिब ने भी इस अवस्था को अद्भुत, अकथ और अनामी कहा है। आप संकेत करते हैं कि यह अवस्था पाँच तत्वों, धरती-आकाश, चाँद-सूर्य, सुन्न, महासुन्न से और देवी-देवता, योगियों, ज्ञानियों, अवतारों और पैगम्बरों की पकड़ से बाहर है। इस अवस्था का भेद कोई बिरला सन्त जानता है: दूसरा न कोई इसका भेद जानता है और न ही इसकी हामी भर सकता है। यह वह अद्भुत अवस्था है जिसमें आत्मा रूपी बिन्दू परम सत्य रूपी समुद्र में मिलकर उसका रूप हो जाता है। इस अवस्था का भेद वर्णन कर सकना कठिन ही नहीं असम्भव है:

जानै अंतरयामी अचरज अकथ अनामी ॥ टेक ॥
नौ लख कँवल जुगन दल अंदर, द्वादस साहिब स्वामी।
सुरत कड़क कँवल दल नभ पर, झटक झटक थिर थामी ॥
सुरत सब्द सब्द में सुरत, अगम अगोचर धामी।
कासे कहौं पिया सुख भारा, ज्यों तिरिया मुसकानी ॥
नहिं यह जोग ज्ञान तुरिया तत, यह गति अकह कहानी।
चंद न सूर पवन नहिं पानी, क्योंकर करूँ बखानी ॥
सुन्न न गगन धरनि नहिं तारा, अल्लाह रब्ब नहिं रामी।
कहा कहूँ कहिबे को नाहीं, जानत संत सुजानी ॥
बेद न भेद भेव नहिं जानत, कोऊ देत न हामी।
दादू दृग दीदार हिये के, सूरत करत सलामी ॥
मैं पिय प्यारी प्यारे पिया अपने, मिल रहे एक ठिकानी।
सुरत सार निध लख पाई, यह गति बिरले जानी ॥

(सन्तों की बानी, २९९)

इसका भेद देख कर इस पर पर्दा डाल दिया है—'गुप्त वात गुप्त रही पलटू तोपा[1] देख ।'

है कोइ सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी ॥
सतगुरु घाट गहिर वड़ सागर, मारग है मोरी जानी ।
लेजुरी सुरति सवद कै पेलन, भरहु तजहु कुल कानी ॥
निहुरि के भरै घयल नहिं फूटै, सो धन प्रेम दिवानी ।
चाँद सुरुज दोउ अँचल सोहैं, वेसर लट अरुझानी ॥
चाल चलै जस मैगर[2] हाथी, आठ पहर मस्तानी ।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोक लाज ना मानी ॥

(भाग १, शब्द ११६)

[3]उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग ॥
*तिस में जरै चिराग विना रोगन विन वाती ।
छः रितु वारह मास रहन जरतै दिन राती ॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै ।
विन सतगुरु कोउ होय, नहीं वा को दरसावै ॥
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहिं माही ।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाही ॥
पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग ।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग ॥

(भाग १, कुंडली १६९)

प्रेम की घटा में वुंद परै पटापट,
गरज आकास वरसात होती ।

---

१ ढक दिया, २, मस्त, ३ इस शब्द की व्याख्या के लिये देखें पृ ४५

*कबीर साहिब ने संकेत किया है कि अमृत का भरा हुआ उल्टा कुआ अन्दर गगन-मंडल में है परन्तु सुख रूपी पनिहारी पाताल अर्थात् पाँव के तलों में उतरी हुई है । कोई गुरमुख आत्मा (हंस) ही अन्दर ऊपर जाकर उस अमृत को पीती है :

आकासे मुखी औंधा कुआ, पाताले पनिहारि ।
ताका पानी हंसा पीवै, विरला आदि विचारि ॥

(कबीर ग्रंथावली, परचा साखी ६४)

गगन के बीच में कूप है अधोमुख,
कूप के बीच इक वहै सोती ॥
उठत गुंजार है कुंज की गली में,
फोरि आकास तब चली जोति ।
मानसरोवर में सहसदल कँवल है,
दास पलटू हंस चुग मोती ॥
(भाग २, रेखता ३०)

धरम करम सब छोड़ि दिया,
छोड़ी जगत की आस है जी ।
और कछू अब नहि भावै,
संतन के संग विलास है जी ॥
अस्तुति निन्दा को पीठि दिया,
सनमुख सबद में वास है जी ।
पलटू अधोमुख कूप मंहै,
दीया जरै आकास है जी ॥
(भाग २, झूलना १७)

इक कूप गगन के बीच यारो,
जहँ सुरति की डोर लगावता है ।
गुरमुख होवै सो भरि पीवै,
निगुरा नहीं जल पावता है ॥
बिन हाथ से ताल मृदंग बाजै,
बिन जंत्री जंत्र बजावता है ।
पलटू बिन कान से हम सुना,
बीना कोई सकस बजावता है ॥
(भाग २, रेखता ७३)

*बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा ।

*कबीर साहिब ने आत्मा को आन्तरिक रूहानी मंडलों में प्राप्त होने वाले शब्द की
(फुटनोट का शेष भाग पृष्ठ १५३ पर)

जहँ उठै सोहंगम सब्द सब्द के भीतर पैठा ॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई ।
चाँद सुरज छिपि गये सुषमना सेज बिछाई ॥
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी ।
दसवाँ द्वार फोड़ि जोति बाहर ह्वै जागी ॥
पलटू [1]धारा तेल की मेलत ह्वै गया भोर ।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर ॥
(भाग १, कुंडली १७०)

अरे सखि निरखि लेहु, आकास हिंडोलवा हो ॥
सुभग सुहावन बादर हो, हरि हरि परै बूंदि ।
भीतर के दर[2] खोलहु हो, बाहर के लेहु मूंदि ॥
चमकि चमकि उठै बिजुली हो, बादर दौरा जाय ।
कहूँ लाल कहूँ पीयर हो, सखि सबद उठै बहराय ॥
ज्यों ज्यों पवन झकोरहि हो, त्यों त्यों घटा गंभीर ।
पवन परै तब बरसै हो, सखि गगन से निरमल नीर ॥
ससि औ भान तारागन हो, निरमल भयो अकास ।
पलटुदास हम झूलहिं हो, सखि अपने पिय के पास ॥
(भाग ३, शब्द ११२)

(फुटनोट पृष्ठ १५२ का शेष)
आवाज और शब्द के प्रकाश के अद्भुत अनुभव का वर्णन अपने प्रसिद्ध शब्द 'महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा' में इस प्रकार ब्यान किया है :

महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा ॥
बेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा ।
जाति बरन कुल किरिया नाहीं, सध्या नेम अचारा ॥
बिन जल बूंद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा ।
सुन्न महल में नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा ॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा ।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा ॥
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै, आगे अगम अपारा ।
कहै कबीर वह रहनि हमारी, बूझै गुरमुख प्यारा ॥
(सन्तों की बानी, २३५)

१. तेल की धार के लिये देखें : पृ० १५७, २. द्वार

दीद वर दीद नजर आवै,
तिस को साच करि जानिये जी।
इस दिल सेती फह्म[1] करै,
उस को तव जाइ पहिचानिये जी॥
इस दिल की रूह असमान मंहै,
लाहूत[2] के वीच में आनिये जी।
पलटू ना जाहिर वात करै,
उसकी वात को मानिये जी॥

(भाग २, झूलना १६)

साधो भाई वह पद करहु विचारा, जो तीनि लोक से न्यारा॥
छर अच्छर चौंतिस में कहिये, सहस नाम तेहि माहीं।
नि:अच्छर वह जुदा रहतु है, लिखे पढ़े में नाहीं॥
सुन्न गगन में सवद उठतु है, सो सव वोल में आवै।
नि:सवदी वह वोलै नाहीं, सो सत सवद कहावै॥
रहनी रहै कथै फिरि कथनी, उनको कहिये ज्ञानी।
रहनी कथनी दूनों छूटै, सो पूरा विज्ञानी॥
सुरति लगावै ध्यान धरै जो, सो सव आप में आवै।
सुरति ध्यान एकौ में नाहीं, सो अजपा कहवावै॥
जोग करै सो रूढ़ मता है, मुक्ति मँहै सव आवै।
छोड़ै रूढ़ अरूढ़ को पावै, साची मुक्ति कहावै॥
हृद वेहद को अनुभै कहिये, निरअनुभै ह्वै जावै।
पलटुदास वेहद में वैठे, सो वहि पद को पावै।

(भाग ३, शब्द ८५)

मेरे तन तन लग गई पिय की मीठी वोल॥
पिय की मीठी वोल सुनत मैं भई दिवानी।
भँवरगुफा के वीच उठत है सोहं वानी॥
देखा पिय का रूप रूप में जाय समानी।

1. समझ, 2. सुन्न, ऊपर के लोकों में से एक मण्डल।

जब से भया मिलाप मिले पर ना अलगानी ॥
प्रीत पुरानी रही लिया हम ने पहिचानी।
मिली जोत में जोत सुहागिन सुरत समानी ॥
पलटू सब्द के सुनत ही घूंघट डारा खोल।
मेरे तन तन लग गई पिय की मीठी बोल ॥

(भाग १, कुण्डली ४९)

जहाँ न जप तप नेम ज्ञान ना ध्यान है ॥
पानी पवन अकास नाहिं ससि भान है।
जोग जुक्ति ना सुरति नाहिं दिन रात है ॥
अरे हाँ पलटू मन बुधि चित्त ना जाय तहाँ की बात है ॥

(भाग २, अरिल १०७)

जोग ना जुगत ना प्रानायाम ना,
सुन्न में ध्यान ना धरत ध्यानी।
नाहिं कछु ज्ञान है नाहिं बैराग है,
जाय ना सकै तहँ पवन पानी ॥
इड़ा ना पिंगला नाहिं कछु साधना,
सुरत ना सबद ना उठत बानी।
झिलमिली जोति ना नाहिं है उनमुनी,
चाँद ना सूर ना ब्रह्म-ज्ञानी ॥
सुषमना नाहिं कछु पाँच मुद्रा नहीं,
चित्त ना बुद्धि ना तत्त छानी।
मोती ना हंस ना कँवल ना भँवर ना,
हद्द अनहद्द दोउ नाहिं मानी ॥
गिरा ना लंबिका बंक तुरिया नहीं,
अजपा जाप नहिं तीन तानी।
सहज समाधि के परे की बात है,
दास पलटू कोई संत जानी ॥

(भाग ३, रेखता ७६)

*तवक़ चारदह अन्दर हैं अस्थल वे दरियाव ॥
अस्थल वे दरियाव अर्श कुर्सी खुद दीदन ।
तूबा दरख़त अज़ हद शीरीं मेवा खुर्दन ॥
नूर तजल्ली रूह लाहूत रसीदा नादिर ।
रौशन-जमीर वेचूं सीना-साफ़ क़ाजी क़ादिर ॥
हूहू गुफ्तन फ़ना रूह की सोई वातिन ।
पाक अल्लाह मकान तहाँ को भी वो साकिन ॥
पलटू आरिफ़[1] से कहैं तू भी चाहो जाव ।
तवक़ चारदह अन्दर हैं अस्थल वे दरियाव ॥
(भाग १, कुंडली २४८)

चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ ॥
कुंजी आवै हाथ सब्द का खोलै ताला ।
सात महल के वाद मिलै अठएँ उँजियाला ॥
विनु कर वाजै तार नाद विनु रसना गावै ।
महा दीप इक वरै दीप में जाय समावै ॥
दिन दिन लागै रंग सफाई दिल की अपने ।
रस रस मतलव करै सितावी[2] करै न सपने ॥
पलटू मालिक तुही है कोई न दूजा साथ ।
चढ़ै चौमहले महल पर कुंजी आवै हाथ ॥
(भाग १, कुंडली १७१)

गगन के वीच में ऐन मैदान है,
ऐन मैदान के वीच गल्ली ।

---

*चौदहवें भुवन (महल) में विना पानी के धरती है वहां खुदा का तख्त (अर्श व कुर्सी) दीख पड़ती है और कल्पवृक्ष (तूवा दरख्त) का अत्यन्त स्वादिष्ट फल खाने को मिलता है। उस शून्य लोक (लाहूत) में पहुंची हुई (रसीदा) आत्मा (रूह) का प्रकाश अद्वितीय हो जाता है और वह अन्तरयामी, अद्वितीय, (वेचूं) निर्मल हृदय, (रोशन-जमीर) अधिष्ठाता या स्वामी (काजी) और सर्व शक्तिमान (कादिर) हो जाती है। वही पावन स्थान अल्लाह का है जहां ओम् ओम् का शब्द गूंजता है (हूं हूं गुफ्तन) और आत्मा विदेह होने पर वहीं वासा पाती है (साकिन)।

१. जानने वाला, २. जल्दी ।

सहसदल कँवल में भँवर गुंजार है,
कँवल के बीच में सेत कल्ली ॥
इडा औ पिंगला सुखमना घाट है,
सुखमना घाट में लगी नल्ली ।
सुन्न सागर भरा सत्त के नाम में,
तेहि के बीच में सुरति हल्ली ॥
अछै इक वृच्छ है तेहि के डारि में,
पड़ा हिंडोलना प्रेम झुल्ली ।
अमी रस चुवै सोइ पियत इक नागिनी,
नागिनी मारि कै बुंद रल्ली ॥
वंक के नाल पर तहाँ इक ऊँच है,
तेहुँ के सीस चढ़ि जोति बल्ली ।
जोति के बीच में तहाँ इक राह है,
राह के बीच में नाद चल्ली ॥
नाद के बीच में तहाँ इक रूप है,
रूप को देखि कै रहन सल्ली[1] ।
दास पलटू कहै होय आरूढ़ जब,
संत को सहज समाधि भल्ली ॥

(भाग २, रेखता ७१)

रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥
मुसकिल करना जोग चित को उलटि लगावै ।
विषय वासना तजै प्रान ब्रह्मंड चढ़ावै ॥
साधै वायू प्रान कुण्डली करै उधपना[2] ।
अष्ट कँवल दल उलटि कँवल दल द्वादस लखना ॥
इँगला पिंगला सोधि वंक के नाल चढ़ावै ।
चार कला को तोड़ि चक्र षट जाय बिधावै ॥

---

१. शान्ति, २ कुण्डली नाड़ी का मुँह ऊपर करे ।

पलटू जो संजम करै करै रूप से भोग ।
रन का चढ़ना सहज है मुसकिल करना जोग ॥
(भाग १, कुंडली २४६)

पवन पानी कहै अगिन से जोरि कै,
नाइ माटी केरी महल छाया ।
पाँच है तत्त सोइ पाँच भूतात्मा[1],
इंद्री दस ज्ञान औ कर्म लाया ॥
मन परकिर्ति[2] हंकार फिर जीव है,
महातत्त सोई ह्वै ब्रह्म आया ।
दास पलटू कहै दूसरा कौन है,
भर्म को छोड़ि दे द्वैत माया ॥
(भाग २, रेखता १३)

छोड़ि कै ज्ञान को होय विज्ञान जब,
सत्त के सबद का सोई दागी ।
सुन्न समाधि में ध्यान को लाइ कै,
सहज का ख्याल सोइ वीतरागी[3] ॥
गगन के बीच में तत्त में मगन है,
अबिरल[4] भक्ति उर[5] जासु जागी ।
तुरियातीत ह्वै चित्त जब इक भयो,
रैन दिन मगन है प्रेम पागी[6] ॥
जागती जोति में रहै गरकाब[7] ह्वै,
सबद के बीच में सुरति लागी ।
दास पलटू कहै संत सोइ चक्कवै[8],
भया अद्वैत जब भर्म भागी ॥
(भाग २, रेखता ६५)

---

१. जिनसे पाँच तत्त्व बनते हैं, २. रोना, हंसना आदि पच्चीस प्रकृतियां हैं, ३. राग-द्वेष से मुक्त, ४. निरंतर, एकटक, ५. अन्दर, ६. प्रेम में मग्न, ७. मग्न, ८. चक्रवर्ती ।

सहस कमल दल फूला है, तहवाँ चलु भँवरा ॥
यह संसार रैन का सुपना, कहा फिरै तू भूला है ॥
पलटूदास उलटिगा भँवरा, जाय गगन बिच झूला है ॥
(भाग ३, शब्द ७१)

जब देखो तब सादी नौबत[1] आठो पहर ॥
नौबत आठो पहर गैब[2] की निसु दिन झरती ।
पचरँग जोड़ा खुसी दरवेस की सादी चढ़ती ॥
आफताब[3] भा सूर[4] रोसनी दिल में आई ।
फिरै गैब का छत्र जिकर की मुस्क[5] लगाई ॥
अंदर झूलै फील[6] ख्वाब में खतरा नाहीं ।
ख़बर है पीठी पलँग सेहरा नाम इलाही ॥
पलटू जलवा नूर का ज्यों दरियाव में लहर ।
जब देखो तब सादी नौबत आठो पहर ॥
(भाग १, कुंडली २४५)

भजनीक जो होय सो भजन करै,
भजनीक के बीच में हम[7] नाही ।
भजन में जाइ के बैठि रहे,
अब कौन करै आवा जाही ॥
लोन की डेरी[8] फिर कौन आवै,
जब जाय परी वह सिंधु माही ।
पलटू कहकहा[9] जिन्ह झाँका,
उन को अब आवना क्या चाही ॥
(भाग २, झूलना ६२)

*नासूत मलकूत जबरूत माना,
लाहूत की लज्जत[10] जाय चक्खा ।

---

१. नगाड़ा, २. गुप्त, ३. सूर्य, ४. अथा, ५. कस्तूरी, सुगन्धि, ६. हाथी, ७. अहम्, ८. नमक की डली, ९. देखिये पाद टिप्पणी पृ० ४३ ।
*पूर्ण सन्त किसी भी देश, जाति, धर्म या समय में क्यों न हो, एक ही कहानी
(फुटनोट का शेष भाग पृष्ठ १६० पर)
१०. स्वाद ।

लामकान[1] पर बैठि के जो,
रोसन जमीर[2] फक्कीर पक्का ॥
असमान रखाना[3] खुलि गया,
दिल रूह बोलै हक्का हक्का[4] ।
पलटूदास कहै मुझे नजर आवै,
हर वक्त चिहार[5] तरफ मक्का ॥

(भाग २, रेखता ९७)

[6]कुलुफ कुफर को खोला मुलने, [7]मुरदा होय के डोलौ ॥
जो तुम चाहौ भिस्त[8] आपनी, खुदी[9] खूब को खोवौ ।
हवा[10] हिरिस[11] को वसि में राखौ, रूह पाक को धोवौ ॥

(फुटनोट पृष्ठ १५९ का शेष भाग)

सत्य का वर्णन करते हैं परन्तु देश-जाति के अनुसार भाषा का अन्तर जरूर आ जाता है । हुजूर स्वामीजी महाराज ने आन्तरिक रूहानी मंडलों के संस्कृत भाषा के नामों के साथ अरबी भाषा के नाम भी प्रयोग किये हैं । आप कहते हैं :

नामुकाम पाया लाहूत । छोड़ा नासूत मलकूत जबरूत ॥
लाहूत का जाय खोला द्वारा । हूतलहूत और हूत सम्हारा ॥
हूत मुकाम फ़कीर अखीरी । रूह सुरत जहाँ देती फेरी ॥

(सार वचन, ३४२)

आप समझाते हैं कि जिसको मुसलमान फ़कीरों ने 'अल्ला हू' कहा है, उसको हिन्दुस्तानी महात्मा त्रिकुटी कहते हैं । जिसको हिन्दुस्तानी सन्त सुन्न कहते हैं, उसी को मुसलमान दरवेश 'हा' कहते हैं । इस प्रकार मुसलमान फ़कीरों ने भंवर गुफा को अनाहू कहा है और सतनाम या सतलोक को ही 'हक़' या मुकामे हक कहा गया है । आप कहते हैं कि सन्त और फ़कीर भेद एक ही अखण्ड सत्य का वर्णन करते हैं चाहे बोली दोनों की पृथक-पृथक है :

अल्लाहू त्रिकुटी लखा, जाय लखा हा सुन्न ।
शब्द अनाहू पाइया, भंवरगुफा की धुन्न ॥
हक्क हक्क सतनाम धुन, पाई न्हाँ सचखंड ।
सन्त फकर दोनों जुगल, पद दोउ एक अखंड ॥

(सार वचन, ३४२)

१. सतलोक, अनामी, २. अन्तर्यामी, ३. मोखा, छोटी खिड़की, ४. सतलोक की शब्द ध्वनि ५. चारों ओर, ६. झूठ के ताले खोल दें, ७. जीते-जी मरे, ८. मुक्ति, ९. अहं, १०-११. आशा-मनसा ।

तसबी[१] एक रहै बेदाना, दिल अंदर में फेरो[२]।
पाक मुहम्मद[३] नजर परैगा, दिल गुम्मज[४] में हेरो ॥
[५]जाहिर चसम को दूरि करो तुम, अन्दर धसि के पैठो।
[६]असमान के बीच रखाना है इक, उस हुजरे[७] में बैठो ॥
कीजै फहम[८] फना[९] लै कै, नूर तजल्ली[१०] अपना।
पलटूदास मकां हूहू[११] का, दीद[१२] दानिस्तन सुनना ॥
(भाग ३, शब्द १४१)

[१३]कूद वे बालके कहर दरियाव में,
जीव की लालचं छोड़ भाई।
ताकना नाहिं अब स्यार से सिंह ह्वै,
गुरू के चरन में चित्त लाई ॥
आखिर धौ मरैगा कूद झड़ाक से,
कूदने सेती ना गम्य खाई।
तुझे क्या लाज है लाज है उसी को,
उसी के सीस दे भार नाई ॥
[१४]बार न बाँकिहै छोड़ु डगमगी को,
तनिक विस्वास करु एक राई।
दास पलटू कहै कहर की लहर से,
बचैगा सोइ जो कूदि जाई ॥
(भाग २, रेखता २०)

गगन बोलै इक जोगी है, सुनु चित दे सखी री।
खाय न पीवै मरै न जीवै, नाम सुधा रस[१५] भोगी है।

---

१. माला, २. मन में सुमिरन करो, ३. सतगुरु के नूरी स्वरूप के अन्दर दर्शन होंगे ४. अपने आन्तरिक गुम्बज में देखो, ५ बाहर के नेत्र बन्द कर लो, ६. आन्तरिक जगत में एक खिड़की या झरोखा है, ७. पूजा-स्थल, ८. बुद्धि, ९ नाश करके, १० अपने आपे का नूर देखो अर्थात् अन्दर जाकर आत्मा का जो अद्भुत नूर प्रकट होता है, उसको देखो, ११. वह ऊपर का लोक (मक़ाम) जहाँ हूहू की आवाज़ उठती है। जहाँ सतलोक की ओर संकेत है. १२. वहाँ उस परम सत्य के साक्षात् दर्शन करो, १३. सांसारिक जीवन का लालच छोड़ कर भवसागर को पार करने का प्रयत्न करो. १४. तू डोलना छोड़ दे, तेरा बाल भी टेढ़ा न होगा, १५. नाम रूपी अमृत।

वा के रंग रूप नहि रेखा, देखत परम विरोगी है।
ज्ञान दृष्टि से नजर परतु है, दसयें द्वार इक चोंगी है।
पलटूदास सुनैगा सोई, चढ़ि सतगुरु की डोंगी है।
(भाग ३, शब्द ८४)

दृष्टि कमठ का ध्यान गगन में लावना।
[1]मकरी उलटै तार तेहि भाँति चढ़ावना॥
झिलिमिलि झलकै नूर तिरकुटी महल में।
अरे हाँ पलटू भया हमारा काम संत की टहल में॥
(भाग २, अरिल ९३)

सुन्य के सिखर पर अजब मंडप बना,
मन औ पवन मिलि करै वासा।
एक मे एक अनेक जंगल जहाँ,
भँवर गुंजार इक भरै स्वासा॥
नाम सागर भरा झिलिमिलि मोती झरै,
चुनै कोइ प्रेम-रस हंस खासा॥
दास पलटू परै जबै दिव दृष्टि में,
जरै सब भर्म तब छुटै आसा॥
(भाग २, रेखता ९६)

[2]गगन महल के बीच अमी झरि लागिनी।
टोपन चूवै बूंद पियै इक साँपिनी॥
साँपिनि डारा मारि बूंद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गे हंस जुगो जुग जिया है॥
(भाग २, अरिल ९८)

गगन बीच में अमी की बुंद है,
पियत इक साँपिनी धार धारा।

---

१. जिस प्रकार मकड़ी अपने तार के सहारे नीचे से ऊपर जा सकती है, उसी प्रकार तू सुरत को अन्दर और ऊपर जाने को खींच लिया, २. नाम रूपी अमृत अन्दर बरस रहा है, परन्तु माया रूपी सपनी इसको पिये जा रही है। यदि इस सपनी को मार कर अन्दर अमृत पी ले तो अमर हो जाए।

सॉपिनी मारि के पिये कोउ संत जन,
मुए संसार को फटकि सारा ॥
सेस औ संभु नर झुलत हिंडोलना,
कहत औ सुनत ठग वेद हारा।
दास पलटू कहै बुंद है सिंधु में,
मथे ब्रह्मंड तब होय न्यारा ॥
(भाग २, रेखता ७०)

यार लगाया बाग तेही का फूल है।
सहस रंग तिहि बीच रंग में मूल है ॥
गंग जमुन के बीच चौक है चाँदनी।
अरे हाँ पलटू कड़कत है दिन रात प्रेम की दामिनी ॥
(भाग २, अरिल ९४)

[1]अष्ट दल कँवल के पात को तोरि कै,
कली पर भँवर तब गगन गाजा।
सुन्न में धजा[2] को बाँधि आगे चले,
जाय निस्सान[2] अनहद्द बाजा ॥
चाँद औ सूर दोउ उलटि पाताल गै,
उनमुनी ध्यान तहँ पवन साजा।
सिंध परि कूप में गंग पच्छिम वहै,
[3]सेत पहार पर भँवर भाजा ॥
सहसदल कँवल हंस मोती चुगै,
चंदन के गाछ पर कमठ लागा।
अधर दरियाव[4] में लहर पानी बिना,
[5]गँव की दृष्टि से तत्त माँजा ॥
(भाग १, रेखता ७४)

पच्छिउँ गंगा वहै पानी हैं जोर का।
बीच महँ इक कुंड सुरेरा तोर का ॥

---

१. पहला सहानी महल, २. झण्डा, ३. श्वेत पहाड़, ४. आन्तरिक नदी में, ५. दिव्य दृष्टि से सार-वस्तु प्राप्त की।

वा के रंग रूप नहिं रेखा, देखत परम विरोगी है।
ज्ञान दृष्टि से नजर परतु है, दसयें द्वार इक चोंगी है।
पलटूदास सुनैगा सोई, चढ़ि सतगुरु की डोंगी है।
(भाग ३, शब्द ८४)

दृष्टि कमठ का ध्यान गगन में लावना।
[1]मकरी उलटै तार तेहि भाँति चढ़ावना॥
झिलिमिलि झलकै नूर तिरकुटी महल में।
अरे हाँ पलटू भया हमारा काम संत की टहल में॥
(भाग २, अरिल ९३)

सुन्य के सिखर पर अजब मंडप बना,
मन औ पवन मिलि करै वासा।
एक मे एक अनेक जंगल जहाँ,
भँवर गुंजार इक भरै स्वासा॥
नाम सागर भरा झिलिमिलि मोती झरै,
चुनै कोइ प्रेम-रस हंस खासा॥
दास पलटू परै जबै दिव दृष्टि में,
जरै सब भर्म तब छुटै आसा॥
(भाग २, रेखता ९६)

[2]गगन महल के बीच अमी झरि लागिनी।
टोपन चूवै बूंद पियै इक साँपिनी॥
साँपिनि डारा मारि बूंद को पिया है।
अरे हाँ पलटू अमर लोक गे हंस जुगो जुग जिया है॥
(भाग २, अरिल ९८)

गगन बीच में अमी की बुंद है,
पियत इक साँपिनी धार धारा।

---

१. जिस प्रकार मकड़ी अपने जाल के सहारे नीचे से ऊपर जा सकती है, उसी प्रकार तू सुरत को अन्दर और ऊपर जाने की जाँच सिखा, २. नाम रूपी अमृत अन्दर बरस रहा है, परन्तु माया रूपी सपनी इसको पिए जा रही है। यदि इस सपनी को मार कर अन्दर अमृत पी ले तो अमर हो जाए।

सांपिनी मारि के पिये कोउ संत जन,
मुए संसार को फटकि सारा ॥
सेस ओ संभु नर झुलत हिंडोलना,
कहत ओ सुनत ठग वेद हारा।
दास पलटू कहै बुंद है सिंधु में,
मथे ब्रह्मंड तब होय न्यारा ॥
(भाग २, रेखता ७०)

यार लगाया बाग तेही का फूल है।
सहस रंग तिहि बीच रंग में मूल है ॥
गंग जमुन के बीच चौक है चाँदनी।
अरे हाँ पलटू कड़कत है दिन रात प्रेम की दामिनी ॥
(भाग २, अरिल ९४)

[1]अष्ट दल कँवल के पात को तोरि के,
कली पर भँवर तब गगन गाजा।
सुन्न में धजा[2] को बाँधि आगे चले,
जाय निस्सान[2] अनहद्द बाजा ॥
चाँद ओ सूर दोउ उलटि पाताल गे,
उनमुनी ध्यान तहँ पवन साजा।
सिंध परि कूप में गंग पच्छिम बहै,
[3]सेत पहार पर भँवर भाजा ॥
सहसदल कँवल हंस मोती चुगै,
चंदन के गाछ पर कमठ लागा।
अधर दरियाव[4] में लहर पानी बिना,
[5]आँव की दृष्टि से तत्त माँजा ॥
(भाग २, रेखता ७४)

पच्छिउँ गंगा बहै पानी है जोर का।
बीच महँ इक कुंड मुरेरा तोर का ॥

१. पहला रूहानी मंडल, २. झण्डा, ३. सफेद पहाड़, ४. आन्तरिक नदी में, ५. दिव्य दृष्टि से सार-वस्तु प्राप्त की।

उलटी वहै बयार नाव मुरकाय दै।
अरे हाँ पलटू उतरे येहि के पार तो सूधी जाय दै ॥
(भाग २, अरिल १०५)

अरध उरध के बीच बसा इक सहर है।
बीच सहर में बाग बाग में लहर है॥
मध्य अकास में छूटै फुहारा पवन का।
अरे हाँ पलटू अंदर धँसि के देखु तमासा भवन का ॥
(भाग २, अरिल ९९)

अर्ध उर्ध के बीच हिंडोला चंग[1] है।
झूल संत सुजान सजन से रंग है॥
सुरत सब्द कै खेल सहर कै भाडवी[2]।
अरे हाँ पलटू अर्ध उर्ध के बीच बड़ी है साहिबी ॥
(भाग २, अरिल ९६)

आदि अंत ठिकानी बातें, कहाँ आपनी देखी हो ॥
राह अजान पंथ को पावै, त्रिकुटी घाट उतारा हो।
अविगत नगर जाय जहँ पहुँचे, [3]मारग विहँग विचारा हो ॥
बायें चन्द सुर है दहिने, सुखमन सुरति समानी हो।
सोहं सोहं सुन में बोलै, वही सब्द की खानी हो ॥
तुरिया बैठा जाग्रत जोगी, लगी उनमुनी तारी[4] हो।
[5]इँगला माहीं सहज समानी, पिंगला पवन अहारी हो ॥
हद पर बैठे सतगुरु बोलैं, बेहद बोलै चेला हो।
अजपा जाप[6] छूटी है दुनिया, अनुभव भया अकेला हो ॥

---

१. अच्छा, सुन्दर, २. गायन, ३. आत्मा की चार चालें मानी गई हैं : चींटी मार्ग, मकड़ी मार्ग, मछली मार्ग और विहगम या पक्षी मार्ग। पक्षी जब चाहे उड़ान भर कर वृक्ष या पहाड़ पर जा पहुंचता है। सन्तों की भी यही गति होती है कि आँखें बन्द करते ही मनचाहे पहुंच जाते हैं, ४. समाधि, ५. इगला, पिगला = इड़ा-पिंगला अर्थात् मस्तक में बायीं और दायीं सूक्ष्म नाड़ी, ६. सन्तों ने अपने आप अन्दर हो रहे अनहद शब्द को अजपा-जाप कहा है।

सुन्न संवत द्वादस है अठवां, चार तत्व से न्यारा हो ।
पलटू यह टकसारी सिक्का, परखैगा कोइ न्यारा हो ॥
(भाग १, शब्द ८०)

सुन्न समाधि के बीच ध्यान को लावना ।
सुखमनि[1] के रे घाट पवन ले आवना ॥
टूटे ना वह डोरि बाट आरूढ़[2] है ।
अरे हां पलटू ऐसे को परनाम अवस्था गूढ़ है ॥
(भाग २, अरिल १००)

जगमग जोति जगाव झिरिहिरो बीच में ॥
कमठ दृष्टि से मारि गिरौ जनि कीच में ॥
सोहं सोहं सब्द रैन दिन बोलता ।
अरे हां पलटू जब देखो गरकाव[3] पलक नहिं खोलता ॥
(भाग २, अरिल १०१)

बिना जंतरी जन्त्र बाजता गगन में ।
बिसरि गया संसार उसी के लगन में ॥
जो कोई जनमी होय हमारे लगन की ।
अरे हां पलटू सो प्यारी लै जानि बात यह सजन की ॥
(भाग २, अरिल १०२)

तिरबेनी के घाट नाव को आनि कै ।
सुखमनि घाट थहाय चलावो जानि कै ॥
असी संगम के बीच पहारो फोरि कै ।
अरे हां पलटू गुन[4] को खैंचु सिताब काम है जोर कै ॥
(भाग २, अरिल १०६)

तिरकुटी घाट को उतरु सम्हारि कै
सुखमना खैंचु गुन बाँधि खूंटा ।

१ सुखमना को पार कर आत्मा ऊपर के मण्डलों में जाती है. २. यह मार्ग एवं सुन्दर है. ३ मस्त. ४. रस्सी।

*बीच पहार में साँकरी गली है,
गली में कुंड जल परै टूटा ॥
भँवर को देखि कै नाव मुरेरु तू,
चली है नाव तब कुंड छूटा ।
दास पलटू कहै नाव सम्हारना,
सोत में सोत ब्रह्मंड फूटा ॥
(भाग २, रेख़ता ७७)

अनहद बाजै तूर सुन्न में धजा[1] फरक्कै ।
मुवा होव सो जाय देखत कै जान सरक्कै ॥
अठएँ लोक के पार भरा एक हौज[2] है ।
अरे हाँ पलटू [3]मुद्दा हुआ तमाम करै फिर मौज है ॥
(भाग २, अरिल ९५)

उठै झनकार गगन के बीच में,
लगा दिन राति इक रंग है जी ।
टूट तहँ लगी है सुरति और निरति की,
तान गावै सबद सोहंग है जी ॥
सहज के खेल में जोति हीरा बरै,
नहीं कोइ दूसरा संग है जी ।
पलटू महल अठएँ उपर गई,
हवास[4] देखि के दंग है जी ॥
(भाग २, झूलना ५४)

---

*तंग मार्ग ; कबीर साहिब भी कहते हैं कि मुक्ति का मार्ग बहुत बारीक है परन्तु मन हाथी की तरह फैला हुआ है । इसलिये इसका इसके अन्दर से गुजर सकना बहुत कठिन है :

कबीर मुकति दुआरा संकुड़ा राई दसवैं भाइ ॥
मनु तउ मैगलु होइ रहा निकसिआ किउ करि जाइ ॥
(आदि ग्रन्थ, ५०९)

१. झण्डा झुलाना, २, तालाब, ३. सारा उद्देश्य पूरा हो गया, ४. देख कर होश मारी जाती है अर्थात् काफ़ी हैरानी होती है ।

हद्द अनहद्द के पार मैदान है,
उसी मैदान में सोय रहना।
पैर दक्खिन करै सीस उत्तर धरै,
सबद की चोट सम्हारि सहना॥
ज्ञान औ ध्यान दोउ थकहिंगे हारि कै,
सहज समाधि में तत्त महना[1]।
चन्द औ सूर उहँ पहुँचि ना सकहिंगे,
रेमुसी[2] के लोक में सोक दहना॥
तानि चादर कंहै करो आराम तुम,
वचन को मानि कै गांठि गहना।
दास पलटू कहै दूर की बात है,
बूझि के किसी से नाहि कहना॥

(भाग २, रेख़ता ६९)

सातहू सर्ग अपवर्ग के पार में,
जहाँ मैं रहौं ना पवन पानी।
चाँद ना सूर है ना राति ना दिवस है,
उहाँ के मर्म[3] ना वेद जानी॥
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्मा ना बिस्नु है,
पहुँच ना सकै कोउ ब्रह्म-ज्ञानी।
दास पलटू कहै एक ही एक है,
दूसरा नहीं कोउ राव रानी[4]॥

(भाग २, रेख़ता ७१)

पलटू कहैं साच कै मानो, और बात झूठ कै जानो।
जहवाँ धरती नाहिं अकासा, चाँद सूरज नाही परगासा।
जहवाँ पवन जाय ना पानी, वेद किताब भरम ना जानी।
जहवाँ ब्रह्मा बिस्नु न जाही, दस औतार न तहाँ समाही।

---

१. महना = महीन, बारीक, २. सुन्नी के महल में पहुँच कर सभी को जला देना, ३. भेद, ४ राजा-रानी अर्थात् शिव-शक्ति या मन-माया।

आदि जोति न बसै निरंजन, जहवाँ सुन्न सबद नहिं गंजन।
निराकार ना उहाँ अकारा, सत्य सबद नाहीं बिस्तारा।
जहवाँ जोगी जोग न पावै, महादेव ना तारी[1] लावै।
उहवाँ हद अनहद ना जावै, वेहद वह रहनी ना पावै।
जहवाँ नाहिं अगिन परगासा, पांच तत्तु ना चलता स्वासा।
ब्रह्म ज्ञान ना पहुँचै उहवाँ, अनुभौ पद ना बोलै तहवाँ।
सात सर्ग अपवर्ग न कोई, पिंड उहाँ ब्रह्मण्ड न होई।
जहवाँ करता करै न पावै, सिद्धि समाधि ध्यान ना लावै।
[2]अजपा गिरा[3] लंबिका नाहीं, जगमग झिलिमिलि उहाँ न जाहीं।
सोहं सोहं उहाँ न बोलै, चलै न जुक्ति सुरत ना डोलै।
उहवाँ नाहिं रहै अविनासी, पूरन ब्रह्म सकै ना जासी।
निरभौ नाद नहीं ओंकारा, निरगुन रूप नहीं बिस्तारा।
पलटूदास तहाँ चलि गया, आगे ह्वै पाछे ना भया।
पलटू देखि हाथ को मलै, आगे कहै तो परदा खुलै।

॥ दोहा ॥

आदि अंत अरु मध्य नहिं, रंग रूप नहिं रेख।
गुप्त बात गुप्तै रही, पलटू तोपा[4] देख॥

(भाग ३, शब्द ७९)

चलहु सखि वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी।
पाप पुन्न नहिं चांद सुरज नहिं, नहीं सजन नहीं सजनी[5]।
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी।
लोक वेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।
पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक राम रम रमनी[6]।

(भाग ३, शब्द ८२)

---

१. समाधि, ध्यान, २. जहाँ किसी प्रकार की वाणी नहीं, ३. गले की भीतर की घाटी, ४. ढक दिया, ५. जहाँ आशिक और माशूक का भेद समाप्त हो जाता है, ६. जहाँ गुरु और चेले का भेद समाप्त हो जाता है, केवल परमात्मा ही परमात्मा रह जाता है।

जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ॥
मोहिं पड़ा है देख नदी इक बड़ी है गहिरो ।
ता में धारा तीन बीच में सहर बिलौरी ॥
महल एक अँधियार बरै तहँ गैब की बाती ।
पुरुष एक तहँ रहै देखि छबि वा की माती ॥
पुरुष अलापै तान सुना मैं एक ठो जाई ।
वाहि तान के सुनत तान में गई समाई ॥
पलटू पुरुष पुरान वह रंग रूप नहिं रेख ।
जागत में एक सूपना मोहिं पड़ा है देख ॥
(भाग १, कुंडली १७१)

ज्ञान

सच्चा ज्ञान :

पूरे सतगुरु के सत्संग में जाने से, उसकी सच्ची वाणी सुनने से तथा सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार भजन-सुमिरन करने से अन्दर का पर्दा हट जाता है तथा अन्तर में सत्य के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं। यह सच्चा ज्ञान है। यह ज्ञान कहीं बाहर से नहीं मिलता, अपने अन्दर ही प्रकट होता है। जब सतगुरु की कृपा से यह सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है तो शरीर रूपी महल बिना तेल तथा बत्ती के प्रकाश से भर जाता है। यह खुश्क शाब्दिक ज्ञान नहीं बल्कि सच्चा आनन्द तथा सच्ची शान्ति प्रदान करने वाला निर्मल अमृत है। इसको पाकर जीव अन्दर मग्न हो जाता है तथा प्रत्येक प्रकार के बाहर के वाचक ज्ञान की आवश्यकता से मुक्त हो जाता है :

परदा अंदर का टरै देखि परै तब रूप ॥
देखि परै तब रूप मिटै सब मन का धोखा।
परै सबद टकसार बहुत चोखे से चोखा ॥
जोग-जीत जब होय भूमिका ज्ञान की पावै।
लागै सहज समाधि सक्ति से सीव बनावै ॥
महल करै उँजियार तेल बिनु दीपक बाती।
परमानन्द अनन्द भजन में दिन औ राती ॥
पलटू सूझै है नहीं जहाँ अधोसुख कूप।
परदा अंदर का टरै देखि परै तब रूप ॥

(भाग १, कुंडली १४८)

[1]समुझे को समुझावै हीरा आगे पोत ॥
हीरा आगे पोत ज्ञानी को मूढ़ बुझावै।
जहवाँ आँधी चलै बेना कै बतास[2] चलावै ॥
अटकर सेती अंध डिठियारे[3] राह बतावै।
जैसे पंडित चतुर संत से बाद न आवै ॥
सुधा क पीवनहार ताहि को छाछ दिखावै।
जेकरे बाजे तूर तहाँ का डफ्फ बजावै ॥
पलटू दीपक का करै जहँ सूरज की जोत।
समुझे को समुझावै हीरा आगे पोत ॥

(भाग १, कुंडली १२१)

जिस चोट लगी है ज्ञान को जी,
तिस को नही कुछ भावता है।
अठ सिसि नौ निधि भई आइ खड़ी,
तिस को वह दूरि बहावता है ॥
संसार कंहै दै पीठि बैठा,
अपने मन को खूब रिझावता है।
पलटू जहँ मन की गम्मि नहीं,
तहाँ वह जोति जगावता है ॥

(भाग २, मूलना ५०)

डरै लोक की लाज परलोक नसायगा।
माया के परसग ज्ञान मिटि जायगा ॥
तजै न भोग विलास चाहता जोग है।
अरे हाँ पलटू विना विचार विवेक भेप में रोग है ॥

(भाग २, अरिल ८१)

ज्ञान का चाँदना भया आकास में,
मगन मन भया हम लखि पाया।

---

१. सच्चे ज्ञानी को ज्ञान देना हीरे के आगे बनौर रखने के समान है, २. हवा.
३. आँखों वाले को मार्ग बताओ।

दृष्टि के खुले से नजर सब आयगा,
लखा संसार यह झूठि माया ॥
जीव और ब्रह्म के भेद को बूझि कै,
सबद की साच टकसार लाया ।
दास पलटू कहै खोलि परदा दिया,
पैठि के भेद हम देखि आया ॥
(भाग २, रेखता ६४)

वाचक ज्ञान :

भजन सुमिरन या आध्यात्मिक चढ़ाई द्वारा प्राप्त हुए सच्चे ज्ञान के मुकाबले में ग्रन्थ-पोथियाँ पढ़ने सुनने या कथा-कीर्तन सुनने से मिली जानकारी को पलटू साहिब ने वाचक ज्ञान कहा है। निजी अनुभव से प्राप्त हुआ सच्चा ज्ञान आम चूसने तथा अंगूर खाने से प्राप्त होने वाले स्वाद की तरह है जिसका अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु शब्दों में वर्णन कदापि नहीं किया जा सकता। वाचक ज्ञान बूर के लड्डुओं से अधिक नहीं है। पलटू साहिब ने बिना निजी अनुभव के ज्ञान को 'अहं रूपी कालिमा का टीका' कहा है। ऐसा ज्ञान व्यर्थ है, यह कभी भी प्रभु-प्राप्ति की वड़ाई का कारण नहीं बन सकता।

पलटू साहिब एक दुर्लभ दृष्टांत के द्वारा सच्चे ज्ञान तथा वाचक ज्ञान का भेद समझाते हैं। आप कहते हैं कि जो कुत्ता कुछ देख कर भौंकता है, उसका भौंकना उचित है, परन्तु जो कुत्ता पहले कुत्ते को भौंकता सुनकर भौंकना शुरू कर देता है, वह मूर्ख है। इसी प्रकार जो महात्मा अन्तर में सत्य के दर्शन करके इसका वर्णन करता है, उसका ज्ञान सच्चा है, परन्तु जो व्यक्ति दूसरे महात्माओं के वर्णन पढ़ कर परमार्थ का उपदेश करता है, वह थोथा वाचक ज्ञानी है। राजा राजा कहने से कोई राजा नहीं बन जाता। शूरवीरता द्वारा राज्य प्राप्त करके ही राजा बना जा सकता है। इसी प्रकार जीव की अवस्था जब भी बदलती है तथा जब भी अन्दर सच्ची शान्ति प्राप्त होती है, आध्यात्मिक अभ्यास, अन्तर्मुख साधना तथा नाम की कमाई से ही होती है, वाचक ज्ञान से नहीं। पलटू साहिब कहते हैं, 'कहिबो को क्या भया

माया

आध्यात्मिक अभ्यास तथा चढ़ाई में दो बड़ी बाधाएँ हैं—माया तथा मन। माया मन को भरमाती है और उसके चक्कर में फँस कर मन और इन्द्रियों के भोगों की ओर खिचा चला जाता है।

माया का जाल हर तरफ़ फैला हुआ है। साधारण लोगों की तो बात ही क्या, बड़े बड़े ऋषि-मुनि तथा अवतार भी इसके चगुंल से नहीं बच सके। सारा संसार माया के नशे में चूर है; माया की लहर में सब संसार मग्न है। माया का राज्य चारों दिशाओं में है तथा इसने सारे संसार को लूट लिया है। पूर्ण सन्तों को छोड़ कर कोई भी माया की मार से नहीं बचा।

माया कई प्रकार से अपना वार करती है। यह कई रूप धार कर आती है। किसी वस्तु का इकट्ठा करना या जमा करना भी माया की पूजा करना है तथा इस वृत्ति से प्रभु-भक्ति में विघ्न पड़ता है। 'माया संग्रह किए भक्ति में दाग है।' पलटू साहिब कहते हैं कि माया का लोभी जीव शेर की तरह दिलेर रहने की अपेक्षा लोमड़ी की तरह चालाक और मक्कार बन जाता है: 'करे जो जतन (संग्रह) सियार हो जायेगा।' आप कहते हैं कि सन्तों ने प्रत्येक प्रकार से माया को परख कर इसका त्याग कर दिया है क्योंकि यह सचमुच ही बहुत बुरी बला है।

पलटू साहिब जीव को सावधान करते हैं कि माया बाहर से लुभावनी है परन्तु अन्दर से काली नागिन है। यह कभी भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ती, अवसर देख कर जरूर डंक मारती है। आप माया को ऐसी ठगिनी कहते हैं जो सारे संसार को अज्ञानता का नशा पिला कर प्रभु-

भक्ति से दूर रखती है। इसलिए माया से सदा सावधान रहना चाहिए।

पलटू साहिब ने जहाँ माया की शक्ति का वर्णन किया है, वहाँ सन्तों के सामने इसकी बेबसी को भी सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है। आप कहते हैं कि सन्त प्रभु का रूप होते हैं जिससे उन पर माया का जादू नहीं चलता। वे माया को पैर की जूती बना कर रखते हैं 'वे फेंक मारें पैजारि हे जी।' माया सन्तों की दासी है तथा सन्तों से डरती है। जो जीव सन्तों के उपदेश पर चल कर मन से माया का मोह निकाल देता है, माया सदा के लिए उसकी दासी बन जाती है

माया की चक्की चलै पीसि गया संसार॥
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावै।
दोऊ पट के बीच कोऊ ना साबित जावै।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे
तिरगुन डारैं झीका[1] पकरि कै सबै निकारे।
दुरमति बड़ी सयानि सानि कै रोटी पोवै
करम तवा में धारि सेंकि कै साबित [illegible]।
तृस्ना बड़ी छिनारि[2] जाइ उन सब [illegible]
काल बड़ा बरियार किया उन एक निवाला।
पलटू हरि के भजन बिनु कोऊ न [illegible]
माया की चक्की चलै पीसि गया संसार॥
([illegible])

माया हमें अब जनि भ्रमदावो[4], [illegible] चोरावो॥
देवन के घर भइउ अपछर, [illegible] के घर चेली।
सुर नर मुनि तो सब हो [illegible], [illegible] अलमस्त अकेली॥
कृस्न कहँ गोपी होइ [illegible], [illegible] कहँ होइ [illegible]।
महादेव कौ पारबती [illegible] [illegible]

१. मुट्ठी मुट्ठी अनाज जो चक्की में डालते हैं. २. देखो [illegible]
[illegible] किसी के वश में न आए. ३. [illegible]. ४. [illegible]
।

बिसुन कँह लछमी होइ खायो, ब्रह्मा त्रिष्टि बड़ाई ।
सिंगी रिषि को बन में खायो, तुम्हरी फिरी दुहाई ॥
दौलत होइ तिनु लोकहि खायो, गिरही की ह्वै नारी ।
पलटूदास के द्वार खड़ी है, लौंड़ी[1] होइ हमारी ॥
(भाग ३, शब्द ९५)

माया के फंद से बचा ना कोऊ है,
माया ने कहा संसार सोगी ।
सुर नर मुनि फिरि उलटि गे आइ कै,
छोड़ि बैराग फिरि भये भोगी ॥
सन्यासी बैरागी उदासी औ सेवरा[2],
सेख दुरवेस औ जती जोगी ।
दास पलटू कहै बूझि हम देखिया,
बिना बिवेक सब भेष रोगी ॥
(भाग २, रेखता ८१)

माया ठगनी जग ठगा इकहे[3] ठगा न कोय ॥
इकहे ठगा न कोय लिये है तिर्गुन गाँसी ।
सुर नर मुनि देय डिगाय करै यह सब की हाँसी ॥
इंद्रहु को यह ठगा ठगा दुर्वासै जाई ।
नारद मुनि को ठगा चली ना कछु चतुराई ॥
सिवसंकर को ठगा बड़े जो नेजाधारी ।
सिंगी ऋषी जवान बीछ कै बन में मारी ॥
पलटू इह को सो ठगा जो साचा भक्ता[4] होय ।
माया ठगनी जग ठगा इकहे ठगा न कोय ॥
(भाग १, कुंडली १८३)

माया की लहर संसार सब मगन है,
खाय भरि पेट भरि नींद सोया ।

---

१. माया को पलटू साहिब ने सन्तों की दासी कहा है। देखें : भाग ३, शब्द १३३, १३४ एवं १३५. २. एक प्रकार का साधू. ३. इसको. ४. सन्त अर्थात प्रभु में समाया हो।

राम को नाम नहिं चेत सपनेहु किहा,
[1]सुभग तन पाइ के वृथा खोया ॥
मोर औ तोर के परा झकझोर में,
काम औ क्रोध का बीज बोया ।
दास पलटू कहै देखि संसार को,
बैठि के महूँ भरि पेट रोया ॥
(भाग २, रेखता ८२)

माया कलवारिनी[2] देत विष घोरि कै,
पिये विष सबै ना कोऊ भागै ।
[3]संसार बौराइ गा भया बेहोस सब,
[4]लेत नँगियाय ना कोऊ जागै ॥
[5]अमल बाँका बड़ा घुटै ना चीसका[6],
जीव के संग जब मुहँ लागै ।
एक ठो परे है धूरि में लोटते,
दास पलटू एक चोखि मांगै ॥
(भाग २, रेखता ८१)

माया संसार को जीति आई,
संसार चला सब हारि है जी ।
जोगी जती औ सिद्ध तपी,
उनको भी लेती मारि है जी ॥
उनके निकट नहीं आवै,
जिनके विवेक विचार है जी ।
पलटू गतन से वह डरती,
वे फेंकि मारें पैजारि[7] है जी ॥
(भाग २, झूलना १२)

---

१. ऊँचे भाग्य से मिला सुन्दर मनुष्य शरीर, २. शराब पिलाने वाली, ३. पागल हो गया, ४. सर्वस्व लूट लेना, ५. अफीम से बना एक नशीला पेय, [illegible]स्का, स्वाद, ७. जूती ।

पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन देखा चारिउ खूंट ॥
देखा चारिउ खूंट माया से बचै न कोई ।
राजा रंक फकीर माया के वसि में होई ॥
सब को वसि में करै जगत को माया जीती ।
आपु न वसि में होय रहै वह सब से रीति ॥
*हरि को देइ भुलाय अमल वह अपना करती ।
ऐसी है वह नारि खसम को नाहीं डेराती ॥

---

*गुरु अमरदास जी ने 'आनन्द' की २९ वीं पौड़ी में माया के स्वभाव का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। आप कहते हैं कि जिस प्रकार माता के पेट में जठर अग्नि जीव को जलाती है, उसी प्रकार बाहर संसार में माया इसको जलाती है। जब जीव माता के पेट में होता है तो उसकी लिव अन्दर नाम से जुड़ी होती है और वह परमात्मा के सन्मुख विनती करता है कि मैं कभी पल भर के लिये भी तुझे नहीं भुलाऊंगा। परन्तु जब संसार में जन्म लेता है तो परिवार के लोगों और संसार को देख कर इसकी लिव नाम से टूट जाती है। इसके हृदय में नाम के स्थान पर संसार की आशा-तृष्णा का राज्य हो जाता है। माया का ऐसा अमर भाव हुक्म चलता है कि जीव अपने रचनाकार व सृजनहार को भूल जाता है। आप समझाते हैं कि वह शक्ति जो संसार के सच्चे होने का धोखा देती है, संसार के मोह में फंसा देती है और हृदय में से परमात्मा की याद भुला देती है, वही माया है। परन्तु जो जीव सतगुरु की दया से दोबारा लिव अन्दर नाम से जोड़ लेते हैं, वे माया में रहते हुए भी इसके प्रभाव से मुक्त रहते हैं :

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥
जा तिसु भाणा ता जमिआ परवारि भला भाइआ ॥
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ ॥
एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ ॥

(आदि ग्रन्थ, ९२१)

आप ने एक अन्य स्थान पर भी लिखा है कि संसार काजल की कोठरी है और इसमें मोह माया का इतना भयानक पसारा है कि कोई इसकी कालिमा से नहीं बच सकता, परन्तु परमात्मा के सच्चे भक्त, जिनकी लिव अन्दर नाम से जुड़ी रहती है, इसके प्रभाव से बचे रहते हैं। जिस प्रकार मुरगाबी पानी में रहती है परन्तु उसके पंख पानी में नहीं भीगते :

माइआ मोहु सबलु है भारी मोहु कालख दाग लगाई ॥
मेरे ठाकुर के जन अलिपत है मुकते जिउ मुरगाई पंकु न भीजै ॥

(आदि ग्रन्थ, १३२६)

पलटू सब संसार को माया लीन्हो लूट।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन देखा चारिउ खूंट॥

(भाग १, कुंडली १८८)

टोप टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इर्क लै गया निकारि सबै दुख पाइया॥
मो को भा बैराग ओहि को निरखि कै।
अरे हाँ पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखि कै॥

(भाग २, अरिल ४८)

धरो फूंकि के पाव कुसंग ना कीजियै।
भजन मंहे भंग होय सोच ना लीजियै॥
कोउ ना पकरै फेट करै जो त्याग है।
अरे हाँ पलटू माया संग्रह करै भक्ति मे दाग है॥

(भाग २, अरिल ६८)

*माया यार फकीर कंहै जंजाल है।
सांप खिलौना करै एक दिन काल है॥
मांछी मधु लै धरै छोरि कोइ खायगा।
अरे हाँ पलटू सिंह करै जो जतन स्यार होइ जायगा॥

(भाग २, अरिल ४७)

हम से फरक रहु दूर, माया मौत नुखानी॥
आन के लेखे तुम अमृत लागहु, हमरे लेखे जम पानी।
हमरे तुंह लौंड़ी अस नाही, औरन के लेखे घर रानी॥
औरन के लेखे तू परबत, हम राई सम जानी।
सगरो अमल करेहु तुंह माया, हम से रहौ अलगानी॥
तीन लोक तुंह निगल गई है, तेहि पर नाहि अघानी।
पलटुदास कहै बकसहु माया, नरक कि तुंहो निसानी॥

(भाग १, शब्द ९९)

---

*माया इकट्ठी कोई करता है और खाता कोई अन्य है। माया शेर को निर्बल देती है। जो शेर माल बचा कर रखता है, वह शेर नहीं रह सकता, गीदड़ बन ा है। इसी प्रकार जो फ़कीर माया इकट्ठी करता है, वह फ़कीरी से भी हाथ धो ा है।

सोई है अतीत जो तो माया तें अतीत ॥
माया ठगिनी ठगा संसार, सुर नर मुनि बोरे मँझधार ।
माया बोलै मीठी बोल, गाँठ से ज्ञान ध्यान लेइ खोल ।
माया है यह काली नाग, (जेहि कां) काटे पानी सकै न माँग ।
पलटूदास माया यह काल, भागि बचे साहिब के लाल ।

(भाग ३, शब्द ९७)

[1]कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ॥
नागिनि के परसंग जीव के भच्छक सोई ।
[2]पहरू कीजै चोर कुसल कहवाँ से होई ॥
रूई के घर बीच तहाँ पावक[3] लै राखै ।
बालक आगे जहर राखि करिके वा चाखै ॥
[4]कनक धार जो होय ताहि ना अंग लगावै ।
[5]खाया चाहे खीर गांव में सेर बसावै ॥
पलटू माया से डेरै करै भजन में भंग ।
कुसल कहाँ से पाइये नागिनि के परसंग ॥

(भाग १, कुंडली १८७)

नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ॥
आपुइ नागिनि खाय नागिनि से कोय न बाचे ।
नेजाधारी सम्भु नागिनि के आगे नाचे ॥
सिंगी ऋषि को जाय नागिनि ने बन में खाई ।
नारद आगे पड़े लहर उनहूँ को आई ॥
सुर नर मुनि गनदेव सभन को नागिनि लीलै ।
जोगी जती औ तपी नहीं काहू को ढीलै ॥

---

१. जीव को खा जाने वाली माया के रहते सुखी किस प्रकार हो सकता है, २. यदि पहरेदार ही चोर हो जावे तो सुख किस प्रकार हो, ३. आग, ४. माया यदि सोने का रूप धार कर भी आवे तो भी हाथ न लगावें, ५. जो नाम रूपी दूध पीना चाहता है, वह आन्तरिक कहानी देश में जावे ।

सन्त विवेकी गरुड़[1] हैं पलटू देखि डेराय।
नागिनि पैदा करत है आपुइ नागिनि खाय ॥
(भाग १, कुण्डली १८६)

गुरु की भक्ति और माया ज्यों छूरी तरबूज ॥
ज्यों छूरी तरबूज कुसल दोऊ विधि नाहीं।
गिरे गिराये घाव लगे तरबूजें माहीं ॥
कनक कामिनी बड़ी दोऊ है तीछन[2] धारा।
तब बचिहै तरबूज रहे छूरी से न्यारा ॥
[3]छोट बड़ा कतलाम नहीं छूरी को दाया।
[4]बचे विवेकी संत गये जिन अंग लगाया ॥
पलटू उन से बैर है पड़े न मूरख बूझ।
गुरु की भक्ति और माया ज्यों छूरी तरबूज ॥
(भाग १, कुण्डली ११५)

माया औ बैराग दोऊ में बैर है।
लिये कुल्हाड़ी हाथ मारता पैर है ॥
किया चहै बैराग माया में जायगा।
अरे हाँ पलटू जो कोइ माहुर खाय सोई मरि जायगा ॥
(भाग २, अरिल ७१)

माया तू जगत पियारी वे, हमरे काम की नाहीं।
द्वारे से दूर हो लंडो[5] रे, पइठु न घर के माहीं ॥
माया आपु खड़ी भइ आगे, नैनन काजर लाये।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन माँग भरावे ॥
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊँ।
जब देखो तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊँ ॥

---

१. साँप का टूना जानने वाले अर्थात् सन्तों को माया रूपी नागिन को वश में करने की युक्ति आती है, २. तीक्ष्ण, तेज, ३. छूरी निर्दयता से सब छोटे-बड़े को कत्ल कर देती है, ४. सन्तों के बिना जिसने भी माया को अंगीकार किया, मारा गया, ५. लौंडी, दासी।

ऋद्धि सिद्धि दोउ कनक समाजी, बिस्नु डिगन[1] को भेजा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा[2] ॥
तू क्या माया मोहिं नचावै, मैं हौं बड़ा नचनियाँ।
इहवाँ बानिक[3] लगै न तेरो, मैं हौं पलटू बनियाँ ॥
(भाग ३, शब्द १३३)

*संतो बिस्नु उठे रिसियाय, माया किन्ह जीतिया ॥
माया को लिया बुलाय, गोद लै पूछन लागे।
तीन लोक की बात, प्रगट करु मोरे आगे ॥
माया रोवन लागि, खोल कर मूंड़ दिखावै।
दै जूतिन की मार, मोहिं बनिया दुरियावै ॥
दिहा इन्द्र को त्रास[4], अपसरा तुरत पठावो।
नाना रूप बनाय, जाइ के तुरत डिगावो ॥
उतरी अपसरा आय, अवधपुर जहँवाँ बनियाँ।
सोरहो किये सिंगार, चंद्रमुख मधुर वचनियाँ ॥
छुद्रघंटिका[5] पायल, बाजै रतन जड़ाऊँ।
ऋतु बसंत की आनी, मोतिन से माँग भराऊँ ॥
नाचै गावै राग, भाव धै बाँह बतावै।
बनियाँ लाय समाधि, डिगै ना लाख डिगावै ॥
क्या तुम भये फकीर, नारि तुम सुन्दर बिलसो।

---

१. फंसाने या गिराने को, २. बल, जोर, ३. दाँव, छल-बल।

*इस शब्द में पलटू साहिब ने बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है कि किस प्रकार माया आपको छलने के लिये आई परन्तु आप उसके दाँव में न आए। कबीर साहिब के बारे में भी प्रसिद्ध है कि जब माया आपको छलने के लिये आई तो आपने उसके नाक और कान काट लिए। आप आदि ग्रन्थ में दर्ज अपनी वाणी में कहते हैं कि तीनों लोक माया के पुजारी हैं, परन्तु सन्त-जन इसकी चालों में नहीं आते :

नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी ॥
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की पिआरी ॥
(आदि ग्रन्थ, ४७६)

महाराज सावनसिंह जी अनेक उदाहरणों द्वारा बताते हैं कि माया ने सारे संसार को छल लिया और केवल पूर्ण सन्त ही इसकी चालों से बचे हैं।

४. भय, धमकी, ५. आभूषणों के नाम।

सोना रूपा लेहु, माया को जनि तुम तरसो ॥
इन्द्र-लोक तुम लेहु, होहु वैकुंठ के राजा ।
ताको हमरी ओर, तुम्हें हम बहुत निवाजा ॥
ऋद्धि सिद्धि तुम लेहु, मुक्ति तुम लेहु अघाई ।
तीन लोक में फिरै तुहो, ना आन दुहाई ॥
हम सब दाबहिं गोड़, फूलन की सेज बिछाई ।
मानो बचन हमार, तुम्हें है राम दुहाई ॥
बनियाँ हँसा ठठाइ, पलक को नाहिं उघारो ।
तुहरे बहुत भतार, रहिउ ना तुही कुआरो ॥
आगि लगै वैकुंठ, लौंडी है मुक्ति हमारो ।
इहाँ से होहु तू दूरि, माया तू भई अनारो ॥
हम जोगी बेकाम, खसम तुम खोजो
ब्रह्मा बिस्नु महेस, तुम्हारे लायक
हमरे सबद बिवेक, लगहि चूउर के
आवरहू। लै भागु पकरि, के
चली अपसरा हारि, जाय
ब्रह्मा बिस्नु महेस को, दै
अपसरा कहै पुकार,
बनियाँ डिगै को नाहिं,
अपना चाहो भला,
उलटि देइ वैकुंठ,
पलटूदास अपार,
करैं अपसरा

1.

मन

मन अन्दर बैठा हुआ बड़ा शक्तिशाली शत्रु है। यह माया के फेर में पड़ कर इन्द्रियों के भोगों की ओर दौड़ता है तथा मन के साथ बँधी आत्मा भी विवश होकर इसकी ओर खिंची चली जाती है। ज्यों ज्यों मन माया के प्रभाव में चलता है, कर्मों का बोझा बढ़ता जाता है। मन चर्म-वृत्ति वाला है तथा इसका झुकाव नीच कर्मों की ओर रहता है, माया के प्रभाव से मन और मलिन हो जाता है जिस के कारण वह गुणों को त्याग कर अवगुणों की ओर दौड़ता है : 'मन माया में मिल गया, मारा गया विवेक।'

सच्ची बहादुरी मन रूपी शक्तिशाली शत्रु को जीतने में या मारने में है। वही सच्चा बहादुर, जवान या शूरवीर है जो मन को काबू कर ले।

अहंकार के कारण मन फूल कर हाथी हो जाता है। माया के साथ मिल कर यह लोमड़ी की तरह चोर तथा चतुर बन जाता है। यह कौए की तरह सदा गन्दगी की ओर जाता है। यह इन्द्रियों के भोगों में लीन है। यह निडर होकर शेर की तरह मुँह-ज़ोर हो गया है तथा किसी को भी अपने बराबर नहीं समझता। मन को काबू किए बिना किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति कर सकना असम्भव है। पलटू साहिब समझाते हैं कि सच्चा मर्द, बहादुर या सूरमा वही है जो मन को वश में करता है। आप यह भी समझाते हैं कि इस मुँहज़ोर को वश में करने का एकमात्र साधन यही है कि पूर्ण सतगुरु से नाम का भेद लेकर अधिक से अधिक आध्यात्मिक अभ्यास किया जाए। इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न करते रहने से एक दिन मन वश में आ जाता

है तथा आतमा इसके पंजे से स्वतन्त्र होकर परमात्मा से मिलने के योग्य बन जाती है। यह काम सतगुरु की दया तथा निरन्तर प्रयत्न से ही हो सकता है :

मन हस्ती मन लोमड़ी, मनै काग मन सेर।
पलटुदास साची कहै, मन के इतने फेर॥

(भाग १, साखी १११)

*इहाँ उहाँ कुछ है नहीं अपने मन का फेर॥
अपने मन का फेर सक्ति सिव दूसर नाहीं।
माया से है अंत तेहि से बीचै माहीं॥
जब मैं इहवाँ रहा सोच उहवाँ की भारी।
उह बाँधा दे जाय कुदरत कुल रही हमारी॥
जोग किये का होय भंगि१ जो आवै नाहीं।
केतिन कोटिन जोग रहत हैं भंगै माहीं॥
पलटू पावै सहज में सतगुरु की है देर।
इहाँ उहाँ कुछ है नहीं अपने मन का फेर॥

(भाग १, कुंडली १२१)

**मन माया छोड़ै नहीं बझै आपु से जाय॥
बझै आपु से जाय गही ज्यों मरकट मूठी।
ज्यों नलनी का सुआ बात सब ऐसी झूठी॥
छोड़ै नाही आपु भरम में पड़ा गँवारा।

---

*लोक-परलोक, शिव-शक्ति आदि की अनेक प्रकार की द्वैत तब तक है, जब तक अज्ञानता का पर्दा दूर नहीं हुआ और परमेश्वर से मिलाप नहीं हुआ। जब उससे मिलाप होता है तो उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लगती।

१. मुक्ति

**मनुष्य स्वयं अज्ञानता के कारण अपने आप को माया का क़ैदी बनाता है। बन्दर ज़मीन में दबे लोटे में हाथ डाल कर मुट्ठी में अनाज भर लेता है। मुट्ठी बाहर नहीं निकलती और शिकारी उसको पकड़ लेता है। तोता भय के कारण नलिनी को नहीं छोड़ता और शिकारी के हाथ आ जाता है। यदि बन्दर मुट्ठी खोल कर दौड़ जाये और तोता नलिनी छोड़ कर उड़ जाये तो उनको कोई नहीं पकड़ सकता। इसी प्रकार यदि जीव माया का मोह त्याग दे तो वह मन-माया की क़ैद से सदा के लिये आज़ाद हो जाए।

खैंचि लेय जो हाथ कोऊ ना पकड़नहारा ॥
जिव लै बचै तो भागु भूलि गइ सब चतुराई ।
रोवन लागे पूत काल ने पकरा आई ॥
पलटु आसा बधिक है लालच बुरी बलाय ।
मन माया छोड़ै नहीं बझै आपु से जाय ॥
(भाग १, कुंडली १८९)

मन माया में मिलि गया मारा गया विवेक ॥
मारा गया विवेक चोर का पहरू भेदी ।
दोऊ की मति एक सहर में करैं अहेदी[1] ॥
[2]आँधर नगर के बीच भया धमधूसर राजा ।
[3]करै नीच सब काम चलै दस दिसि दरवाजा ॥
[4]अधरम आठो गाँठि न्याव बिनु धींगम सूदा ।
[5]टकनि दमारि गुलाम आप को भयो असूदा ॥
ज्ञानि बूझि कूआँ परै पलटू चलै न देख ।
मन माया में मिलि गया मारा गया विवेक ॥
(भाग १, कुंडली २२८)

[6]बनिया यह बानि ना छोड़ता है,
फिर फिर पसँगा मारता है ।
केतक बार तैं चोट खाया,
उस याद को फिर बिसारता है ॥
खारी के बीच में खाँड डारे,
दुरमति को नाहिं मिटावता है ।
पलटू केता समझाय देखा,
तिस पर भी नहीं सम्हारता है ॥
(भाग २, झूलना ३०)

---

१. लूटमार, २. जब शरीर रूपी शहर में मन रूपी निर्दयी राजा का राज्य हो जावे तो अन्धेरगर्दी तो मचती ही है, ३. मन शिवनेत्र से नीचे उतर कर शरीर के नौ द्वारों के द्वारा बुरे कर्म करता है, ४. मनमानी करता है और अधर्म फैलाता है, ५. एक टका-दमड़ी के लिये जान देता है, ६. मन की उपमा बनिये से की गई है। ऐसा बनिया जो आदत से लाचार है और बार-बार बेईमानी करता है।

[1]जानि बूझि के परै आप से भाड़ में ।
ता से काह बिसाय घुसी जो भार में ॥
पीटा गा बहु बार तनिक नहिं डेरत है ।
अरे हां पलटू मन भया चमार चमारी करत है ॥
(भाग २, अरिल ११९)

मनै को राज है एक तिहुँ लोक में,
तेहि के अमल में डंड लागै ।
[2]पांच मोसील मिलि लगे घर घर मंहे,
मारि औ पीटि के रोज मांगैं ॥
चोरी कै भीख लै देत हैं दंड[3] सब,
अमल तो एक फिर कहां भागै ।
दास पलटू कहै मच्यो अंधेर है,
बसै सतसंग यहि अमल त्यागै ॥
(भाग २, रेखता ७८)

जक्त की प्रीति को देखि लिया,
नाहक को लोग ठगात हैं जी ।
स्वारथ के हेतु से प्रीति करैं,
दौलत बेटा मँगात है जी ॥
लम्बी दंडवतैं आप करैं,
दगाबाज की प्रीति कहात है जी ।
पलटू इन से सम्हारि रहो,
तेरे मन को चोर लगात है जी ॥
(भाग २, झूलना १४)

काम क्रोध बसि किहा नींद अरु भूख को ।
लोभ मोह बसि किया दुक्ख औ सुक्ख को ॥

---

१. जो जान-बूझ कर भट्ठी में गिरता है और मार खा कर उसकी सहायता कौन करे ? २. तहसील, यहां संकेत काम, क्रोध, अहंकार पाँच विकारों से है, ३. टैक्स ।

पल में कोस हजार जाय वह डोलता ।
अरे हाँ पलटू वह ना लागा हाथ जौन यह बोलता ॥
(भाग २, अरिल ११७)

नापै चारिउ खूंट थहावै समुंद को ।
सब परवत को तौलि गनै बूंद को ॥
हारा सब संसार बात है फेर का ।
अरे हाँ पलटू [1]वह नहि लागै हाथ जो चालिस सेर का ॥
(भाग २, अरिल ११८)

*उसी सावज[2] को मारना जी,
न हाड़ न माँस न चाम स्वासा ।
पूंछ न पांव न मुख वा के,
उसी का सालन बनै खासा ॥
[3]मुरदा के मारे वह मरै
जीवत वधिक की नाहि आसा ।
पलटू जो सावज मारि खावै,
तिसी का आवागमन नासा ॥
(भाग २, झूलना २९)

सोई सिपाही मरद है, जग में पलटूदास ।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस ॥
(भाग ३, साखी ४३)

**सहज कूप में परै सहज रन जूझना ।
सहजै सिंह सिकार अगिन कै कूदना ॥

---

१. मन शेर की तरह है अर्थात् बहुत भारा है, परन्तु दिखाई नहीं देता ।

*जिसने मांस खाना हो, मन रूपी शिकार खाये । यह सूक्ष्म और बारीक है परन्तु इसकी सब्जी बहुत स्वादिष्ट बनती है । यह काम जीते-जी मरने की जाँच सिखाने से होता है ।

२. शिकार, ३. आशय है कि जो साधक 'जीवत मरे' वही मन को मार सकता है ।

**पलटू साहिब कहते हैं कि कुएँ, लड़ाई और आग में छलांग लगाना और शेर का शिकार करना सरल है परन्तु मन को मारना कठिन है । सच्चा सिपाही वह है जो मन को जीतता है ।

कितनी करै हियाव बात सब गर्द है।
अरे हाँ पलटू मन को राखै मार सिपाही मर्द है॥
(भाग २, अरिल १२०)

पलटू यह मन अधम है, चोरों में बड़ चोर।
गुन तजि औगुन गहतु है, तातें बड़ा कठोर॥
(भाग १, साखी ११६)

पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोये का भया, जो भीतर रहिगा दाग॥
(भाग १, साखी ७८)

मन को काबू में करने की सतत कोशिश करते रहना चाहिए। निरन्तर प्रयत्न से ही सफलता मिल सकती है :

*इधर से उधर तू जायगा किधर को,
जिधर तू जाय मैं उधर आवों।
कोस हज्जार तू जाय चलि पलक में,
ज्ञान की कुटी मैं उहँ छावों॥
सुमति जंजीर को गले में डारि कै,
जहाँ तू जाय मैं खींच लावों।
दास पलटू कहे मारिहों ठौर में,
जहाँ मैदान में पकरि पावों॥
(भाग २, रेखता ८०)

यह ठीक है कि मन जैसा कोई शत्रु तथा बाधाएँ डालने वाला है परन्तु इस जैसा कोई मित्र भी नहीं है। अगर इसको शब्द के जोड़ दें तो यह सांसारिक लोभ को त्याग कर शब्द के अभ्यास ीन हो जाता है। इस अवस्था में इसको अद्भुत आनन्द प्राप्त है तथा यह इसके रस में मस्त रहता है। पलटू साहिब फरमाते हैं हम पल-पल, क्षण-क्षण शब्द में मन को मस्त रखते हैं तो यह अन्दर

*पलटू साहिब मन को कहते हैं कि मैंने तुझे हर दशा में मार लेना है। यदि ार मील दूर दौड़ जायेगा तो मैं वहीं हो ज्ञान की कोठरी में तुझे बन्द कर लेना र सुमति की जंजीर तेरे गले में डाल देनी है।

के रस में मग्न होकर प्रत्येक प्रकार के छल छोड़ कर सच्चा गुरु-भक्त बन जाता है : 'पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन को पागै ।'

*मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम ॥
और मौज किहि काम मौज जो ऐसी आवै ।
आठो पहर अनन्द भजन में दिवस वितावै ॥
ज्ञान समुद्र के बीच उठत है लहर तरंगा ।
तिरबेनी के तीर सरसुती जमुना गंगा ॥
[1]संत सभा के मध्य सब्द की फड़ जब लागै ।
[2]पुलकि पुलकि गलतान प्रेम में मन को पागै ॥
पलटू रहै विवेक से छूटै नहि सतनाम ।
मन की मौज से मौज है और मौज किहि काम ॥

(भाग १, कुंडली १२५)

---

*इस कुंडली में बता रहे हैं कि मन उस समय वश में आता है जब सन्तों की संगति में आकर इसको अन्तर में शब्द से जोड़ा जावे । सुरत शब्द के अभ्यास से मन अन्दर दसम्-द्वार रूपी त्रिवेणी: मानसरोवर या अमृतसर में पहुँच कर पल-पल सच्चे प्रेम के रंग में रंगा रहता है । फिर वह सच्चे नाम में समा जाता है और इसकी सब मलिनता दूर हो जाती है ।

१. सन्तों की संगति में आकर शब्द की दुकान खोले, २. पल-पल शब्द में मस्त रहे और मन को शब्द की मीठी चाशनी चढ़ाए ।

निन्दक तथा दुष्ट

सन्तों ने निन्दा तथा निन्दकों की बहुत कड़ी आलोचना की है, परन्तु पलटू साहिब ने निन्दक को दुष्ट कहने के साथ-साथ परस्वार्थी भी कहा है। आप कहते हैं कि निन्दक अपना अकाज करता है, परन्तु जिसकी वह निन्दा करता है, उसका भला हो जाता है। निन्दक बिना साबुन के तथा मुफ़्त में दूसरों के कर्मों का मैल धोता है। आप कहते हैं कि 'सन्त भरोसा सदा बड़ा निंदक का करते' क्योंकि 'जो ये होते नाहीं भगत कहवा से तरते'। आप कहते हैं कि निन्दक मेरा मुफ़्त का धोबी था तथा जब मुझे पता लगा कि मेरा निन्दक मर गया है तो मुझे बहुत दुःख हुआ।

पलटू साहिब कहते हैं कि निन्दक सन्तों की प्रसिद्धि करने वाला ढिंढोरची है : 'संत रतन की कोठरी कुंजी दुष्टन हाथ।' सन्त गुप्त होते हैं परन्तु निन्दक उनकी निन्दा करके, उनको संसार में प्रकट कर देते हैं।

परन्तु सन्तों की निन्दा से बचना चाहिए क्योंकि 'संत की निंद में नहीं भला'। सन्त की निन्दा करने वाले जीव का अकाज होता है, उसके पापों का बोझ बढ़ता है तथा उसको नरकों तथा चौरासी की मार खानी पड़ती है।

सन्त की निन्दा न करनी चाहिए न सुननी ही चाहिए। जहाँ सन्तों की निन्दा हो, वहाँ से कन्नी-काट लो, बच कर निकल जाओ। सन्तों की निन्दा करने वाला भले प्रिय मित्र क्यों न हो, उसको दुष्ट तथा शत्रु समझ कर उसका साथ त्याग देना चाहिए :

निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय ॥
काम हमारा होय बिना कौड़ी को चाकर ।
कमर बाँधि के फिरै करै तिहुँ लोक उजागर ॥
उसे हमारी सोच पलक भर नाहि बिसारी ।
लगी रहै दिन रात प्रेम से देता गारी ॥
संत कहैं दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै ।
निन्दक गुरू[1] हमार नाम से वही मिलावै ॥
सुनि के निन्दक मरि गया पलटू दिया है रोय ।
निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय ॥

(भाग १, कुंडली २२०)

देखि निन्दक कंहै करौं परनाम मैं,
धन्य महराज तुम भक्ति धोया ।
किहा निस्तार तुम आइ संसार में,
भक्त कै मैल बिन दाम खोया ॥
भयो परसिद्ध परताप से आप के,
सकल संसार तुम सुजस बोया ।
दास पलटू कहै निन्दक के मुए से,
भया अकाज मैं बहुत रोया ॥

(भाग २, रेखता ८८)

निन्दक रहै जो कुसल से हम को जोखों नाहिं ॥
हम को जोखों नाहिं गांठि को साबुन लावै ।
खरचै अपनो दाम हमारी मैल छुड़ावै ॥
तन मन धन सब देहि संत की निन्दा कारन ।
लेहिं संत तेहि तार बड़े वे [2]अधम-उधारन ॥
संत भरोसा बड़ा सदा निन्दक का करते ।
निन्दक की अति प्रीति भाव दूसर नहिं धरते ॥

---

१. पूजने योग्य, २. पापियों को पार करने वाला ।

पलटू वे परस्वारथी निन्दक नर्क न जाहिं ।
निन्दक रहे जो कुसल से हम को ओस्रो नाहिं ॥
(भाग १, कुंडली २२१)

और को मैं नहिं जानत हों,
निंदक साहिब मेरा है जी ।
जिन्ह ने मेरी नजात[1] किया,
करौं कदम में डेरा है जी ॥
धोबी होय करि साफ करै,
ऐसा गुरु हम हेरा है जी ।
पलटू उन्हें दंडौत करै,
वोही साहब हम चेरा है जी ॥
(भाग २, सुलना १०)

निन्दक है परस्वारथी करै भक्त का काम ॥
करै भक्त का काम जगत में निन्दा करते ।
जो वे होते नाहिं भक्त कहवां से तरते ॥
आप नरक में जाहिं भक्त का करैं निबेरा ।
फिर भक्तन के हेतु करै चौरासी फेरा ॥
करै भक्त की सोच उन्हें कछु और न भावै ।
देखो उनकी प्रीति लगन जब ऐसी लावै ॥
पलटू धोबी अब मिल्यो धोवत है बिनु दाम ।
निंदक है परस्वारथी करै भक्त का काम ॥
(भाग १, कुंडली ...)

अधम अधमई ना तजै, हरदी[2] तजै न रंग ।
कहता पलटूदास है, (चहै) कोटि करै सतसंग ॥
(भाग ३, साखी १२५)

संत रतन की कोठरी कुन्जी दुष्टन हाथ ॥
कुन्जी दुष्टन हाथ अटकि के खोलहिं भाई ।
संत भये परसिद्ध परभुता नाम दिखाई ॥

---

१. उद्धार, मुक्ति, २ हल्दी।

चकमक भये हैं दुष्ट संत जन जैसे पथरी ।
हरि की प्रभुता आगि प्रगट ह्वै वा से निकरी ॥
आगि देखि सब डेरे[1] जगत में भय तब व्यापी ।
दुष्टन के परताप वस्तु परगट भई ढाँपी ॥
पलटू परदा खुलि गया सबै नवावैं माथ ।
संत रतन की कोठरी कुन्जी दुष्टन हाथ ॥

(भाग १, कुंडली १९८)

अपकारी जिव जाहिंगे पलटू अपने आप ॥
पलटू अपने आप संत का सरल सुभाऊ ।
सब को मानहिं भला नाहिं कछु करहिं दुराऊ ॥
लाख दुष्ट जो होइ भला तेहू का मानैं ।
आपन ऐसा जीव संत जन सब का जानैं ॥
अपनी करनी जाय होय जो निंदक कोई ।
आन को गड़हा खनै परैगा आपुहि सोई ॥
जब देखै वह संत को तब चढ़ि आवै ताप ।
अपकारी जिव जाहिंगे पलटू अपने आप ॥

(भाग १, कुंडली १९६)

संतन की निंद न कीजिये जी,
संतन की निंद में नाहिं भला ।
चौरासी भोग वह भोगि आया,
चौरासी भोगन फेरि चला ॥
संतन को कुछ परवाह नहीं,
अपने पाप सेती वह आप जला ।
पलटू उस का जो मुंह देखै,
तिस का भी मुंह फिर होय काला ॥

(भाग २, झूलना ६१)

---

१. डरे ।

संत को निन्दा को करत जो देखिये,
कान को मूंदि लै पाप लागै।
पाप के लगे से नरक में जायगा,
त्राहि कै त्राहि कै दूरि भागै॥
मित्र जो होय तो दुष्ट सम जानिये,
संत की निन्दा सुनि दूरि त्यागै।
दास पलटू कहै करै औ सुनै जो,
नरक के बीच में भोग्य मांगै॥

(भाग २, रेखता ८७)

जीव-हिंसा तथा माँस से परहेज

पलटू साहिब ने हमें जीव-हत्या के भयानक परिणामों से सावधान किया है। आप कहते हैं कि जिन मुसलमानों का यह विचार है कि नबी अर्थात हज़रत मुहम्मद ने जीव-हत्या तथा माँस खाने की आज्ञा दी है, वे बड़े भारी धोखे के शिकार हैं। किसी हालत में जीव-हत्या नहीं करनी चाहिए तथा प्रत्येक अवस्था में माँस खाने से परहेज़ करना चाहिए।

पलटू साहिब कहते हैं कि लोग माँस जिह्वा के स्वाद के लिए खाते हैं और माँस खाने की तरफ़दारी में कई दलीलें देते हैं। आप पूछते हैं कि सब जीवों में एक प्रभु का प्रकाश है। फिर किसी भी जीव को मारना, खाना या उसकी बलि चढ़ाना उचित कैसे हो सकता है? ऐसा करना अपने आप को घोर पाप का भागी बनाना है :

[1]लहम कुल्लहुम जिसिम का नबी किया फर्मूद ॥
नबी किया फर्मूद हदीस की आयत माहीं।
सब में एकै जान और कोउ दूजा नाहीं ॥
खून गोस्त है एक मौलवी जिबह न छाजै[2]।
सब में रोसन हुआ नबी का नूर बिराजै ॥
क्यों खेंचे तू रूह[3] गुनहगारी में पड़ना।
[4]बुज़रुग के फर्मूद बमोजिब नाहीं डरना ॥
पलटू [5]जो बेदरदी सो काफ़िर मरदूद।
लहम कुल्लहुम जिसिम का नबी किया फर्मूद ॥

(भाग १, कुण्डली २१५)

---

१. हज़रत मुहम्मद ने हदीस में फ़रमाया है कि जीव-हत्या उचित नहीं है, २. शोभा नहीं देता, ३. जान, ४. हज़रत मुहम्मद, ५. निर्दयी व्यक्ति काफ़िर और पापी है।

गरदन मारैं खसम की [1]लगवारन के हेत ॥
लगवारन के हेत पसू और भेड़ा मारैं।
पूजैं दुरगा देव देवखरी[2] सिर दै मारैं ॥
माटी देवखरि बाँधि मुए को पूजा नावैं।
जीवत जिउ को मारि आनि कै ताहि चढ़ावैं ॥
सब में है भगवान और न दूजा कोई।
तेकर यह गति करैं भला कहवाँ से होई ॥
पलटू जिउ को मारि कै वन[3] देवतन को देत।
गरदन मारैं खसम की लगवारन के हेत ॥

(भाग १, कुंडली २१६)

रहते रोजा नित्त साँझ कै मुरगी मारैं।
[4]आठों वक्त निमाज गाय की कुहा निहारैं ॥
सब में रहे खुदाय गले में छूरी देता।
अरे हाँ पलटू जाया चाहै भिस्त[5] खून गरदन पर लेता ॥

(भाग २, अरिल १४२)

मुसलमान के जिबह हिन्दू के मारैं झटका।
गाइ दूनो मुरदार फिरत है दुनिउँ भटका ॥
वै पूरब को जाहिं पछिम वै ताकते।
अरे हाँ पलटू महजिद[6] देवल[7] जाय दोऊ सिर मारते ॥

(भाग २, अरिल १४१)

---

१. विषयों की पूर्ति के लिये, २ मन्दिर, ३ बलि, ४. आठ बार नि[illegible] है परन्तु गाय को काटना चाहता है, ५. स्वर्ग, ६. मस्जिद, ७. मन्दिर

भक्ति, प्रेम और विरह

पूर्ण सन्तों ने जप-तप, पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत, हठ कर्म तथा त्याग दि को नहीं अपितु सच्चे प्रेम तथा सच्ची भक्ति को परमात्मा की प्ति का सच्चा साधन माना है। पलटू साहिब की वाणी में भी प्रभु सच्चे प्रेम तथा सच्ची भक्ति पर बहुत बल दिया गया है। भक्ति तथा प्रेम में कोई मूल अन्तर नहीं है। तीव्र भक्ति ही प्रेम है और प्रियतम से बिछुड़ने की तड़प विरह कहलाती है।

पलटू साहिब ने यह विचार प्रकट किया है कि उस परमेश्वर के दरबार में केवल भक्ति तथा प्रेम का आदर है, वहाँ जाति-पाति की कोई पूछ-ताछ नहीं। जो कोई, किसी भी अवस्था में हरि की भक्ति करता है, वह हरि का रूप हो जाता है। पलटू साहिब इतिहास में से कई उदाहरण देते हैं कि भीलनी, सुपच, रविदास तथा सदना आदि नीच समझी जाने वाली जाति में हुए परन्तु प्रभु-भक्ति के द्वारा उनको ऊँची से ऊँची पदवी प्राप्त हो गई। 'उनसे बड़ा न कोई, और सब उनसे नीचे।'

पलटू साहिब कहते हैं कि प्रभु की भक्ति ही संसार की एकमात्र सच्ची वस्तु है, शेष सब कुछ झूठ या निःसार है: 'एक भक्ति मैं जानों और झूठ सब बात।' इसलिए मैं उस पर बलिहार जाता हूँ जो सच्चे दिल से परमात्मा की भजन-बन्दगी करता है।

पलटू साहिब ने परमात्मा तथा सतगुरु में कोई भेद नहीं माना सतगुरु कुल-मालिक का ही प्रत्यक्ष रूप है। सतगुरु से सच्ची प्री करनी चाहिए क्योंकि यही परमात्मा की सच्ची भक्ति है: 'सतगु से साची कीजे प्रीत।' पलटू साहिब कहते हैं कि मेरी यह अवस्था

कि सतगुरु के शब्द सुनते ही मुझे अपनी सुध-बुध नहीं रहती, 'सतगुरु के शब्द सुनते ही तनि की सुधि रहि जात।'

आत्मा स्त्री है तथा परमात्मा उसका पति है। आत्मा के अन्दर सदा अपने प्रियतम को मिलने की तड़प लगी रहती है। आत्मा उस प्रियतम से मिलाप करने के लिए विह्वल है: 'साहिब के घर आवौंगी।' सतगुरु गुप्त प्रभु का साक्षात रूप हैं। इसलिए पलटू साहिब कहते हैं कि मैंने गुरु से सच्चा प्रेम कर लिया है तथा मैं उसको प्रसन्न करने या रिझाने का पूरा प्रयत्न कर रहा हूँ: 'लगी गुरु से डोरि मगन ह्वै ताहि रिझावौं।' एक प्रेमी आत्मा के नाते आप कहते हैं कि मैं उस प्रियतम को प्यार की डोरी से बांध कर एक दिन अपने घर ले आऊंगा। मुझे लोक-लाज की कोई परवाह नहीं तथा मैं प्रत्येक अवस्था मे सतगुरु के प्रेम में मस्त रहता हूँ:

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी।
[1]तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी॥
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई।
[2]खाये सेवरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा।
[3]मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा॥
पलटू ऊँची जाति को जनि कोउ करै हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥
(भाग १, कुंडली २१८)

---

१ श्री कृष्णजी ने राजा दुर्योधन का छप्पन प्रकार का भोजन त्याग कर विदुर भक्त का साग (सात्विक भोजन) बड़ी रुचि से खाया था, २. श्री रामचन्द्रजी ने भिलनी के कुतरे हुए जूठे बेर बड़े चाव से खाकर अहंकारी ऋषियों और मुनियों का अहंकार तोड़ा, ३. युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया, परन्तु यज्ञ की सफलता स्वरूप आकाश में घंटा नहीं बजा। आकाश में घंटा तभी बजा जब नीच जाति के भक्त सुपच ने युधिष्ठिर के यहां भोजन किया।

हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय ॥
जाति न पूछै कोय हरि को भक्ति पियारी ।
जो कोइ करै सो बड़ा जाति हरि नाहिं निहारी ॥
बधिक अजामिल रहे रहे फिर सदन कसाई ।
गानिक बिस्वा रही बिमान पै तुरत चढ़ाई ॥
नीच जाति रैदास आप में लिया मिलाई ।
लिया गिद्ध को गोदि दिया बैकुंठ पठाई ॥
पलटू पारस के छुए लोह कंचन होय ।
हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछै कोय ॥

(भाग १, कुंडली २१७)

गनिका गिद्ध अजामिल सदना औ रैदास ॥
सदना औ रैदास भली इनकी बनि आई ।
निसु दिन रहैं हजूर भक्ति कीन्ही अधिकाई ॥
जाति न उत्तम येह इन्हें सम और न कोई ।
ब्रह्मा कोटि कुलीन नीच अब कहिये सोई ॥
उनसे बड़ा न कोय और सब उनके नीचे ।
उन्हैं बराबर नहीं कोऊ तिर्लोक के बीचे ॥
अविनासी को गोद में पलटू करै बिलास ।
गनिका गिद्ध अजामिल सदना औ रैदास ॥

(भाग १, कुंडली २१९)

मैं बलिहारी जाउँ जेहि मुख, हरि जस उचरै ॥
जातिन नीच होय फिर कुष्टी, सरवरि[1] करै न कोई ।
कोटि कुलीन होय ब्रह्म सम, ता सम तुलै न कोई ॥
जेकँह सिव सनकादिक खोजैं, सुर मुनि ध्यान लगावैं ।
सो हरि उनके पीछे पीछे, संख चक्र लिये धावैं ॥
कोटिन तीरथ उनके चरनन, मुक्ति है उनकी चेरी ।
[2]पहुँचत हैं बैकुंठ सोई, पद रज जै जै केरी ॥

---

१. बराबरी, २. जो उनकी चरण-धूलि बनता है, परम धाम पहुँच जाता है।

जो सुख हरि घर दुर्लभ देखा, सो उनके घर माहीं।
पलटू दास संत घर हरि हैं, हरि के घर अब नाहीं ॥
(भाग ३, शब्द १८८)

एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ॥
और झूठ सब बात करैं हठजोग अनारी।
ब्रह्म दोष वो लेय काया को राखैं जारी ॥
प्रान करैं आयाम कोई फिर मुद्रा साधैं।
धोती नेती करैं कोई लैं स्वासा बाँधैं ॥
उनमुनि लावैं ध्यान करैं चौरासी आसन।
कोई साखी सबद कोइ तप कुस के डासन ॥
पलटू सब परपंच है करैं सो फिर पछितात।
एक भक्ति मैं जानौं और झूठ सब बात ॥
(भाग १, कुंडली ५६)

भक्ति बीज जब बोवै निस दिन करै बिवेक ॥
निस दिन करै बिवेक लागि तब निकरन साखा।
डार पात बहु फूल जतन से जिन ने राखा ॥
हरि चरचा से सींचि ज्ञान का बाँधै बेड़ा।
पहुंचै सोर पाताल ख्यात संतन के नेड़ा ॥
सोभित बृच्छ बिसाल[1] मीठ फल लटकन लागै।
बिस्वास सोई रखवार बैठि कै पहरा जागै ॥
पलटू यहि बिधि जोगवै उपजै ज्ञान बिसेख।
भक्ति बीज जब बोवै निस दिन करै बिवेक ॥
(भाग १, कुंडली १८५)

कौन भक्ति तोरी करौं राम मैं, कौन भक्ति तोरी करौं।
तुझ मे मैं तूही है मुझमें, कौन ध्यान लै धरौं ॥
मरौं नहीं मारे काहू के, नाहिं जराये जरौं।
कैसन पाप पुन्न है कैसन, सरग नरक नहि डरौं ॥

---

1. विशाल।

तीरथ वर्त ध्यान नहिं पूजा, विना परिस्रम[१] तरौं।
पलटू कहै सुनो भाइ साधो, संत चरन सिर धरौं॥
(भाग ३, शब्द १८९)

जिस प्रकार कम्बल ज्यों-ज्यों भीगता है, मोटा तथा भारी होता जाता है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों जीवात्मा भक्ति करती है तथा प्रेम में मग्न रहती है, भक्ति तथा प्रेम में वृद्धि होती जाती है :

ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई[२] होय॥
त्यों त्यों गरुई होय सुने संतन की बानी।
ठोपै ठोप अघाय ज्ञान के सागर पानी॥
रस रस बाढ़ै प्रीति दिनों दिन लागन[३] लागी।
लगत लगत लगि जाय भरम अपुइ से भागी॥
रस रस चलै सो जाय गिरै जो आतुर[४] धावै।
तिल तिल लागै रंग भंगि[५] तब सहजै आवै॥
भक्ति पोढ़ पलटू करै धीरज धरै जो कोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय॥
(भाग १, कुंडली १३५)

जब प्रेम ही प्रियतम से मिलाप तथा सच्चे सुख का साधन है तो लोक-लाज को त्याग कर सदा प्रभु के प्रेम में मस्त रहना चाहिए। पलटू साहिब समझाते हैं कि जब हमारा नाता अपने प्रियतम से है तो हमें दुनिया की क्या चिन्ता है, क्या परवाह है? आप कई उदाहरण देकर समझाते हैं कि लोक-लाज हमारे मार्ग में बड़ी बाधा है। तन-मन की प्रत्येक प्रकार की लज्जा छोड़कर अपना सिर सतगुरु के चरण-कमलों पर रख देना चाहिए तथा कभी सतगुरु के प्रेम का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए :

अपने पिय की सुन्दरी लोग कहैं बौरान[६]॥
लोग कहैं बौरान काहि की पकरौं बानी।

---

१. परिश्रम, २. भारी, ३. लगन, ४. जल्दी, शीघ्र, ५. युक्ति, ६. पागल।

घर घर घोर मथान फिरौं मैं नाम दिवानी ॥
घूंघट डारेउँ खोलि ज्ञान के ढोल बजाई ।
चढ़िउँ बांस पर धाइ सहर के बिच गड़ाई ॥
देखि देखि सब चिढ़ै लोग मैं अधिक चिढ़ावो ।
लगी गुरु से डोरि मगन ह्वै ताहि रिझावों ॥
पलटू हमरे देस की जानैं संत सुजान ।
अपने पिय की सुन्दरी लोग कहैं बौरान ॥

(भाग १, कुंडली ९८)

नाचना नाचु तो खोलि घूंघट कहै,
खोलि के नाचु संसार देखै ।
खसम रिझाव तो ओट को छोड़ि दे,
भर्म संसार को दूरि फेंकै ॥
लाज किसकी करै खसम से काम है,
नाचु भरि पेट फिर कौन छेकै ।
दास पलटू कहै तुहीं सोहागिनी,
सोव सुख सेज तू खसम एकै ॥

(भाग २, रेखता ५२)

लोक लाज कुल छाड़ि कै करि लो अपना काम ॥
करि लो अपना काम सोच मोहि वा दिन केरी ।
जेहि से कौल करार कौल से आपन हेरी ॥
[1]कीन्हीं भक्ति करार जन्म तब मानुष पायो ।
मोकहँ है सो चेत गर्भ के बिच करि आयो ॥
ओंधे बारान महँ नीर जिन्ह लिया उबारी ।
तेकहँ तजि कै रही कुसल का होय तुम्हारी ॥
जगत हँसे तो हँसन दे पलटू हँसे न राम ।
लोक लाज कुल छाड़ि कै करि लो अपना काम ॥

(भाग १, कुंडली १११)

---

१. जब तू माता के पेट में उल्टा लटका हुआ था तो वायदा किया था कि हे प्रभु ! मुझे इस नरक में से निकाल, मैं पल-पल तेरी भक्ति करूंगा।

तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौं निर्धार ।।
भक्ति करौं निर्धार लोक की लाज न मानौं ।
देव पितर मुख खाक डारि इक गुरु को जानौं ।।
तजि दो कुल की रीति खोलि घूँघट को नाचौं ।
[1]बेद पुरान मत काच काछनी काछौं साचौं ।।
सुभ असुभ दोउ काटु पाँव की अपने बेरी ।
निसि दिन रहौं अनन्द कोऊ का करिहै तेरी ।।
पलटू सतगुरु चरन पर डारि देहु सिर भार ।
तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौं निर्धार ।।

(भाग १, कुंडली १३२)

लगन जिसी से लागि रही,
काज उसी से सरा है जी ।
सब लोक की लाज को तोरि डारे,
उसी के घर करो डेरा है जी ।।
मेरे मन में कुछ डेर नाहीं,
हँसेगा लोग बहुतेरा है जी ।
पलटू घूँघट को खोलि डारो,
समरथ सतगुरु का चेरा[2] है जी ।।

(भाग २, झूलना २५)

साहिब से परदा का कीजै । भरि भरि नैन निरिख लीजै ।।
नाचै चली घूँघट क्यों काढ़ै । मुख से अंचल टारि दीजै ।।
सती होय का सगुन बिचारै । [3]कहि कै माहुर क्या पीजै ।।
लोक बेद तन मन की डेर है । प्रेम रंग में क्या भीजै ।।
पलटूदास होय मरजीवा[4] । लेहि रतन नहि तन छीजै ।।

(भाग ३, शब्द ७६)

---

१. वेदों-पुराणों का मत कच्चा है, आप नाम के सच्चे मार्ग पर चलें, २. चेला, शिष्य, ३. जिसने विष पीना होता है, वह किसी को बताकर नहीं पीता, चुपचाप पीता है, ४. समुद्र में गोता लगा कर मोती निकालने वाला, भाव जीते-जी मरने वाला और मर कर जीवित होने वाला ।

लोक लाज नहिं मानिहौ तन मन लज्जा खोय ॥
तन मन लज्जा खोय छोड़ि कै मान बड़ाई ।
जाति बरन कुल खोय पड़ौगे भरन में जाई ॥
नाम कोऊ जो हँसे जगत की लाज न मानौ ।
ज्यों हिन्दू त्यों तुरुक सकल घट साहिब जानौ ॥
नाचौ घूंघट खोलि ज्ञान को ढोल बजाओ ।
काटौ जम की फाँस भरम को दूर बहाओ ॥
पलटू बरिहौ[1] नाम को होनी होय सो होय ।
लोक लाज नहिं मानिहौ तन मन लज्जा खोय ॥
(भाग १, कुण्डली १३३)

घूंघट को पट खोलौंगी । जोगिन ह्वै के डोलौंगी[2] ॥
लोक लाज कुल कानि छोड़ि कै । हँसि हँसि बातें बोलौंगी ॥
का रिसियाइ करै कोइ मेरा । जग में नाता तोरौंगी ॥
ज्ञान कि ढोल बजाय रैन दिन । [3]गगन खखाना फोरौंगी ॥
पलटूदास भई मतवारी । प्रेम पियाला घोरौंगी ॥
(भाग ३, शब्द ८६)

प्रेम करना कोई मौसी का घर नहीं है । सच्ची प्रेमिका वही है जो प्रियतम के लिए अपने हाथों से अपना सिर काट कर अपने प्यारे के आगे नाच सकती है । इसका भाव यह है कि सच्चे प्रेम के लिए अहंबुद्धि, हौमैं या स्वय का त्याग करना तथा पूरी तरह से प्रियतम की रज़ा में आ जाना आवश्यक है

सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं ॥
सहज आसिकी नाहिं खांड़ खाने को नाहीं ।
झूठ आसिकी करै मुलुक में जूती खाहीं ॥
जीते जी मरि जाय करै ना तन की आसा ।
आसिक को दिन रात रहै सूली पर बासा ॥

१. नाम का वरण करूँगी, नाम से विवाह रचाऊँगी. २ नाचूंगी. ३ आकाश की खिड़की खोलूंगी अर्थात् ब्रह्म के दसवें द्वारों में जाऊँगी ।

मान बड़ाई खोय नींद भर नाहीं सोना ।
तिल भर रक्त न माँस नहीं आसिक को रोना ॥
पलटू बड़े बेकूफ वे आसिक होने जाहि ।
सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहि ॥
(भाग १. कुंडली ६४)

कफन को बाँधि कै करै तब आसिकी,
आसिक जब होय तब नाहि सोवै ।
चिता बिनु आगि के जरै दिन राति जब,
जीवत ही जान से मती होवै ॥
भूख पियास जग आस को छोड़ करि,
आपनो आपु मे आप खोवै ।
दास पलटू कहै इसक मैदान पर,
देइ जब सीस तब नाहि रोवै ॥
(भाग २. रेखता २९)

कडुवा प्याला नाम पिया सो ना जरै ।
देखा देखी पिवै ज्वान सो भी मरै ॥
धर पर सीस न होय उतारै भुइँ धरै ।
अरे हाँ पलटू छोड़ै तन की आस मरग पर घर करै ॥
(भाग २. अरिल ५८

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि ॥
खाला का घर नाहि सीस जब धरै उतारी ।
हाथ पाँव कटि जाय करै ना संत करारी[1] ॥
ज्यों ज्यों लागै घाव तेहूँ तेहूँ कदम चलावै ।
सूरा रन पर जाय बहुरि ना जियता आवै ॥
पलटू ऐसे घर महँ बड़े मरद जे जाहि ।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि ॥
(भाग १, कुंड

---

1. शोर न करना, हाय-हाय नहीं करना ।

सिर पर कफ़नी बाँधि कै, आसिक कबर खोदाय।
पलटू मेरे घर महैं, तब कोउ राखै पाँव॥
(भाग ३, साखी ४४)

खाला के घर नाहि भक्ति है राम की।
दाल भात है नाहि खाये के काम की॥
साहिब का घर दूर सहज ना जानिये।
अरे हाँ पलटू गिरे तो चकनाचूर बचन को मानिये॥
(भाग २, अरिल ४२)

पलटू का घर अगम है, कोऊ न पावै पार।
जेकरे बड़ी पियास है, सिर को धरैं उतार॥
(भाग ३, साखी १०१)

पहिले संसार मे तोरि आवै,
तब बात पिया की पूछिये जी।
[1]तरवार दुइ ठो है म्यान एकै,
किस भाँति से वा में कीजिये जी॥
मीठे प्याले को दूर करो,
कड़ूए[2] प्रेम पियाला पीजिये जी।
पलटू जब सीस उतारि धरै,
तब राह पिया की लीजिये जी॥
(भाग २, झूलना २७)

आसिक इसक पर जो भये,
वे नहिं चाहैं करामात है जी।
उनको मोरसार नहीं भावै,
वे मस्त रहैं दिन रात है जी॥
नहिं भूख लागै नहि नींद आवै,
नहिं पीवत हैं नहि खात हैं जी।

---

१. दो तलवारें—एक परमात्मा के प्यार की और दूसरी संसार के प्यार की एक म्यान में नहीं समा सकती. २ प्रेम का कड़वा प्याला पियो।

पलटू हम बूझि विचारि देखा,
वहाँ साहिब की जाति है जी ॥
(भाग २, झूलना ११)

पलटू साहिब ने विरह के दर्दनाक चित्र खींचे हैं। आप कहते हैं कि मुझे प्रियतम की जुदाई ने जला कर राख कर दिया है। मैं प्रियतम का मार्ग बताने वाले सतगुरु के हाथ बिक गई हूँ। प्रीति का मार्ग कठिन था और मैं इसमें कमली, बाँवरी हो गई परन्तु मुझे इसका लाभ भी बहुत हुआ। अब मेरी ज्योति उस परम ज्योति में मिल गई है तथा मैं सच्ची सुहागिन बन गई हूँ :

*मेरे तन तन लग गई पिय की मीठी बोल ॥
पिय की मीठी बोल सुनत मैं भई दीवानी ।
¹भँवर गुफा के बीच उठत है सोहं बानी ॥
देखा पिय का रूप रूप में जाय समानी ।
जब से भया मिलाप मिले पर ना अलगानी ॥
प्रीत पुरानी रही लिया हमने पहिचानी ॥
मिली जोत में जोत सुहागिन सुरत समानी ।
पलटू सब्द के सुनत ही घूंघट डारा खोल ॥
मेरे तन तन लग गई पिय की मीठी बोल ॥
(भाग १, कुण्डली ५१)

प्रेम दीवाना मन यार, गुरु के हाथ बिकाना ॥
निसु दिन लहर उठत अभि अंतर, बिसरा पियना खाना ॥
गगन गुफा में कुंज गली है, तेहि में जाइ समाना ॥
सहस कमल दल मानसरोवर, तेहि बिच भँवर लुभाना ॥
पलटूदास असल बिन् असलो, आठ पहर मस्ताना ॥
(भाग ३, शब्द ६१)

*इस कुण्डली से पता लगता है कि पूर्ण सन्त शब्द की कमाई या शब्द के प्यार को ही प्रभु का प्यार कहते हैं। सुरत का शब्द में लीन होना ही सच्चा प्रेम है।

१. सचखण्ड से पहला रूहानी मंडल।

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग ।
टूक टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥

(भाग १, साखी २४)

मगन भई मेरी माइजी जब से पाया कंथ[1] ॥
जब से पाया कंथ पंथ सतगुरु बतलाया ।
सतगुरु बड़े दयाल करी उन मो पर दाया ॥
[2]स्वस्ता मन में आइ छुटी मेरी दुबिताई ।
सोऊँ कंथ के साथ अंग से अंग लगाई ॥
[3]अभ्यंतर जागी प्रीत निरन्तर कंथ से लागी ।
दरस परस के करत जगत की भ्रमना भागी ॥
[4]पलटू सतगुरु सब्द सुनि हृदय खुला है ग्रंथ ।
मगन भई मेरी माइजी जब से पाया कंथ ॥

(भाग १, कुंडली ६१)

साहिब के घर बिच जावोंगी । जावोंगी सुख पावोंगी ॥
प्रेम भभूत लगाय कै सजनी । संतन कंहै रिझावोंगी ॥
अचरा फारि करों मैं कफनी । सेल्ही सुरति बनावोंगी ॥
धूनी ध्यान अकास में दैहों । नाम को अमल चढ़ावोंगी ॥
पलटूदास मारि कै गोता । भक्ति अभय लै आवोंगी ॥

(भाग १, शब्द १६)

पलटू प्रेमी नाम के, सो तो उतरे पार ।
कामी क्रोधी लालची, बूड़ि मुए मँझदार ॥

(भाग १, साखी १२७)

[5]पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय ॥
आपुइ गई हिराय कवन अब कहै सँदेसा ।
[6]जेकर पिय में ध्यान भई वह पिय के भेसा ॥

१. कन्त, स्वामी, २. शान्ति, ३. अन्तर में, ४. शब्द की कमाई से जड़ व चेतन की गाठ खुल गई है, ५. प्रियतम को ढूंढने गई, मैं स्वयं खो गई, ६. जो पिया का ध्यान करती है, पिया में समा कर पिया का रूप हो जाती है।

आगि माहिं जो परै सोऊ अग्नी ह्वै जावै।
भृङ्गी कीट को भेंट आपु सम लेइ बनावै॥
[1]सरिता वहि के गई सिंधु में रही समाई।
सिव सक्ति के मिले नहीं फिर सक्ती आई॥
पलटू दिवाल कहकहा[2] मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली आपुइ गई हिराय॥
(भाग १, कुंडली ३०)

सतगुरु को घर लै आवोंगी। फूलन सेज बिछावोंगी॥
सरगुन दरि कै दाल घनैहौं। निरगुन भात रिन्हावोंगी।
प्रेम प्रीती कै चौक पुरैहौं। सब्द कै कलस धरावोंगी॥
रतन जड़त की चौकी पर लै। सतगुरु को बैठावोंगी।
ज्ञान कै थार सुमति कै झारी। सतगुरु कँह जेंवावोंगी॥
तत्तु गारि कै अतर लगावों। त्रिकुटी मँह पौढ़ावोंगी।
पलटूदास सोवन लगे सतगुरु। सुखमन बेनियाँ डोलावोंगी॥
(भाग ३, शब्द ५५)

गगन में मगन है मगन में लगन है,
लगन के बीच में प्रेम पागै।
प्रेम में ज्ञान है ज्ञान में ध्यान है,
ध्यान के धरे से तत्त जागै॥
तत्त के जगे से लगै हरि नाम में,
पगै हरि नाम सतसंग लागै।
दास पलटू कहै भक्ति अविरल मिलै,
रहै निसंक जब भर्म भागै॥
(भाग २, रे...

भूली जग की चाल सब भई जोगिनि अलमस्त॥
भई जोगिनि अलमस्त खबर कछु तन की नाहीं।
खाय पिये अब कौन रहै मन भजनै माहीं॥

---

१. नदी, २. देखिए पाद टिप्पणी पृ. ४३।

ऐसी लागी नेह तुरिया से भई अतीता ।
आठ पहर गलतान जोति के घर को जीता ॥
रहि[1] गई दसा अरूढ़ ज्ञान तजि भई विज्ञानी ॥
धरती नभ जरि गई जरा है पवन औ पानी ॥
पलटू दिनकर उदय भा रजनी ह्वै गई अस्त ।
भूली जग की चाल सब भई जोगिनि अलमस्त ॥

(भाग १, कुंडली ६२)

पिया है प्रेम का प्याला । हुआ मन मस्त मतवाला ॥
भया दिल होससे भाई । बेहोसी जगत बिसराई ॥
रबिंद[2] में नाद का मेला । उलटि के खेल यह खेला ॥
जोग तजि जुक्ति को पाई । जुक्ति तजि रूप दरसाई ॥
रूप तजि आपु को देखा । आपु में पवन की रेखा ॥
उसी की गिरह संसारा । पलटूदास है न्यारा ॥

(भाग २, शब्द ५२)

पलटू साहिब सच्चे प्रेमी का सती से मुकाबला करते हैं । आप कहते हैं कि सच्ची सती पति के साथ जल जाती है । आप संकेत करते हैं कि इसी प्रकार सच्चा प्रभु-भक्त अपना ध्यान संसार तथा इसके सब रिश्तों व पदार्थों में से निकाल कर इसको पूरी तरह अपने प्रियतम में लीन कर देता है । संसार का प्रत्येक प्रकार का कार्य-व्यवहार करते हुए उसका ध्यान अपने प्रियतम में ही रहता है :

सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥
जरै पिया के साथ सोई है नारि सयानी ।
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
जगत करै उपहास पिया का संग न छोड़ै ।
प्रेम की सेज बिछाय मेहर[3] की चादर ओढ़ै ॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग बिलासा ।

१. बहुत सुन्दर अवस्था प्राप्त हो गई. २. सुरत अन्दर में अनहद नाद सुनने लगी, ३. दया, कृपा ।

मारै भूख पियास [1]याद सँग चलती स्वासा ॥
रैन दिवस बेहोस पिया के रँग में राती ।
तन की सुधि है नहीं पिया सँग बोलत जाती ॥
पलटू गुरु परसाद से किया पिया को हाथ ।
सोई सती सराहिये जरै पिया के साथ ॥

(भाग १, कुंडली १०८)

पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥
सब से रहै अधीन टहल वह सब की करती ।
सास ससुर और भसुर[2] ननद देवर से डरती ॥
सब का पोषन करै सभन की सेज बिछावै ।
सब को लेय सुताय, पास तब पिय के जावै ॥
सूतै पिय के पास सभन को राखै राजी ।
ऐसा भक्त जो होय ताहि की जीती बाजी ॥
पलटू बोलै मीठे बचन भजन में है लौलीन ।
पतिबरता को लच्छन सब से रहै अधीन ॥

(भाग १, कुंडली १०७)

हम भजनीक में नाहीं अवधू, आँखि मूँद नहिं जाहीं ॥
इन भजनीक भजन है इक ठो, तब वह भजन में जावै ।
भजनी भजन एक भा दूनों, वा के भजन न आवै ॥
[3]खसम की मजा परी है जिनको, सो क्या नैहर आवै ।
[4]हुमा पच्छी रहै गगन में, वा के जगत न भावै ॥
बुंद परा सागर के माहीं, वह न बुंद कहावै
लोन की डेरी[5] परी पानी में, कहवाँ में फिरि पावै

---

१. सांस-सांस से याद करती है, २. पति का बड़ा भाई, जेठ, ३. [illegible]
के संग का रस मिल गया, वह मायके नहीं आती, ४. एक काल्पनिक पक्षी [illegible]
छाया पड़ने से मनुष्य बादशाह हो जाता है, ५. डली ।

[1]तेल कि धार लगी निसि वासर, जोति में जोत समानी।
पलटूदास जो आवें जावें, सो चौथाई ज्ञानी॥
(भाग ३, शब्द ५८)

जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान॥
कामी लावै ध्यान रैन दिन चित्त न टारै।
तन मन धन मर्जाद[2] कामिनि के ऊपर वारै॥
लाख कोऊ जो कहै कहा ना तनिको मानै।
बिन देखे ना रहै वाहि को सर्वस जानै॥
लेय वाहि को नाम वाहि की करै बड़ाई।
तनिक बिसारै नाहि [3]कनक ज्यों किरपन पाई॥
ऐसी प्रीति अब दीजिये पलटू को भगवान।
जैसे कामिनि के विषय कामी लावै ध्यान॥
(भाग १, कुंडली ९२)

हरिरस छवि मतवाला है। वा के लगी है खुमारी॥
सात सरग की बात बतावै। [4]देखन कै वह बाला है॥
तीन लोक की एक चाल है। वाकी उलटी चाला है॥
नहिं मुद्रा नहिं भेष बनावे। [5]जपता अजपा माला है॥
[6]ज्ञान मंहं उनमत्त रहतु है। भूला जग जंजाला है॥
भूख पियास नहीं कछु वा के। लगै न गरमी पाला है॥
पलटूदास जिन हरि रस चाखा। पिये न दूजा प्याला है॥
(भाग ३, शब्द ५३)

---

१. पलटू साहिब ने कई स्थानों पर 'भजन तेल की धार' का संकेत दिया हैं। महात्मा समझाते हैं कि जब तक आत्मा दसम् द्वार नहीं पहुंच जाती, आन्तरिक रस एक सार नहीं रहता। यह पानी की धार की भांति टूटता रहना है। परन्तु जब अभ्यासी आत्मा दसवें द्वार में पहुंच जाती है तो भजन तेल की धार की भाति एक सार चलता है। फिर समाधि निर्विघ्न चलती रहती है, २. मर्यादा अर्थात मान-बड़ाई, ३. जैसे कंजूस या कृपण को सोना मिल जाए, ४. वह ऊपर की ओर देखता है, ध्यान ऊपर के मडलों मे रखता है, ५. अनहद शब्द का अजपा-जाप जपता है, ६. मकर में मस्त रहता है।

तन सँग निसि दिन जागौंगी, जागौंगी सँग लागौंगी ॥
न मन धन न्योछावर करि कै । पुलकि पुलकि चित पोगौंगी ॥
सयन करत कै पाँव दाबिहौं । भक्ति दान वर माँगौंगी ॥
सीत प्रसाद पेट भरि खैहौं । चौरासी घर त्यागौंगी ॥
पलटूदास जो दाग करम को । उलटि दाग फिर दागौंगी ॥
(भाग ३, शब्द ५४)

सैयाँ के वचन गड़ि गे मोरे हिय में ॥
गगन महल पिय मोहिं गुहराइन्हि,
२सबद स्रवन सुनि कल नहिं जिय में ॥
भेद भरी तन कै सुधि नाहीं,
यह मन जाइ बसो मोरे पिय में ॥
खोजत खोजत हारि रह्यो है,
मथि मथि छाछ निकारैं जस घिय में ॥
पलटूदास के गोविन्द साहिब[3],
आइ मिले मोहिं प्रेम गलिय में ॥
(भाग ३, शब्द ५७)

आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल ।
पलटू उनसे सब डेरै, वो साहिब के लाल ॥
(भाग ३, साखी २५

दास कहाइ कै आस ना कीजिये,
आस जो करै सो दास नाहीं ।
प्रेम तो एक जो लगा संसार में,
भक्ति गइ दूरि अब जक्त माहीं ॥
चाहिये भक्ति को जक्त से तोरिये,
जोरिये जक्त से भक्ति जाही ।

१. सेज बिछा कर, २. शब्द सुनकर मन मिलाप के लिये बेचैन हो जात
धारण नहीं करता, ३. पलटू साहिब के सतगुरु ।

दास पलटू कहै [1]एक को छोड़ि दे,
तरवार दुइ म्यान इक नाहीं चाही ॥
(भाग २, रेखता ४६)

अपनी ओर निभाइये हारि परै की जीति ॥
हारि परै की जीति ताहि की लाज न कीजै।
कोटिन बहै बयारि कदम आगे को दीजै ॥
तिल तिल लागै घाव खेत से टरना नाहीं।
गिरि गिरि उठै सम्हारि सोई है मरद सिपाही ॥
लरि लीजै भरि पेट [2]रेकानि कुल अपनि न लावै।
उन की उनके हाथ बड़न से सब बनि आवै ॥
पलटू सतगुरु नाम से साची कीजै प्रीति।
अपनी ओर निभाइये हारि परै की जीति ॥
(भाग १, कुंडली ११०)

विरह की पीड़ा कोई विरही ही जान सकता है। इस बाण की पीड़ा को वही जानता है जिसके अपने कलेजे में विरह का बाण लगा हो। 'घायल को गति घायल जानै और न जाने कोय।' पलटू साहिब ने कई उदाहरण देकर विरह की पीड़ा का वर्णन किया है। आप कहते हैं कि विरहणी की अवस्था पानी से बिछुड़ी मछली जैसी होती है जिसे चाहे दूध में भी क्यों न रख दो, वह कभी किसी तरह भी बच नहीं सकती। जीवात्मा की भी प्रभु तथा सतगुरु के साथ ऐसी ही प्रीति होनी चाहिए।

आत्मा संसार में है तथा वह प्यारा प्रियतम दूर देश में बैठा है। यह विरहणी उसके वियोग में व्याकुल है: 'अरे दइया रे हमरे पिया परदेस'। प्रीति में जो चाहे दुख आएँ तथा चाहे सारा संसार हँसी करे, एक बार लगी प्रीति नहीं टूट सकती। पलटू साहिब प्रेमिका रूप होकर कहते हैं कि मैं सतगुरु गोविन्द दास जी की प्रीति में बावरी हुई फिरती हूँ तथा मुझे किसी दूसरी वस्तु की सुध-बुध ही नहीं रही,

१. दोनों में से एक को छोड़ दो, २. कुल को लाज मत लगाए।

'सखी पलटू अलमस्त दिवानी गोबिन्द नन्द दुलारी हो।'

प्रेम बान जा के लगा सो जानैगा पीर ॥
सो जानैगा पीर काह मूरख से कहिये।
तिल भरि लगै न ज्ञान ताहि से चुप ह्वै रहिये ॥
लाख कहै समुझाय वचन मूरख नहि मानै।
[1]तासे कहा बसाय ठान जो अपनी ठानै ॥
जेहि के जगत पियार ताहि से भक्ति न आवै।
सतसंगति से बिमुख और ये सन्मुख धावै ॥
जिन कर हिया कठोर है पलटू धसै न तीर।
प्रेम बान जा के लगा सो जानैगा पीर ॥

(भाग १, कुंडली ६७)

जाहि तन लगी है सोई तन जानि है,
जानि है वही सतसंग वासी।
कोटि औषधि करै बिरह ना जायगा,
जाहि के लगी है विरह गाँसी ॥
नैन झरना बन्यौ भूख ना नींद है,
परी है गले बिच प्रेम फाँसी।
दास पलटू कहै लागी ना छूटि है,
सकल संसार मिलि करै हाँसी ॥

(भाग २, रेख्ता २७)

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै ॥
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देत है प्रान ॥
मीन कँहै लै छीर[2] में राखै, जल बिनु है हैरान ॥
जो कुछ है सो मीन के जल है, जल के हाथ बिकान ॥
पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोई परमान ॥

(भाग ३, शब्द ४८)

जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छोड़ि देतु है प्रान ॥
छोड़ि देतु है प्रान जहाँ जल से बिलगावै।

---

१ जो अपनी जिद्द पूरी करता है उसके साथ क्या किया जाए? २. दूध।

देइ दूध में डारि रहै ना प्रान गँवावै ॥
जा को वही अहार ताहि को का लै कीजै ।
रहै ना कोटि उपाय और सुख नाना कीजै ॥
यह लीजै दृष्टांत सकै सो लेइ बिचारी ।
ऐसो करै सनेह ताहि की मैं बलिहारी ॥
पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान ।
जहाँ तनिक जल बीछुड़ै छाँड़ि देतु है प्रान ॥
(भाग १, कुंडली ७१)

जेकरे अँगने नौरँगिया, सो कैसे सोवै हो ।
लहर लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो ॥
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो ।
चौंकि चौंकि उठै जागि, सेज नहिं भावै हो ॥
रैन दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो ।
पिय पिय लावै सोर, सवति होइ डोलै हो ॥
विरहिनि रहै अकेल, सो कैसे कै जीवै हो ।
[1]जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो ॥
अभरन देहु वहाय, वसन धै फारो हो ।
पिय विनु कौन सिंगार, सीस दै मारो हो ॥
भूख न लागै नींद, [2]विरह हिये करकै हो ।
[3]माँग सेंदुर मसि पोछ, नैन जल ढरकै हो ॥
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो ।
जेकर पिय परदेस, सो काहि रिझावै हो ॥
रहै चरन चित्त लाइ, सोई धन आगर हो ।
पलटूदास कै सवद, विरह कै सागर हो ॥
(भाग ३, शब्द ३५)

सुंदरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोस तू पिया के कै ।

१. जिसको अमृत की चाह हो, विष कैसे पी सकता है, २. हृदय में विरह का वाण खटकता है, ३. मांग में सिंदूर और आँखों में काजिल ।

बहुत सी पद्मिनी खोजती मरि गईं,
रटत ही पिया पिया एक एकै ।।
सती सब होत हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहि झाँकै ।
दास पलटू कहै सीस उतारि कै,
सीस पर नाचु जो पिया ताकै ।।
(भाग २, रेखता ५१)

अरे दैया हमरे पिया परदेसी ।।
इक तो मैं पिय की बिरह बियोगिनि, मों कँह कछु न सुहाई ।
दुसरे सासु ननद मारैं बोली, छतिया मोरी फटि जाई ।।
चुइ चुइ आँसु भींजि मोर अँचरा[1], भींजि गई तन सारी ।
भूख न भोजन नींद न आवै, झुकि झुकि उठौं सम्हारी ।।
अपने पियहिं पाती[2] लिखि पठइउँ, मरम न जानैं काऊ ।
[3]उमगे जोवन राखि न जाई, तुम थाती लै जाऊ ।।
[4]वारी रहिउँ भइउँ तरुनापा, सेत भये तन केसा ।
पलटूदास पिया नहिं आये, तव हम गइनि बिदेसा ।।
(भाग ३, शब्द ४५)

आठ पहर निरखत रहै जैसे चन्द चकोर ।।
जैसे चन्द चकोर पलक से टारत नाहीं ।
चुगै बिरह से आग रहै मन चन्दै माहीं ।।
फिरै जेही दिस चंद तेही दिसि को मुख फेरै ।
चन्दा जाय छिपाय आग के भीतर हेरै ।।
[5]मधुकर तजै न पदम जान से जाइ बँधावै ।
दीपक में ज्यों पतँग प्रेम से प्रान गँवावै ।।
पलटू ऐसी प्रीत कर [6]परधन चाहै चोर ।
आठ पहर निरखत रहै जैसे चन्द चकोर ।।
(भाग १, कुंडली ६२)

---

१. आंचल, २. पत्र, ३. हमसे यौवन नहीं सम्भाला जाता, तू हमें साथ ले जा, ४. बाल्यकाल व्यतीत हो गया है और अब वृद्धावस्था आ गई है, ५. भंवरा फूल को नहीं छोड़ता, ६. जिस प्रकार चोर को पराये धन की प्रीति होती है ।

जा के लगी सोई तन जानै, दूजो कवन हाल पहिचानै ॥
है कोउ भेदी भेद बतावै, कैसे बिहरिनि दिवस गंवावै ॥
मारग दूर पथिक सब हारे, उतरन को भवसागर पारे ॥
[१]उकठा पेड़ सींचे जो माली, घायल फिरौं भई मतवाली ॥
एक तो लागी प्रेम की गांसी, दूजे सहौं जगत उपहासी ॥
लागी लगन टरै नहिं टारे, क्या करै औषद बैद बेचारे ॥
पलटूदास लगी तन मेरे, घायल फिरैं और बहुतेरे ॥
(भाग ३, शब्द ३६)

[२]फनि से मनि ज्यों बीछुरै जल से बिछुरै मीन ॥
जल से बिछूरै मीन प्रान को तुरत गंवावै ।
रहै न कोटि उपाय दूध के भीतर नावै ॥
ऐसी करै जो प्रीति ताहि की प्रीति सराही ।
बिछुरे पर नर जियै प्रीति वाह्न की नाही ॥
पटकि पटकि तन रहै बिछोहा सहा न जाई ।
नैन ओट जब भये प्रान को संग पठाई ॥
पलटू हरि से बीछुरे ये ना जीवै तीन ।
फनि से मनि जो बीछुरै जल से बिछुरै मीन ॥
(भाग १, कुंडली ६६)

अब तो मैं बैराग भरी । सोवत से मैं जाग परी ॥
[३]नैन बने गिर के झरना ज्यों । मुख से निकरै हरी हरी ॥
अभरन तोरि बसन धै फारौं । पापी जिउ नहिं जात मरी ॥
लेउँ उसास सीस दै मारौ । अगिनि बिना मैं जाउँ जरी ॥
नागिनि बिरह डसत है मो को । जात न मो पै धीर धरी ॥
[४]सतगुरु आइ किहिन बैदाई । फिर नर [illegible]
पलटूदास दिहा उन मो को । ध्यान [illegible]
[illegible]

१. यदि माली जड़ से सूखा (उकठा) पेड़ [illegible]
मुझ घायल मतवाली की दशा सुधरना [illegible]
पहाड़ के झरने की तरह बह रही है, [illegible]
जड़ी-बूटियों को भी सजीवनी मिल रही है

सच्चे साहब से मिलन को,
मेरा मन लीहा बैराग है जी।
मोह निसा में सोय गई,
चौंक परी उठि जाग है जी॥
दोउ नैन बने गिरि के झरना,
भूषन बसन किया त्याग है जी।
पलटू जीयत तन त्यागि दिया,
उठी बिरह की आगि है जी॥
(भाग २, झूलना २३)

पिया पिया बोलैं पपीहा है, सब्द सुनत फाटै हीया है॥
सोवत से मैं चौंकि परी हौं, धकर धकर करै जीया है॥
पिय की सोच परी अब मो को, पिय बिनु जीवन छीया है॥
बैरी होइ कै आय पपीहा, बिरह जँजाल मोहिं दीया है॥
हित मेरा यह बड़ा पपीहा, उपदेस आइ मोहिं कीया है॥
पलटूदास पपिहा की दौलत, बैराग जाय हम लीया है॥
(भाग ३, शब्द ३८)

रटौं मैं राम को बैठी, पड़े हैं जीभ में छाला।
थके दृग पंथ को जोहत, जपौं मैं प्रेम की माला॥
कुसल जब पीव को देखौं, देखे बिन नाहिं जीवौंगी।
खेलौंगी जान पर अपने, पियाला जहर पिवौंगी॥
बिरह की आग है लागी, मुझे कुछ और ना सूझै।
सजन वह बड़ा बेदरदी, हमारी दरद ना बूझै॥
दीपक को भावता नाहीं, पतंग तन जारि भया राखी।
पलटूदास जिय मेरा, तुम्हारे बीच है साखी॥
(भाग ३, शब्द ४४)

मेरे लगी सबद की गाँसी है, तब से मैं फिरौं उदासी हैं॥
नैनन नीर ढुरन मोरे लागे, परी प्रेम की फाँसी है॥

भूषन बसन नहीं मोहि भावै, छोड़ा भोग विलासी है ॥
मन भया छीन दीन हुई सब से, अबला नाम पियासी है ॥
चारिउ खूंट कानन गिरि खोजा, खोजा मथुरा कासी है ॥
जा से पूछों कोउ न बतावै, और करैं उपहासी है ॥
पलटूदास हम खोजि निकारा, ह्वै बैरागिनि खासी है ॥

(भाग ३, शब्द ३७)

भेद भरी तन कै सुधि नाहीं, ऐसो हाल हमारो हो ॥
पुरुष अलख लखि मन मतवाला, झुकि झुकि उठत सम्हारो हो ॥
घायल भये नाद के लागे, मरमा[1] है सबद कटारी हो ॥
टकटक ताकि रही ठगमूरी[2], आपा आप बिसारी हो ॥
सिथिल भई मुख बचन न आवै, लागि गगन बिच तारी हो ॥
सखि पलटू अलमस्त दिवानी गोविन्दनंद दुलारी हो ॥

(भाग ३, शब्द १२७)

सतगुरु सब्द के सुनत ही तन की सुधि रहि जात ॥
तन की सुधि रहि जात जाय मन अंतै अटका ।
बिसरी भूख पियास किया सतगुरु से टोटका[3] ॥
दतुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई ।
बैठा उठा न जाय फिरी अब नाम दुहाई ॥
कौन बनावैं भेष कौन अब टोपी देवैं ।
बिसरा माला तिलक कौन अब दर्पन लेवैं ॥
पलटू झुका है आपु को मुख से भूली बात ।
सतगुरु सब्द के सुनत ही तन की सुधि रहि जात ॥

(भाग १, कुंडली ६९)

---

१. मर्मवाली, २. मृगतृष्णा, ३. जादू ।

पाखण्ड तथा झूठी पूजा

तीर्थ, मन्दिर, मस्जिद, महंत, फ़कीर आदि

पलटू साहिब ने संसार में प्रचलित अनेक प्रकार की बाहरमुखी पूजा तथा झूठी भक्ति का बड़ी दिलेरी से खण्डन किया है। आप कहते हैं कि तीर्थों में पत्थर तथा पानी के सिवाय कुछ नहीं है। यह दुकानदारी के अड्डे हैं, जहाँ सच्ची आध्यात्मिकता का अभाव है।

भूतों-प्रेतों की पूजा करना भारी मूर्खता है। इनकी पूजा करने वाले भूत-प्रेत बनेंगे।

वह प्रभु हमारे अन्दर है तथा अन्दर ही उसकी खोज करनी चाहिए। उस एक प्रभु को छोड़ कर अनेक देवी-देवताओं तथा इष्ट आदि की मूर्तियों की पूजा करना व्यर्थ है क्योंकि बहुत से पुरुषों की संगति करने वाली नारी पतिव्रता तथा पुत्रवती नहीं बन सकती। वह बांझ तथा दुहागिन रह जाती है, 'बहुत पुरुष के भोग से बिस्वा होइ गइ बाँझ।'

प्रत्येक प्रकार की बाहरमुखी पाखण्ड की भक्ति का त्याग करके तथा किसी पूर्ण सन्त से प्रभु-भक्ति का सच्चा मार्ग प्राप्त करके तन व मन से उस पर चलना चाहिए, यही प्रभु की प्राप्ति का मार्ग है :

तिरथ में बहुत हम खोजा, उहाँ तो नाहिं कुछ पाया।
मूरति को पुजि पछिताने, नजर में नाहिं कुछ आया ॥
मुए हम वर्त के करते, वेद को सुना चित लाई।
जोग औ जुगति करि थाके, सजन की खबर नहिं पाई ॥
किया जप तप फेरि माला, खोजा षट दरस[1] में जाई।
कोई ना भेद बतलावै, सबै सतसंग गुहराई ॥

---

१. छः दर्शनों में।

परे जब संत के द्वारे, संत ने आप नव कीन्हा ।
दास पलटू जभी पाया, गुरु के चरन शिर नाया ॥
(भाग १, शब्द १२०)

सात पुरी हम देखिया देखे चारों धाम ॥
देखे चारों धाम सबन माँ पाथर पानी ।
करमन के बसि पड़े मुक्ति की राह भुलानी ॥
चलत चलत पग थके छीन भइ अपनी काया ।
काम क्रोध नहिं मिटे बैठ कर बहुत नहाया ॥
*ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच समाना ।
पाथर में गयो भूल सत का मरम न जाना ॥
पलटू नाहक पचि मुए संतन में है नाम ।
सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम ॥
(भाग १, कुंडली २०८)

भूत पिसाच जो पूजत हैं,
फिर फिर होवें वे भूत हैं जी ।
भूत जोनि भरमत फिरें,
उनका वही आकूत है जी ॥
गुबरैला फूल पै ना बैठे,
वो जा बैठे गुह मूत पै जी ।
पलटू कुल रीति नहीं छोड़े,
जहाँ बाप गया तहाँ पूत है जी ॥
(भाग २, झूलना ६४)

---

*गुरु नानकदेव जी 'जपु जी' में कहते हैं कि यदि शरीर गन्दा हो जाये तो पानी से साफ़ किया जा सकता है और यदि कपड़े गन्दे हो जायें तो साबुन से धोये जा सकते हैं, परन्तु मन पर चढ़ी पापों की मलिनता उतारने वाला पानी या नाम है :

भरीऐ हथु पैरु तनु देह ॥ पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि ॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
(आदि ग्रन्थ, ४)

जियतै देइ गिरास ना मुए परावै पिंड ॥
मुए परावै पिंड कौन है खावनहारो ।
राँध परोसिनि नेवति खवावै ससुरा सारो ॥
पितरन के मुंह छार धोख दै लेइ वड़ाई ।
मुए वैल को घास देहु कहु कैसे खाई ॥
अपने परुसा[1] लेइ पित्र को छोड़ै पानी ।
करै पित्र से भूत वड़ो मूरख अज्ञानी ॥
पलटू पुरपा[2] मुक्ति में करत भंड औ भिंड ।
जियतै देइ गिरास ना मुए परावै पिंड ॥

(भाग १, कुंडली १९१)

तीरथ व्रत में फिरे वहुत चित लाइ कै ।
जल पखान को पूजि मुए पछिताइ कै ॥
वस्तु न वूझी जाय अपाने हाथ में ॥
अरे हां पलटू जो कुछ मिलै सो मिलै संत के साथ में ॥

(भाग २, अरिल ७७)

जल पपान वोलै नहीं, ना कछु पिवै न खाय ।
पलटू पूजै संत को, सव तीरथ तरि जाय ॥

(भाग ३, साखी १३१)

घर में मेवा छोड़ि कै टेंटी वीनन जाय ॥
टेंटी वीनन जाय जानै येही है मेवा ।
तीरथ मँहै नहाय करै मूरति की सेवा ॥
छोड़ि वोलता व्रह्म करै पथरे की पूजा ।
खसम न आवै पास नारि जव खोजै दूजा ॥
[3]सूखा हाड़ चवाय स्वान मुख आवै लोहू ।
रहै हाड़ के भोर भेद ना जानै वोहू ॥

---

१. परोसा, पत्तल, २. वड़ों की मुक्ति में दिखावा और धोखा करता है, ३. कुत्ता सूखी हड्डी चवाता है तो अपने मुंह के खून को हड्डी में से आ रहा स्वाद समझने लगता है ।

पलटू आगे धरा है आप से नाहीं खाय।
घर में मेवा छोड़ि कै टेंटी बीनन जाय ॥
(भाग १, कुंडली २०९)

सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की[1] मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार ॥
(भाग ३, साखी ११२)

भरमि भरमि सब जग मुवा झूठा देवा सेव ॥
झूठा देवा सेव नाम को दिया भुलाई।
बाँधे जमपुर जाहि काल चोटी घिसियाई ॥
पानी से जिन पिंड गरभ के बीच सँवारा।
ऐसा साहिब छोड़ि जन्म औरे से हारा ॥
ऐसे मूरख लोग खबर ना करैं अपानी।
सिरजनहारा छोड़ि पूजते भूत भवानी ॥
पलटू इक गुरुदेव बिनु दूजा कोय न देव।
भरमि भरमि सब जग मुवा झूठा देवा सेव ॥
(भाग १, कुंडली २०४)

[2]पलटू जहँवाँ दो अमल, रैयत होय उजाड़।
इक घर में दस देवना, क्योंकर बसै बजार ॥
(भाग ३, साखी ११३)

बहुत पुरुष के भोग मे बिस्वा होइ गइ बाँझ ॥
बिस्वा होइ गइ बाँझ जाहि के पुरुष घनेरे।
नाहि एक की आस फिरै घर घर बहुतेरे ॥
एक केरि होइ रहै दुसर से होइ गलानी[3]।
तुरत गरभ रहि जाइ सिवाती चात्रिक पानी ॥

---

१. डुबकी, २. जहाँ दो हुक्म चलते हों, उस देश को प्रजा उजड़ जाती है। जिस घर में अनेक देवताओं की पूजा होती हो, वह सच्चे परमार्थ में किस प्रकार कायम रह सकता है? ३. ग्लानि, घृणा।

[1]राम पुरुष को छोड़ि करै देवतन की पूजा ।
बिस्या की यह रीति खसम तजि खोजै दूजा ॥
पलटू बिना बिचार से मूरख डूबै माँझ[2] ।
बहुत पुरुष के भोग से बिस्वा होइ गइ बाँझ ॥

(भाग १, कुंडली २११)

घर में जिन्दा छोड़ि कै मुरदा पूजन जायँ ॥
मुरदा पूजन जायँ [3]भीति को सिरदा नावैं ।
पान फूल औ खाँड़ जाइ कै तुरत चढ़ावैं ॥
ताक कि माटी आनि ऊँच कै बाँधिनि चौरी ।
लीपि पोति के धरिनि पूरी औ बरा कचौरी ॥
पीयर लूगा[4] पहिरि जाइ कै बैठिनि बूढ़ा ।
भरमि भरमि अभुवाइँ माँगत है खसी[5] कै मूँड़ा ॥
पलटू सब घर बाँटि कै लै लै बैठे खायँ ।
घर में जिन्दा छोड़ि कै मुरदा पूजन जायँ ॥

(भाग १, कुंडली १९०)

तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाड़ते,
हिन्दू लै आग के बीच जारैं ।
पूरब वै गये हैं वे पच्छूँ को,
दोऊ बेकूफ[6] ह्वै खाक टारैं ॥
वे पूजें पत्थर को कबर को वे पूजते,
भटक कै मुए दै सीस मारैं ।
दास पलटू कहै साहिब है आप में,
आपनी समझ बिनु दोऊ हारैं ॥

(भाग २, रेखता १९)

---

१. एक परमात्मा को छोड़कर अनेक देवताओं की पूजा करने वाली जीवात्मा उस वेश्या के समान है जो अनेक पुरुषों का संग करती है परन्तु किसी को अपना पति नहीं कह सकती, २. मझधार, ३. दीवार को सिजदे करते हैं, ४. पीला कपड़ा, ५. बकरा, ६. मूर्ख ।

लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय ॥
मारत अपने पाँय पूजय है देई देवा ।
सतगुरु संत बिसारि करै भूतन की सेवा ॥
[1]चाहै कुसल गंवार अमीं दै माहुर खावै ।
मने किये से लड़ै नरक में दौड़ी जावै ॥
पौड़ै[2] जल के बीच हाथ में बांधै रसरी ।
परै भरम में जाइ ताहि को कैसे पकरी ॥
[3]पलटू नर तन पाइ कै भजन मेंहै अलसाय ।
लिये कुल्हाड़ी हाथ में मारत अपने पाँय ॥
(भाग १, कुडली २०७)

तीसो रोजा किया फिरै सब भटकि कै ।
आठो पहर निमाज मुए सिरै पटकि कै ॥
मक्के में भी गये कबर में खाक है ।
अरे हाँ पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है ॥
(भाग २, अरिल ८०)

लम्बा घूंघट काढ़ि कै [4]लगवारन से प्रीति ॥
लगवारन से प्रीति जीव से द्रोह बढ़ावै ।
पूजत फिरै पषान नहीं जो बोलै खावै ॥
सम्मं[5] पूरन ब्रह्म ताहि को तनिक न मानै ।
करै नटो[6] को काम लोक पतिवर्ता जानै ॥
उदर पालना करै नाम ठाकुर को लेई ।
सर्व जीव भगवान ताहि को तनिक न सेई ॥
पलटू मत्रं मराहिये जगै जगत की रीति ।
लम्बा घूंघट काढ़ि कै लगवारन से प्रीति ॥
(भाग १, कुडली २१०)

---

१. मूर्ख अमृत छोड़ कर विष पीता है और फिर सुख की आशा रखता है, २. तैरना, ३. जो मनुष्य जन्म पाकर भजन में आलस्य करते हैं, वे अपने हाथों से पाँव पर कुल्हाड़ा मारते हैं, ४ परन्तु विषयों में प्रीति है, ५. सब में, ६. नाटक तमाशे बताने वाली, हरजाई ।

पलटू तन करु देवहरा मन करु सालिगराम ॥
मन करु सालिगराम पूजते हाथ पिराने ।
धावत तीरथ वरत रैनि दिन गोड़ खियाने ॥
माला फेरि न जाय परे अँगुरिन में घट्टा ।
राम बोलि न जाय जीभ में लागै लट्टा[१] ॥
निति उठि चंदन देत माथ कै लोहू सोखा ।
बाल भोग के खात मिट्यो ना मन का धोखा ॥
जल पपान के पूजते सरा न एकौ काम ।
पलटू तन करु देवहरा मन करु सालिगराम ॥
(भाग १. कुंडली २१२)

देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा ।
चला जा सूधी चाल रोइ[२] सब मरैगा ॥
जाति बरन कुल खोइ करो तुम भक्ति को ।
अरे हाँ पलटू कान लीजिये मूँदि हँसै दे जक्त को ॥
(भाग २, अरिल ७५)

पलटू तीरथ के गये, बड़ा होत अपराध ।
तीरथ में फल एक है, दरस देत हैं साध ॥
(भाग ३, साखी ६५)

संत चरन को छोड़ि कै पूजत भूत बैताल ॥
*पूजत भूत बैताल मुए पर भूतै होई ।
जेकर जहवाँ जीव अन्त को होवै सोई ॥
देव पितर सब झूठ सकल यह मन की भ्रमना ।
यही भरम में पड़ा लगा है जीवन मरना ॥
देई देवा सेइ परम पद केहि ने पावा ।
भैरो दुर्गा सीव बाँधि कै नरक पठावा ॥

---

१. लासा बंध जाना, मौन आना, २. जो पैदा हुआ है, एक दिन अवश्य मरेगा,
*गीता में भी आता है कि जो जिस इष्ट को पूजता है, उसी को प्राप्त होता है। (अध्याय ७, श्लोक २१)

पलटू अंत घसोट है चोटी धरि धरि काल।
संत चरन को छोड़ि कै पूजत भूत वैताल ॥
(भाग १, कुंडली २०६)

यदि मन में परमात्मा का सच्चा प्यार नहीं है तो भक्त बनने का स्वांग रचने से कोई लाभ नहीं। यदि माया का मोह तथा इन्द्रियों के सुखों की आशा नहीं त्यागी तो फ़कीरी धारण करने में क्या लाभ? बाहरमुखी भेष वेश्या की दुकानदारी से बढ़कर नहीं। इसमें कुछ लाभ नहीं हो सकता, हानि चाहे हो जाए।

इसी प्रकार लोक-लाज का डर भी निरर्थक है। बाहरमुखी भेष तथा मान-बड़ाई त्याग कर पूर्ण सन्त-सतगुरु की सेवा में लगना चाहिए। जो कुछ मिलता है, इससे ही मिलता है :

संसार सुख छोड़ि कै भया फक्कीर तू,
भया फक्कीर क्या स्वाद पाया।
पेट छूटा नहीं भीख क्या माँगता;
पाँच पच्चीस संग लगी माया ॥
दारा[1] तुम एक तजी घर बीच में,
पाँच पच्चीस को संग लाया।
दास पलटू कहै क्या नफा तोहि मिला,
राम का नाम जो नाहिं आया ॥
(भाग २, रेखता ९०)

[2]हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फ़क़ीर ॥
नाहक भये फकीर पीर की सेवा नाहीं।
अपने मुंह से बड़े कहावैं सब से जाहीं ॥
धमधूसर होइ रहे बात में सब से लड़ते।
[3]लाम काफ वो कहैं इमान को नाही डरते ॥
हमहीं हैं दुरवेस[4] और और ना दूसर कोई।

१. स्त्री, २. आशा-तृष्णा नहीं गई तो फ़क़ीर बनना व्यर्थ है, ३. तर्क को कक्का कहते हैं अर्थात् बलपूर्वक गलत को ठीक और ठीक को गलत सिद्ध करते हैं, ४. दरवेश, सच्चे फ़कीर।

सब को देहि मुराद यकीन से ओकरे होई ॥
मन मुरीद होवै नहीं आप कहावै पीर ।
हवा हिरिस पलटू लगी नाहक भये फ़कीर ॥

(भाग १, कुंडली ३९)

यार फक्कीर तू परा किस ख्याल में,
पाँच पच्चीस संग तीस नारी ।
[1]एक तुम छोड़िया तीस ठो संग में,
होत अस ज्ञान से नर्क भारी ॥
तीस के कारने भीख तू माँगता,
[2]एक ने कवन तकसीर पारी ।
दास पलटू कहै खेल यह ना बदो,
छूटे जब तीस तो छोड़ प्यारी ॥

(भाग २, रेखता ५९)

पलटू कीन्हो दंडवत, वे बोले कछु नाहि ।
भगत जो बनै महंथ से, नरक परै को जाहि ॥

(भाग ३, साखी १३८)

पलटू माया पाइ कै, फूलि के भये महंथ ।
मान बड़ाई में मुए, भूलि गये सत पंथ ॥

(भाग ३, साखी १३९)

गोड़ धरावैं संत से, माया के महमंत ।
पलटू बिना विवेक के, नरकै गये महंत ॥

(भाग ३, साखी १४०)

भेष बनावैं भक्त का, नाहि राम से नेह ।
पलटू पर-धन हरन को, बिस्वा[3] बेचै देह ॥

(भाग ३, साखी ८०)

बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ॥
बैठी बीच बजार नजारा सबसे मारै ।

---

१. एक स्त्री छोड़ दी परन्तु पाँच इन्द्रियां और पच्चीस प्रकृतियां साथ रहीं,
२. एक स्त्री ने क्या गलती की थी, ३. वेश्या ।

बातें मीठी करै सभन की गाँठि निहारै ॥
चोवा चंदन लाइ पहिरि के मलमल खासा ।
[1]पंचभतारी भई करै औरन की आसा ॥
लेइ खसम[2] को नाँव खसम से परिचै नाहीं ।
बेचि बड़न को नाँव सभन को ठगि ठगि खाहीं ॥
पलटू [3]तेकर बात है जेकर एक भतार ।
• बिस्वा किये सिंगार है बैठी बीच बजार ॥
(भाग १, कुण्डली १८)

पलटू जटा रखाय सिर, तन में लाये राख ।
कहते फिरैं हम जोगी, लरिका दोवैं काँख ॥
(भाग १, साखी ८१)

*भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेष ॥
तब रीझैगा भेष जगत में करै बड़ाई ।
लाख भगत जो होय खाये बिनु निंदत जाई ॥
रहनि लखै नहि कोय नाहिं टकसार बिचारै ।
भाव भक्ति ना लखै [4]खोजत सब फिरै अहारै ॥
भेष में नाहि बिबेक भये दस बीस बिबेकी ।
कोटिन में दस बीस संत तिन रहनी देखी ॥
पलटू रहै अपान में आन में मारै मेख ।
भरि भरि पेट खिलाइये तब रीझैगा भेष ॥
(भाग १, कुण्डली २८

कहत फिरत हम जोगी पक्का दुइ सेर खाय ॥
पक्का दुइ सेर खाय कहै मैं बड़का जोगी ।
सोवै टाँग पसारि देखत के बड़ा बिरोगी[5] ॥

---

१. जिसके पाँच अर्थात् कई पति हों, २. पति, मालिक, ३. जो पतिव्रता है, उसक
महिमा नहीं की जा सकती ।

*भेषी लोग पेट के पुजारी होते हैं और केवल अच्छा और अधिक खाने पर ह
तुम्हारी महिमा करेंगे ।

४. खाने-पीने का सामान ढूंढते फिरते हैं, ५. बैरागी ।

हृष्ट पुष्ट होइ रहै [1]लड़न में नाहीं माँदा।
काम क्रोध और मोह करत है वाद विवादा॥
पलटू ऐसा देखि के मुँह ना राखी लाय।
कहत फिरत हम जोगी पक्का दुइ सेर खाय॥
(भाग १, कुंडली २६७)

लाखों मौनी फिरैं लाखों वाघम्बरी।
बधमुखी औ नखी लाखों लोह लंगरी॥
लाखों जल में पड़े (लाखों) धूरि को छानते॥
अरे हाँ पलटू जा में राजी राम सो कोउ नहिं जानते॥
(भाग २, अरिल ८५)

केतिक फिरैं उदास बनै बन धावते।
केतिक साधैं जोग खाक सिर नावते॥
केतिक कथनी कथैं केतिक आचार में।
अरे हाँ पलटू कोऊ न पावै पार बड़े दरबार में॥
(भाग २, अरिल ७८)

पढ़ि पढ़ि क्या तुम कीन्हा पंडित, अपना रूप न चीन्हा॥
औरन को तुम ज्ञान बताओ, तुमको परै न बूझी।
[2]जस मसालची सबहिं दिखावै, वा को परै न सूझी॥
अपनी खबर नहीं है तुमको, औरन को परमोधो।
पढ़ना गुनना छोड़ि के पाँडे, अपनी काया सोधो॥
इन्द्रिन से आजिज[3] तुम रहते, इन्द्री मार गिराओ।
माया खातिर बकि बकि मरते, मन अपनो समुझाओ॥

---

१. लड़ने में देर नहीं करता, २. मसालची दूसरों को प्रकाश दिखाता है परन्तु स्वयं अन्धेरे में रहता है। यही हाल वाचक ज्ञानियों का है। साईं बुल्लेशाह भी कहते हैं कि मुल्ला और मसालची लोगों को प्रकाश दिखाते हैं परन्तु स्वयं उससे लाभ नहीं उठाते :

बुन्हा मुल्ला अते मसालची दोहाँ दा इकको चित्त।
लोकां करदे चानणा आप अंधेरे नित्त।

३. अधीन।

बुद्धि मेंहै परवीन चतुर हो, खाँड धूरि में सानो।
पलटूदास कहै सुनु पाँडे, वचन हमारा मानो॥
(भाग ३, शब्द ९९)

पलटू ब्राह्मन है बड़ा, जो सुमिरै भगवान।
बिना भजन भगवान के, बाह्मन ढेढ़ समान॥
(भाग ३, साखी १३४)

[1]सकठा बाह्मन मछखवा, ताहि न दीजै दान।
इक कुल खोवै आपनो, (दूजे) संग लियै जजमान॥
(भाग ३, साखी १३६)

पाप कै मोटरी बाह्मन भाई, इन सबही जग को बगदाई[2]।
[3]साइत सोधि के गाँव वेढ़ावैं, खेत चढ़ाय के मूड़ कटावैं॥
[4]रास बर्ग गन मूरि को गाड़ि, घर कै बिटिया चौके राँड़ि।
[5]और सभन को गरह बतावैं, अपने गरह को नाहिं छुड़ावैं॥
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति कै मरम न जानै॥
औरन को कहते कल्यान, दुख माँ आपु रहैं हैरान॥
दूध पूत औरन को देते, आप जो घर घर भिच्छा लेते॥
पलटूदास की बात को बूझैं, अन्धा होय तेहु को सूझै॥
(भाग ३, शब्द १३९)

सकठा[6] बाह्मन ना तरै, भक्ता तरै चमार।
राम भक्ति आवै नहीं, पलटू गये गुवार॥
(भाग ३, साखी १३७)

वेद पुरान पंडित बाँचै,
करता अपनी दुकान है जी।

---

१. विषयी और मास खोर ब्राह्मण को दान देने से उस ब्राह्मण की कुल तो डूबती ही है, दान देने वाले यजमान भी उसके साथ ही नरकों में जाते हैं, २. भरमाया, ३. साइत के अर्थ घड़ी के होते हैं। यहाँ भाव यह है कि अपनी ओर से महूरत निकाल कर देते हैं परन्तु उनकी बात मानने वाले गाँव नष्ट हो जाते हैं और सूरमाओं के सिर काटे जाते हैं, ४. ज्योतिषी राशि, वर्ग, गण और मूल के हिसाब से लड़के और लड़की की जन्म-पत्री मिलाता है, परन्तु अपनी लड़की घर में विधवा हुई बैठी है, ५. सागों का पाप यहाँ से छुड़ाता है परन्तु आप इनसे नहीं छूट सकता, ६. मनमुख।

अरथ को बूझि के टीका करैं,
माया में मन विकान है जी ।
औरन को परमोध करैं,
खाली अपना मकान है जी ।
पलटू कागद में खोजत है,
साहिब कहीं लुकान है जी ॥
(भाग २, झूलना ५९)

जक्त भक्त कछु नाहिं बीच में रहि गये ।
ज्यों अधमरा सांप केहू ओर ना भये ॥
वेंचि वेंचि हरि नाम दाम लै लै धरैं ।
अरे हाँ पलटू सबद न बूझै तनिक फकीरी क्या करैं ॥
(भाग २, अरिल ३५)

पलटू निकसे त्यागि कै, फिर माया को ठाट ।
धोबी को गदहा भयो, ना घर को ना घाट ॥
(भाग ३, साखी ७७)

ना बाह्मन ना सूद्र न सैयद सेख है ।
हम तुम कोऊ नाहिं बोलता एक है ॥
दूजा कोऊ नाहिं यही तहकीक[1] है ।
अरे हाँ पलटू लाख बात की बात कहा हम ठीक है ॥
(भाग २, अरिल ८१)

सात दीप नौ खंड में, देख्यो तत्तु निचोय ।
साध का वैरी कोइ नहीं, इक बाह्मन होय तो होय ॥
(भाग ३, साखी १३५)

जैसे नदी एक है बहुतेरे हैं घाट ॥
बहुतेरे हैं घाट [2]भेद भक्तन में नाना ।
जो जेहि संगत परा ताहि के हाथ विकाना ॥
चाहै जैसा करै भक्ति सब नामहिं केरी ।
जा की जैसी बूझ मारग सो तैसी हेरी ॥

१. खोज, २. भक्त कई प्रकार के होते हैं ।

फेर[1] खाय इक गये एक ठौ गये सितावी[2] ।
[3]आखिर पहुँचे राह दिना दस भई खरावी ॥
पलटू एकै टेक ना जेतिक[4] भेष तें बाट ।
जैसे नदी एक है बहुतेरे हैं घाट ॥
(भाग १, कुंडली २१८)

हरि हीरा हरि नाम फेंकि तेहि देत हैं ।
सिद्धाई है कांच तुच्छ को लेत हैं ॥
करामाति को देखि मूढ़ ललचात हैं ।
अरे हाँ पलटू इन बातन से संत बहुत अलसात हैं ॥
(भाग २, अरिल १२८)

नाचन को ढँग नाहिं है कहती आँगन टेढ़ ॥
कहती आँगन टेढ़ जक्त की लाज लजाई ।
[5]लम्बा घूंघट काढ़ि डेरें फिर नाचन आई ॥
जाति बरन मरजाद छुटी ना लोक बड़ाई ।
करै खसम को चाह [6]खसम का सहजै पाई ॥
अपनी बात उड़ाइ आपु[7] से जैसे भूसा ।
[7]औसे पेड़ बनाय पाछे से फड़िहै फरसा ॥
[8]पलटू पावै खसम को रहै संत को मेड़ ।
नाचन को ढँग नाहिं है कहती आँगन टेढ़ ॥
(भाग १, कुंडली २९१)

---

१. चक्कर, २. शीघ्र, ३. जब तक सच्चे नाम के भेदी और दाता सतगुरु का मिलाप नहीं होता, लोग भेखियों के पास भटकते रहते हैं परन्तु सच्चे जिज्ञासु—कोई देर से और कोई जल्दी—अन्त को सच्चे सतगुरु के पास पहुंच जाते हैं, ४. जितने, ५. एक ओर प्रभु-भक्ति या सतगुरु-भक्ति का नाच नाचना चाहती है और दूसरी ओर लोक-लाज का लम्बा घूंघट निकाला हुआ है, दोनों बातें इकट्ठी नहीं हो सकतीं, ६. क्या पति का मिलना इतना सरल है, ७. घर की दीवार में पीपल का पेड़ उगे तो उसको एक दम जला देना चाहिए, यदि धर्म, जाति आदि के भय से इसको न काटे तो वह घर का नाश कर देता है। इस तरह लोक-लाज, मान-बड़ाई आदि का पौधा अंकुरित होते ही उखाड़ फेंकना चाहिए, नहीं तो यह भक्ति का महल नष्ट कर देगा, ८. मन्दा [illegible] करती है और प्रभु रूपी पति को पाना चाहती है। यह किस प्रकार सम्भव हो?

झूठा सब संसार झूठै पतियात हैं।
दुइ झूठे इक ठौर नरक में जात हैं॥
जँहवा सुनैं पखंड तहाँ सब धावते।
अरे हाँ पलटू संतन के रे पास कोऊ नहि आवते॥

(भाग २, अरिल ३४)

वह दरबारा भारा साधो, हिन्दू मुसलमान से न्यारा॥
मक्के रहे न ठाकुर द्वारा, है सबमें सब खोजन हारा॥
नहि दरगाह न तीरथ संगा, गंगा नीर न तुलसी भंगा॥
[1]सालिगराम न महजिद कोई, उहाँ जनेव न सुन्नत होई॥
पढ़ै निवाज न लावै पूजा, पंडित काजी बसै न दूजा॥
फेरै न तसबी जपै न माला, [2]ना मुरदा ना करै हलाला॥
[3]मारै न सुवर जिबहे ना गाई, कलमा भजन न राम खुदाई॥
एकादसी न रोजा करई, डंडवत करै न सिरदा[4] परई॥
पलटू दास दुई की किस्ती, दोजख नर्क बैकुंठ न भिस्ती॥

(भाग ३, शब्द १०१)

लहँगा परिगा दाग फूहरि साबुन से धोवै॥
फूहरि धोवै दाग छुटै ना और बढ़ावै।
ज्यों ज्यों मलै बनाय सारे लहँगा फैलावै॥
गाफिल गै गइ सोय खसम को दोष लगावै।
ऐसी फूहरि नारि आप को नाहिं बचावै॥
[5]धोबी को नहि देइ धरहि में आपु छुड़ावै।
[6]इक बेर दिहिसि निखारि लाज से नाहिं दिखावै॥

१. वहाँ न मूर्ति है, न मस्जिद, न यज्ञोपवीत और न सुन्नत, २. वहा मुरदार और हलाल का भी कोई प्रश्न नहीं, ३. वहाँ न गाय मारी जाती है और न सुअर मारा जाता है, न कलमा पढ़ा जाता है, न राम-राम का सुमिरन है, न खुदा-खुदा का, ४. सिजदा : मुसलमान निमाज पढ़ते समय झुकते हैं उसको सिजदा करना कहा जाता है, ५. जीवात्मा रूपी स्त्री को जिसे पापों के दाग लगे है, उसे केवल सतगुरु रूपी धोबी ही धो सकता है. ६. सतगुरु इन दागों को एकदम साफ़ कर सकता है।

पलटू परदा खोलि आपनो घर घर रोवै।
लहुँगा परिगा दाग फूहरि साबुन मे धोवै॥
(भाग १, कुंडली १९१)

[1]कुत्ता हाँडी फँसि मुवा दोस परोसि क देय॥
दोस परोसि क देय आपनो हठ नहिं मानै।
न्योत रही लगवार खसम मे परदा तानै॥
कपड़ा की सुधि नाहि नंगी ह्वै पड़ी उतानी।
[2]कोऊ मने जो करै बोलती करकस बानी॥
[3]माया के लग भूत खसम को नाहि डेरानी।
[4]घर की सम्पत्ति छाड़ि और की जोगवै थाती॥
पलटू कुसंगति पड़ी पिउ कै नाम न लेय।
कुत्ता हाँड़ी फँसि मुवा दोस परोसि क देय॥
(भाग १, कुंडली २५०)

बस्ती माहिं चमार की बाम्हन करत बेगार॥
ब्राम्हन करत बेगार लोग सब गैर बिचारी।
मूरख है परधान देहि ज्ञानी को गारी॥
अद्वैता को मेटि द्वैत के करते थापन।
दौलत के संबंध अमल वे करते आपन॥
ज्ञानि महरसी सन्त ताहि की निंदा करते।
[5]अज्ञानी के मध्य सिफत वे अपनी धरते॥
पलटू पीनर कनक को कोउ न करै बिचार।
बस्ती माहिं चमार की बाम्हन करत बेगार॥
(भाग १, कुंडली [illegible])

---

१. यदि कुत्ता हाँडी में सिर फँसा लेता है तो इसमें परोसने वाले का दोष नहीं। इसी प्रकार जो जीवात्मा प्रभु को भुला कर ममता के भोगों में फँस जाती है। समझती कि उसकी इज्जत लूटी जा रही है, २. यदि कोई उसको ज्ञान की बात समझाता है तो उसके साथ कठोर वचन बोलती है, ३. उसको माया के भूत लिपटे हुए हैं, वह मालिक से नहीं डरती, ४. वह अपने घर की दौलत छोड़कर लोगों के घर से ढूंढ़ती फिरती है, ५. ज्ञानियों, महर्षियों और सन्तों की निन्दा होती है।

¹पंडित अच्छर को बूझि गया,
फिर नहिं पोथी वह बाँचैगा।
भिच्छुक सेती बादसाह भया,
वह नहिं भिच्छा को जाचैगा² ॥
मूरति की सूरति आप भया,
मूरति आगे क्या नाचैगा।
पलटू जगत की चाल भूलै,
जब अपने रंग में राचैगा ॥
(भाग २, झूलना ६५)

पलटू साहिब कहते हैं कि मैं सीधे रास्ते पर चलता हूँ परन्तु लोग कहते हैं कि मेरी चाल टेढ़ी है। वे यह नहीं जानते कि सन्तों का मार्ग ही वास्तव में सीधा मार्ग है :

सूधी मेरी चाल है सब को लागै टेढ़ ॥
सब को लागै टेढ़ बूझ बिनु कौन बतावै।
आपु चलै सब टेढ़ टेढ़ हमको गोहरावै ॥
हम रहते निहकरम नाहिं करमन की आसा।
तुम्हरे तीरथ बरत बहुरि मूरति बिस्वासा ॥
हमरे केवल राम आन को नाहीं जानों।
तुम्हरे देवता पित्र भूत की पूजा मानों ॥
पलटू उलटा लोग सब नाहक करते मेढ़³।
सूधी मेरी चाल है सब को लागै टेढ़ ॥
(भाग १, कुंडली २१३)

सूधी मारग मैं चलौं हँसै सकल संसार ॥
हँसै सकल संसार करम की राह बताई।
लोक बेद की राह चला हमसे नहिं जाई ॥

---

१. जो ज्ञानी सच्चे नाम का भेद पा लेता है, वह वाचक ज्ञान का बन्दी नहीं रहता, २. मांगेगा, ३. निन्दा।

सूधी लिहा तकाय राह संतन की पाई ।
मन में भया अनन्द छूटि गई मव दुचिताई[१] ॥
उन के इहवै हेतु[२] राह यह हमरी आवै ।
इहै बूझि कै हँसै हाथ से निबुका[३] जावै ॥
पलटू सब का एक मत को अब करै विचार ।
सूधी मारग मैं चलौं हँसै सकल मंसार ॥

(भाग १, कुंडली २०४)

मैं अपने रंग बावरी जरि जरि मरते लोग ॥
जरि जरि मरते लोग सोच नाहक को करते ।
पर संपत्ति को देखि मूढ़ बिनु मारे मरते ॥
ना काहू की जाति पाँति हम बैठन जाई ।
लोग करैं चौवाव[४] एक को एक बुलाई ॥
चलिहौं सूधी चाल राम के मारग माहीं ।
देव पितर तजि करम मानौं काहू को नाहीं ॥
पलटू हम को देखि कै लोगन के भा रोग ।
मैं अपने रंग बावरी जरि जरि मर्ग्ते लोग ॥

(भाग १, कुंडली २१४)

पलटू साहिब कहते हैं कि लोग मेरी बड़ाई देख कर चकित हैं । लोग मेरे साथ ईर्ष्या करते हैं कि यह कल का बनिया आज इतना बड़ा भक्त कैसे बन गया ? वे बहुत परेशानी में हैं कि इस पाखण्डी की लोगों में इतनी मानता कैसे है ? पण्डित, बैरागी तथा काजी मेरी जान के दुश्मन बन गए .

सब बैरागी बटुरि कै पलटुहि किया अजात॥
पलटुहि किया अजात प्रभुता देखि न जाई ।
[५]बनिया काल्हिक भक्त प्रगट भा सब दुनियाई[६] ॥
हम सबसे बड़े महन्त ताहि को कोउ न जानै ।

१. दो चित्त वाली, २. वाह, ३. निकला, ४. निन्दा, ५. कल का भक्त हुआ बनिया, ६. सबसे अलग कर के ।

वनिया करै पखंड ताहि को सब कोउ मानै ॥
ऐसी इर्षा आनि कोऊ ना आवै खाई ।
वनिया ढोल बजाय रसोई दिया लुटाई ॥
माल पुवा चारिउ वरन बाँधि लेत कछु खात ।
सब वैरागी बटुरि कै पलटुहि किया अजात ॥

(भाग १, कुंडली २५५)

चितावनी तथा उपदेश

पलटू साहिब मनुष्य को उपदेश करते हैं कि सारा संसार मिट्टी है, नष्ट होने वाला है। संसार में मिलने वाले सुख तथा खुशियाँ भी क्षण-भंगुर हैं। यहाँ से कुछ भी हमारे साथ नहीं जा सकता। संसार काँच में से निकलने वाले प्रकाश के समान है। यदि यौवन का अभिमान है तो क्या कभी बुढ़ापा नहीं आयेगा? सुन्दरता का तथा धन का अभिमान करते हो तो सोचो कि ये भी आग की भेंट हो जायेंगे। मनुष्य इन क्षण-भंगुर खुशियों में लीन है तथा इस भ्रम में है कि मैं कभी नहीं मरूँगा, 'जानता अमर हूँ, मरूँगा नहीं।' वह यह नहीं समझने का प्रयत्न करता कि अन्त में काल सब को खा जायेगा। पलटू साहिब ने साहूकार, व्यापारी, सूखे हुए तालाब तथा जहाज़ आदि के उदाहरण देकर समझाया है कि संसार चलायमान है तथा संसार में रहने का समय बहुत थोड़ा है। संसार में जीव शब्द, नाम या प्रभु-भक्ति का धन इकट्ठा करने के लिए आता है। उसको अपना समय व्यर्थ के या झूठे कामों में बरबाद नहीं करना चाहिए। उसको नाम तथा गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा तथा सत्संग का लाभ उठा कर जन्म सफल करने का प्रयत्न करना चाहिए :

भूलि रहा संसार काँच की झलक में।
बनत लगा दस मास उजाड़ा पलक में॥
रोवन वाला रोया आपनी दाह से।
अरे हाँ पलटू सब कोइ छेंके ठाढ़ गया किस राह से॥
(भाग २, अरिल ४०)

दिना चारि का जीवना, का तुम करौ गुमान ।
पलटू मिलि है खाक में, घोड़ा बाज निसान ॥
(भाग ३, साखी १९)

सुर नर मुनि इक समय सबै मरि जाहिंगे ।
राजा रंक फकीर काल धै खाहिंगे ॥
तीन लोक सब डेरै भीम की हाँक में ।
अरे हाँ पलटू जोधा भीम समान मिले हैं खाक में ॥
(भाग २, अरिल ३९)

*मातु पिता सुत बन्धु, कोऊ नहिं अपना हो ।
छिन में होत परार[1], सकल जग सपना हो ॥
माया रूपी नारि, रहत सँग लागी हो ।
[2]हंसा कीन्ह पयान, प्रेत कहि भागी हो ॥
धावन धाये लोग, वेगि रथ साजा हो ।
करहिं अमंगलचार, कहाँ गये राजा हो ॥
लाइ दिह्यो मुख आगि, काठ वहु भारा हो ।
पुत्र लिहे कर बाँस, सीस तकि मारा हो ॥

*गुरु तेग बहादुर साहिब भी जीव को सावधान करते हैं कि सब रिश्ते स्वार्थ के हैं। यहाँ कोई सम्बन्ध पक्का या सच्चा नहीं है। सुख में सब लोग सम्बन्धी बन कर आ जाते हैं परन्तु अन्त समय के दुःख में कोई किसी का साथी नहीं बनता। जो पत्नी जीते-जी अधिक से अधिक प्यारी लगती है, मृत्यु के समय पति की देह को प्रेत समझ कर उससे दूर दौड़ती है। अन्त समय परमेश्वर या उसका नाम ही सहाई होने वाली एक मात्र वस्तु है :

प्रीतम जानि लेहु मन माही ॥
अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही ॥
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहूदिसि घेरै ॥
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोऊ न आवत नेरै ॥
घर की नारि बहुत हितु जा सिउ सदा रहत संग लागी ॥
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी ॥
इह बिधि को बिउहारु बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ ॥
अंत बार नानक बिनु हरि जी कोऊ कामि न आइओ ॥
(आदि ग्रन्थ, ६३४

१. पराया, बेगाना, २. जब आत्मा निकल गई।

है बैरिन के मूल, तिन्हें हित जाना हो।
पलटूदास गुरु-ज्ञान बूझि अलगाना[1] हो॥
(भाग ३, शब्द १०७)

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा॥
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हाँ पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना॥
(भाग २, अरिल १६)

फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुन्दरी संग में॥
सूते छाती लाय परम आनन्द है।
अरे हाँ पलटू खबरि पूत को नाहिं काल को फन्द है॥
(भाग २, अरिल ४६)

पलटू मैं रोवन लगा, देखि जगत की रीति।
[2]नजर छिपावैं संत से, बिस्वा से है प्रीति॥
(भाग ३, साखी १४६)

मेरे मनुआँ रे तुम तो निपट अनारी॥
कौड़ी कौड़ी लाख बटोरेहु, नाहक किहेहु बेगारी।
तहु चढ़ि चलेहु चारि के काँधे, दूनों हाथ पसारी॥
बहुरि बहुरि कै राँध परोसी, आये मूड़ फेकारी[3]।
जाति कुटुंब सब रोवन लागे, सँग लागी बूढ़ि महतारी[4]॥
तुहरे संग कोऊ नहिं जाई, कोठा महल अटारी।
अपने स्वारथ को सब रोवैं, झूठ मूठ कै आर[5] रो॥
धरमराय जब लेखा मँगिहै, करबेहु कौन बिचारी।
पलटू कहत सुनो भाइ साधो, इतनी अरज हमारी॥
(भाग ३, शब्द १२)

---

१. अलग हो जा अर्थात् इनका त्याग कर दे, २ सन्तों से दूर रहते हैं और माया रूपी वेश्या से प्यार करते हैं, ३. सिर खोले, ४. माता, ५ दम्भ।

जीवन कहिये झूठ साच है मरन को।
मूरख अजहूँ चेति गहो गुरु सरन को ॥
मास के ऊपर चाम चाम पर रंग है।
अरे हाँ पलटू जैहै जीव अकेल कोऊ ना संग है ॥

(भाग २, अरिल ३७)

पानी बीच बतासा साधो. तन का यही तमासा है ॥
मुट्ठी बाँधे आया बंदा. हाथ पसारे जाता है।
ना कुछ लाया न ले जायगा, नाहक क्यों पछिताता है ॥
जोरु कौन खसम है किसका. कैसा तेरा नाता है।
पड़ा बेहोस होस कर बंदे, विषय लहर में माता है ॥
ज्यों ज्यों बंदे तेरी पलक परत है, त्यों त्यों दिन नगिचाता है।
नेकी बदी तेरे संग चलेगी, और सब झूठी बाता है ॥
[1]प्रान तुम्हारे पाहुन बंदे, क्यों रिस किये कुहाता[2] है।
पलटूदास बंदगी चूके, बन्दा ठोकर खाता है ॥

(भाग २, शब्द ३३)

पैदा भया मुट्ठी बाँधे,
फिरि हाथ पसारे जायगा जी।
जने चारि कै काँधे चढ़ि चाले,
आखिर को फेरि पछितायगा जी ॥
दुनियाँ दौलत इहाँ छूटै,
उहाँ मार घनेरी खायगा जी।
पलटू जब बूझि है धरम राजा,
उहाँ तब क्या बतियायगा जी ॥

(भाग २, झूलना २२)

पलटू नर तन पाइ कै, मूरख भजै न राम।
कोऊ ना सँग जायगा, सुत दारा धन धाम ॥

(भाग २, साखी ११)

---

१. तेरे प्राण मेहमान हैं, २. मरवाना, कत्ल करवा लेना।

पलटू गुनना छोड़ि दे, चहै जो आतम सुक्ख।
संसय सोइ संसार है, जरा[1] मरन को दुक्ख ॥

(भाग १, साखी ८४)

आया मूठी बाँधि पसारे जायगा।
छूछा[2] आवत जात मार तू खायगा ॥
किते विकरमाजीत साका-बँधि[3] मार गये।
अरे हाँ पलटू राम नाम है सार सँदेसा कहि गये ॥

(भाग २, अरिल ४५)

जो जनमा सो मुआ नाहिं थिर कोइ है।
राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है ॥
चलती चक्की बीच परा जो जाइ कै।
अरे हाँ पलटू साबित बचा न कोइ गया अलगाइ कै ॥

(भाग २, अरिल ४६)

राम कृस्न परसराम ने मरना किया कबूल ॥
मरना किया कबूल मरै से बचै न कोई।
दसचौदह[4] औतार काल के बसि में होई ॥
सुर नर मुनि सब देव मुए सब मौत अपानी।
देव पितर ससि भानु पवन नभ धरती पानी ॥
राजा रंक फकीर सूर और बीर करारी।
साधु सती औ अगिन मुए जिन सब कोजारी ॥
पलटू आगे मरि रहो आखिर मरना मूल।
राम कृस्न परसराम ने मरना किया कबूल ॥

(भाग १, कुंडली ११७)

कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार ॥
[5]काची माटि कै घैला हो, फूटत नहिं बेर।

---

१. बुढ़ापा, २. खाली, ३. साका बाँध के मौत मर गए, ४. चौबीस, ५. कच्ची मिट्टी का ढेला है जिसके टूटते देर नहीं लगती।

पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर ॥
[1]धूंआ को धौरेहर हो, [2]बारू के भीत ।
पवन लगे झरि जैहै हो, तृन ऊपर सीत ॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार ।
सपने कै सुख संपत्ति हो, ऐसो संसार ॥
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस द्वार ।
पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार ॥
[3]आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग ।
पलटूदास उड़ि जैवहु हो, जब देइहि दाग ॥

(भाग ३, शब्द ३०)

सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय ॥
सभै काल बसि होय मौत कालौ की होती ।
पारब्रह्म भगवान मरै ना अविगत जोती ॥
जा को काल डेराय ओट ताही की लीजै ।
[4]काल की कहा बसाय भक्ति जो गुरु की कीजै ॥
जरामरन[5] मिटि जाय सहज में औना जाना ।
जपि कै नाम अनाम संत जन तत्व समाना ॥
वैद धनंतर मरि गया पलटू अमर न कोय ।
सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय ॥

(भाग १, कुंडली ४५)

समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय ॥
पलटू को पछिताय दिना दस सबै मुसाफिर ।
हिलि मिलि रहैं सराय भोर भये पंथ पड़ा सिर ॥
इक आवै इक जाय रहै ना पैंड़ा खाली ।
इक ओर काटी जाय दूसरा लावै माली ॥

---

१. धुएं का महल, २. रेत की दीवार, ३. जब काल आग लगायेगा तो तू आतिशबाजी की तरह जल जायेगा, ४. काल की क्या शक्ति है ! ५. बुढ़ापा और मौत ।

बूड़ा बारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।
सबै बटाऊ[1] लोग काहे को पचिये मरि मरि॥
मरने वाला मरि गया रोवै सो मरि जाय।
समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय॥

(भाग १, कुंडली ११८)

देह और गेह परिवार को देखि कै,
  माया के जोर में फिरै फूला।
जानता सदा दिन ऐसे ही जायेंगे,
  सुंदरी संग सुखपाल झूला॥
चारि जून खात है बैठि कै खुसी से,
  बहुत मुटाई कै भया थूला।
सेज-बँदर[2] बाँधि कै पान को चाभते,
  [3]रैन दिन करत है दूध कूला॥
जानता अमर हूँ मरूँगा अब नहीं,
  [4]बाघ की रौस जा काल हूला।
दास पलटू कहै नाम को याद करु,
  स्वाद की लहरि में काह भूला॥

(भाग २, रेखता २१)

झूठ साच कहि दाम जोरि के गाड़ने।
[5]औषधि कूटहि रोज जिये के कारने॥
जीयँ बरष हजार आखिर को मरैगा।
अरे हाँ पलटू तन भी नाहीं संग कहा लै करैगा॥

(भाग २, अरिल ११)

चोला भया पुराना आज फटै की काल॥
आज फटै की काल तेहू पै है ललचाना।

---

१. मुसाफ़िर, २. डोरी जिससे बिछौने को ... रातदिन दूध की कुल्ले करते है, ४. काल ने बा... रहने के लिये प्रतिदिन औषधियां तैयार करता है

पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर ॥
[1]धूँआ को धौरेहर हो, [2]बारू के भीत ।
पवन लगे झरि जैहै हो, तृन ऊपर सीत ॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार ।
सपने कै सुख संपत्ति हो, ऐसो संसार ॥
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस द्वार ।
पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार ॥
[3]आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग ।
पलटूदास उड़ि जैबहु हो, जब देइहि दाग ॥

(भाग ३, शब्द ३०)

सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय ॥
सभै काल बसि होय मौत कालौ की होती ।
पारब्रह्म भगवान मरै ना अविगत जोती ॥
जा को काल डेराय ओट ताही की लीजै ।
[4]काल की कहा बसाय भक्ति जो गुरु की कीजै ॥
जरामरन[5] मिटि जाय सहज में औना जाना ।
जपि कै नाम अनाम संत जन तत्व समाना ॥
बैद धनंतर मरि गया पलटू अमर न कोय ।
सुर नर मुनि जोगी जती सभै काल बसि होय ॥

(भाग १, कुंडली ४५)

समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय ॥
पलटू को पछिताय दिना दस सबै मुसाफिर ।
हिलि मिलि रहैं सराय भोर भये पंथ पड़ा सिर ॥
इक आवै इक जाय रहै ना पेंड़ा खाली ।
इक ओर काटी जाय दूसरा लावै माली ॥

---

१. धुएँ का महल, २. रेत की दीवार, ३. जब काल आग लगायेगा तो तू आतिशबाजी की तरह जल जायेगा, ४. काल की क्या शक्ति है! ५. बुढ़ापा और मौत ।

वूढ़ा वारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।
सर्व बटाऊ[१] लोग काहे को पचिये मरि मरि॥
मरने वाला मरि गया रोवै सो मरि जाय।
समुझावै सो भी मरै पलटू को पछिताय॥
(भाग १, कुडली ११८)

देह और गेह परिवार को देखि कै,
माया के जोर में फिरै फूला।
जानता सदा दिन ऐसे ही जायेंगे,
सुंदरी संग सुखपाल झूला॥
चारि जून खात है बैठि कै खुसी से,
बहुत मुटाई कै भया थूला।
सेज-बँद[२] बाँधि कै पान को चाभते,
[३]रैन दिन करत है दूध कूला॥
जानता अमर हूँ मरूँगा अब नहीं,
[४]बाघ की रौस जा काल हूला।
दास पलटू कहै नाम को याद करु,
ख्वाब की लहरि में काह भूला॥
(भाग २, रेख्ता २४)

झूठ साच कहि दाम जोरि के गाड़ने।
[५]औपधि कूटहि रोज जिये के कारने॥
जीयै वरप हजार आखिर को मरैगा।
अरे हाँ पलटू तन भी नाही संग कहा लै करैगा॥
(भाग २, अरिल ४१)

चोला भया पुराना आज फटै की काल॥
आज फटै की काल तेहू पै है ललचाना।

---

१. मुसाफ़िर, २. डोरी जिससे बिछौने को पलंग के पायों से बाँध देते है, ३. रातदिन दूध की कुल्ले करते है, ४. काल ने बाघ की भाँति धा जाता है, ५ जीवित रहने के लिये प्रतिदिन औषधियाँ तैयार करता है।

तीनों पन गे बीत भजन का मरम न जाना ।।
नख सिख भये सपेद तेहू पै नाहीं चेतै ।
जोरि जोरि धन धरै गला औरन को रेतै ।।
अब का करिहौ यार काल ने किहा तगादा ।
चलै न एकौ जोर आय जब पहुँचा वादा ।।
पलटू तेहू पै लेत है माया मोह जँजाल ।
चोला भया पुराना आज फटै की काल ।।
(भाग १, कुंडली ४६)

तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल ।।
सिर पर बैठा काल दिनो दिन वादा पूजै ।
आज काल में कूच मुरख नहि तोकँह सूझै ।।
कौड़ी कौड़ी जोरि ब्याज दे करते बट्टा ।
सुखी रहै परिवार मुक्ति में होवत ठट्ठा ।।
तू जानै मैं ठग्यो आप को तुही ठगावै ।
[1]नाम सजीवन मूर छोरि के माहुर खावै ।।
पलटू सेखी ना रही चेत करो अब लाल ।
तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल ।।
(भाग १, कुंडली ४३)

पलटू पल में कूच है, क्या लावो बड़ी देर ।
अब की बार जो चूकहू, फिर चौरासी फेर ।।
(भाग ३, साखी १३)

काल आय नियराना है, हरि भजो सखी री ।।
सीत बात कफ घेरि लेहिंगे, करिहैं प्रान पयाना है ।
तीनिउँ पन धोके में बीते, अब क्या फिरै भुलाना है ।।
घाट बाट में रोकै टोकै, माँगै गुरु परवाना है ।
पलटूदास होय जब गुरुमुख, तब कुछ मिलै ठिकाना है ।।
(भाग ३, शब्द १४३)

---

१. नाम रूपी संजीवनी बूटी को छोड़ कर विष खाता है ।

धूआँ का धौरेहरा[१] ज्यों वालू की भीत ॥
ज्यों वालू की भीत ताहि को कौन भरोसा ।
ज्यों पक्का फल डारि गिरत से लगै न दोसा ॥
कच्चे घड़े ज्यों नीर पानी के बीच बतासा ।
[२]दारू भीतर अगिनि जिवन को ऐसी आसा ॥
पलटू नर तन जात है [३]घास के ऊपर सीत ।
धूआँ का धौरेहरा ज्यों वालू की भीत ॥

(भाग १, कुंडली ४७)

[४]काल वली सिर ऊपर हो, तीतर का बाज ।
[५]चंगुल तर चिचियैहो हो, तव मिलि हैं मिजाज ॥
भजन बिना का नर तन हो, रैयत विनु राज ।
बिना पिता का बालक हो, रोवै विनु साज ॥
[६]देव रु पितर उपासक हो, परिहै जम गाज ।
[७]बहुत पुरुष कै नारी हो, बिस्वा नहि लाज ॥
[८]काम क्रोध विनु मारे हो, का दिहे सिर ताज ।
पलटुदास धृग जीवन हो, सब झूठ समाज ॥

(भाग ३, शब्द ११)

[९]भया तगादा साहु का गया वहाना भूल ॥
गया वहाना भूल नफा में मर गँवाया ।
[१०]भया साहु से झूठ बैठि के पूँजी खाया ॥

---

१. महल, २, जिस प्रकार शराब में आग हो, ३. जिस प्रकार ठण्ड में घास सूख जाता है, ४. काल सिर पर उस प्रकार खड़ा है जिस प्रकार तीतर या कोए के सिर पर बाज होता है, ५. जब वह अपने खूनी पंजे से तेरा मांस नोंचेगा और तू चिल्लायेगा तो तेरी होश ठिकाने आयेगी, ६. तू देव-पितरों की पूजा करता है, परन्तु जब यम तुम पर टूटेगा तो इसका कोई लाभ नहीं होगा, ७. अनेक इष्टों की पूजा इस प्रकार है जिस प्रकार कोई बेशर्म वेश्या अनेक पुरुषों का संग करती है, ८. जब तक तू काम, क्रोध आदि को नहीं मारता, सिर पर ताज धारण करने का क्या लाभ है ! ९. जब काल रूपी साहु तगादा करता है तो तुझे कोई बहाना नहीं सूझता, १०. तूने वह वायदा पूरा नहीं किया कि साँसों की पूँजी हरि-सुमिरन में लगाऊँगा । तूने साँस व्यर्थ नष्ट किए ।

नहीं लिहा हरि नाम करी नहिं संतन सेवा ।
तीनों पन गये बीत पूजने देवी देवा ॥
[1]सारी सरहज सास धाइ के लुटि मजा री ।
तुम्हरे सीस बिसान कोऊ ना संग तुम्हारी ॥
पलटू मानैं काल ना कठिन चलावैं सूल ।
भया तगादा साहु का गया बहाना भूल ॥
(भाग १, कुंडली ५२)

काल महासिल[2] साहु का सिर पर पहुंचा आय ॥
सिर पर पहुँचा आय उजुर कछु एको नाहीं ।
पहुँचा घै अगुआय[3] लिहे धरि मारत जाहीं ॥
मार परे भा चेत लगा तब करन बिचारा ।
मूरख के परसंग बैठि कै बात बिगारा ॥
चलै न एको जोर बहाना का को लेवै ।
नहीं ब्याज नहिं मूर साहु को का लै देवै ॥
पलटू बादा टरि गया [4]पूंजी गई बराय ।
काल महासिल साहु का सिर पर पहुंचा आय ॥
(भाग १, कुंडली ५३)

गाफिल में क्या सोवता, सुन मुरख अनारी ।
साहिब से दिल लगाय ले, यह अरज हमारी ॥
जोरु बेटा कौन का, किस का है भाई ।
मुलुक खजाना कौन का, कोउ संग न जाई ॥
हाथी घोड़ा तंबुवा[5], आवै केहि कामा ।
फूलन सेज बिछावते, फिर गोर[6] मुकामा ॥
आलम[7] का पातसा हुआ, तूही कुल कुल्ला ।
यह सब ख्वाब की लहर है, दरियाव का बुल्ला ॥

---

१. तू साले, सालियों और सास अर्थात् माया के रिश्तों का मजा लेता रहा परन्तु किए हुए पाप तेरे सिर पर हैं और कोई तेरे साथ नहीं जायेगा, २. वसूल करने वाला सिपाही, ३. पहुँना, ४. पूंजी नष्ट कर दी, ५. तंबू, ६. कब्र, ७. संसार ।

पाव घरी में कूच है, क्या देरी लावै।
पल्टू की सतराम है, तोहि काल बुलावै॥
(भाग १, शब्द ११३)

ज्यों ज्यों सूखै ताल है त्यों त्यों मीन मलीन॥
त्यों त्यों मीन मलीन जेठ में सूख्यो पानी।
तीनों पन गये बीति भजन का मरम न जानी॥
कँवल गये कुम्हिलाय हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि ठांव ढेला चिहराना[1]॥
ऐसी मानुष देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार आप से काम बिगारी॥
पलटू बरस औ मास दिन पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों ज्यों सूखे ताल है त्यों त्यों मीन मलीन॥
(भाग १, कुंडली ५६)

लादि चला बंजारा है, कोउ संग न साथी॥
जाति कुटुम सब रुदन करत है, [2]फेरि बैठि सुत दारा है॥
छुटिगै बिरदी लुटिगै टांडा[3], निकरि गया वह प्यारा है॥
बैठे काग सून भा मंदिल, कोई नहीं रखवारा है॥
पलटूदास तजो मृगतृस्ना, झूठा सकल पसारा है॥
(भाग ३, शब्द २६)

क्या सोवै तू बावरी चाला जात बसंत[4]॥
चाला जात बसंत कंत ना घर में आये।
धृग जीवन है तोर कंत बिन दिवस गँवाये॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोवन की माती।
खसम रहा है रूठि नहीं तू पठवै पाती॥
लगै न तेरो चित्त कंत को नाहिं मनावै।
का पर करै सिंगार फूल की सेज बिछावै॥

---

१. तालाब के सूख जाने पर मिट्टी फट जाती है और उसमें पानी थोड़ा रह जाता है, उसे चिहरना कहते हैं। २. स्त्री मुंह फेर कर बैठ जाती है। ३. बहार ४. यहाँ मनुष्य जन्म को बसन्त कहा है।

पलटू ऋतु भरि खेलि ले फिर पछितैहै अंत ।
क्या सोवै तू बावरी चाला जात वसंत ।।
(भाग १, कुंडली ४१)

वजा नगारा कूच का, लदा न एको ऊँट ।
पलटू तलवी[१] अस भई, तन भी गया है छूट ।।
(भाग ३, साखी १८)

पाती आई मोरे पीतम की, साईं तुरत बुलायो हो ।।
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न वाती ।
वाँह पकरि जम ले चले, कोई संग न साथी ।।
सावन की अँधियारिया, भादों निज राती ।
चौमुख पवन झकोरही, धड़कै मोरि छाती ।।
चलना तो हमैं जरूर है, रहना यहँ नाहीं ।
का लैके मिलव हुजूर से, गाँठी कछु नाहीं ।।
पलटुदास जग आय कै, नैनन भरि रोया ।
जीवन जनम गँवाय के, आपै से खोया ।।
(भाग ३, शब्द २८)

[२]जो दिन गया सो जान दे, मूरख अजहूँ चेत ।
कहता पलटूदास है, करि ले हरि से हेत ।।
(भाग ३, साखी १५)

चोर मूँसि घर पहुँचा मूरख पहरा देइ ।।
मूरख पहरा देइ भोर भये आपुइ रोवै ।
रांध परोसी चोर माल धरि गाफिल सोवै ।।
सुनहु साहु धनवंत सवै सम्पति के घाती ।
नहि कीजै विस्वास जागत रहिये दिन राती ।।
दिन दिन वढ़ती होइ आन को चित्त न दीजै ।
सव से रहिये दूर केहू को मित्र न कीजै ।।

---

१. बुलावा आ गया, आवाज आ गई, २. जो समय बीत गया है, उसकी चिन्ता न कर, आगे के लिये होशियार हो जा ।

[1]पलटू जो ऐसे रहै द्रव्य कोऊ नहिं लेइ।
चोर मूंसि घर पहुंचा मूरख पहरा देइ॥

(भाग १, कुंडली ११५)

संसार की विनाशशीलता तथा इन्द्रियों के भोगों की असारता का वर्णन करने के बाद पलटू साहिब जीव को उपदेश करते हैं कि तुझे अपना पार उतरने का सामान तैयार करना चाहिए, दूसरों की चिंता नहीं करनी चाहिए, 'तुझे पराई क्या पड़ी, अपनी ओर निबेर'। आप समझाते हैं कि करनी भी केवल अपनी ही साथ जाती है तथा अपने किए कर्म भी स्वयं ही भुगतने पड़ते हैं। आप समझाते हैं कि हे जीव, तुझे न दूसरों के शुभ कर्मों का लाभ पहुँच सकता है, न बुरे कर्मों से हानि पहुँच सकती है। तू पल-पल अपना वास्तविक काम कर। वह काम भजन, सुमिरन, मालिक की भक्ति तथा सतगुरु का प्रेम है। सतगुरु ने तुझे नाम का जो खजाना दिया है, उसकी संभाल कर। तू सतगुरु की शरण में रह क्योंकि उसके बिना कोई भी संसार रूपी सागर से निकलने का रास्ता नहीं बता सकता तथा वह अन्दर की खिड़की नहीं खोल सकता जिसके रास्ते जीव मायावी संसार से छलांग लगा कर दूसरी ओर चला जाए।

पलटू साहिब उपदेश करते हैं कि व्यर्थ की बातें छोड़ देनी चाहिएँ तथा काम, क्रोध से बचना चाहिए। आप कहते हैं कि जीवात्मा शेर के समान है, इसको उचित है कि मनमुखों रूपी खरगोशों का संग छोड़ दे। जीव को चाहिए कि वह सतगुरु की सेवा में तत्पर रहे तथा सतगुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार भजन-सुमिरन में मग्न रहे। केवल सतगुरु सेवा तथा भजन-सुमिरन से ही नाम का प्याला मिलता है 'सतगुरु तोहि नाम पिलावें।' जीव का वास्तविक लाभ सतगुरु-सेवा, सतगुरु-भक्ति तथा नाम की कमाई में ही है

१. जो इस प्रकार होशियार रहता है उसकी राम नाम की [illegible] सकता।

तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर ॥
अपनी ओर निबेर छोड़ि गुड़ विष को खावै ।
कुवाँ में तू परै और को राह बतावै ॥
औरन को उँजियार मसालची जाइ अँधेरे ।
[1]त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे ॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै ।
घर में लागी आग दौरि के घूर बुतावै ॥
पलटू यह साची कहै अपने मन का फेर ।
तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर ॥

(भाग १, कुंडली ११९)

अपनी अपनी करनी अपने अपने साथ ॥
अपने अपने साथ करै सो आगे आवै ।
बाप कै करनी बाप पूत कै पूतै पावै ॥
जोरू कै जोरुहि फलै खसम कै खसम को फलता ।
अपनी करनी सेती जीव सब पार उतरता ॥
नेकी बदी है संग और ना संगी कोई ।
देखौ बूझि विचारि संग ये जैहैं दोई ॥
पलटू करनी और की नहीं और के साथ ।
अपनी अपनी करनी अपने अपने साथ ॥

(भाग १, कुंडली १५२)

तो कहँ कोऊ कुछ कहै कीजै अपनो काम ॥
कीजै अपनो काम जगत को भूकन[2] दीजै ।
जाति बरन कुल खोय संतन को मारग लीजै ॥
लोक वेद दे छोड़ि करै कोउ कितनो हाँसी ।
[3]पाप पुन्न दोउ तजौ यही दोउ [4]गर की फाँसी ॥

---

१. माया में डूबा हुआ है और ज्ञान की बातें करता है, २. भौंकने दो, ३. सन्त-मत में पाप और पुन्य दोनों को बंधनकारी माना गया है क्योंकि दोनों का भला-बुरा फल भोगने के लिये देह धारण करनी पड़ती है। केवल गुरु-भक्ति और नाम-भक्ति को ही परमेश्वर प्राप्ति और सच्ची मुक्ति का वास्तविक साधन माना जाता है, ४. गले की फांसी।

करम न करिहौ एक भरम कोउ लाख दिखावै ।
[1]टरै न तेरी टेक कोटि ब्रह्मा समुझावै ॥
पलटू तनिक न छोड़िहौ जिउ के संगै नाम ।
जो कहँ कोऊ कुछ कहै कीजै अपनो काम ॥
(भाग १, कुण्डली १२१)

[2]जौ लगि लागै हाथ ना करम न कीजै त्याग ॥
*करम न कीजै त्याग जक्त की वूझ बड़ाई ।
ओहु ओर डारै तोरि एहर कुछ एक न पाई ॥
उत कुल से वे गये नाहिं इत मिला ठिकाना ।
केहू ओर में नाहिं बीच के बीच भुलाना ॥
जेहुँ जेहुँ पावै वस्तु तेहुँ तेहुँ करम को छोड़ै ।
खातिर जमा को लेइ जगत से मुहड़ा मोड़ै ॥
पलटू [3]पग धरु निरख करि ता तें लगै न दाग ।
जो लगि लागै हाथ ना करम न कीजै त्याग ॥
(भाग १, कुण्डली १३७)

गुप्त मते की बात जगत में फहस[4] न कीजै ॥
पात्र सुपात्र देखि जब जीजै, वस्तु ताहि को दीजै ॥

---

१. सतगुरु में विश्वास न डोले, चाहे ब्रह्मा भी आकर उल्ट कहे, २. जब तक परमात्मा से मिलाप न हो जाये, अपना प्रयत्न बन्द न करें।

*यहाँ बहुत गूढ़ परमार्थी उपदेश कर रहे हैं कि जब तक जीव को अन्तर में साक्षात अनुभव न हो जाये, उस को प्रयत्न का त्याग नहीं करना चाहिये। जैसे-जैसे अन्दर रूहानी तरक्की होगी, बिना प्रयत्न के कर्म छूटता जायेगा। सन्त रविदास जी भी उपदेश करते हैं कि फूल, फल के लिये होता है। जब फल लग जाता है तो फूल सूख जाता है। इस प्रकार कर्म अन्तर में शब्द या नाम रूपी सत्य के साक्षात मिलाप या ज्ञान के लिये है। जब अन्तर में शब्द या परमेश्वर रूपी सत्य का सीधा अनुभव (ज्ञान) हो जाये तो फिर किसी प्रकार के कर्म की आवश्यकता नहीं रहती :

फल कारन फूली बनराई ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाई ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु ॥ गिआनु भइआ तह करमह नासु ॥
(रविदास—आदि ग्रन्थ, ११६७)

३. देखकर पाँव रखें, ४. प्रगट।

यह संसार मोम का कपड़ा, जल विच कोर न भींजै ॥
तजि वकवास मौन ह्वै रहिये, वोलत काया छीजै ॥
पलटू कहै सुनो भाई साधो, वचन गांठि गहि लीजै ॥

(भाग ३, शब्द ७७)

फक़ीर के वालके गुसा ना कीजिये,
गुसा फकीर को नाहि अच्छा ।
वात मीठी कहो नीक[१] सवको लगै,
भेप [२]भगवंत की पकरि पच्छा ॥
रहनि ऐसी रहो वहुत गरीव ह्वै,
सकल संसार मिलि करे रच्छा ।
दास पलटू कहै वहुत चुचुकारि कै,
वचन को मानि अव लेहु वच्चा ॥

(भाग २, रेख़ता ६२)

आसन दृढ़ ह्वै रहै जगत से हारना ।
निद्रा वसि में करै भूख को मारना ।
काम क्रोध को मारि आपु को खोवना ।
अरे हाँ पलटू पांव पसारि यार मौज से सोवना ॥

(भाग २, अरिल ७१)

[३]वीज वासना को जरै तव छूटै संसार ॥
तव छूटै संसार जगत से प्रीति न कीजै ।
लोभ मोह को जारि सत्य पद मारग लीजै ॥
मारै भूख पियास जगत की करै न आसा ।
काम क्रोध को जारि तजै सव भोग विलासा ॥
सदा रहै निर्वृत्त[४] चित्त ना अंतै जावै ।
मन को लेवै फेरि भजन में जाय लगावै ॥

---

१. अच्छा, २. प्रभु का सहारा लो, ३. यदि आशा-तृष्णा का वीज नष्ट हो जाये तो संसार से छुटकारा हो जाए ४. निष्काम ।

भजन आतुरी[1] कीजिये और बात में देर ॥
और बात में देर जगत में जीवन थोरा ।
मानुष तन धनं जात गोड़ धरि करौ निहोरा ॥
कांचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता ।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता ॥
भजि लीजे भगवान एही में भल है अपना ।
आवागौन छूटि जाय जनम की मिटै कलपना ॥
पलटू अटक न कीजिये चौरासी घर फेर ।
भजन आतुरी कीजिये और बात में देर ।

(भाग १, कुंडली ५०)

पलटू नर तन पाइ कै, भजै नहीं करतार ।
जम पुर बाँधे जाहुगे, कहौं पुकार पुकार ॥

(भाग ३, साखी १६)

भजि लीजे हरि नाम, काम सकल तजि दीजै ॥
मातु पिता सुत नारि बांधवा, आवै ना कोउ कामा ।
हाथी घोड़ा मुलुक खजाना, छुटि जैहैं धन धामा ॥
जब तुम आया मूठी बाँधे, हाथ पसारे जाना ।
सूखा हाथ जगत की माया, ताहि देखि ललचाना ॥
नर तन सुभग भजन के लायक, कौड़ी हाट विकाना ।
हरिगा ज्ञान परा कूसंगति, अमृत में विष साना ॥
एक न भूला दुइ ना भूला, भूला सब संसारा ।
पलटुदास हम कहा पुकारी, अब ना दोस हमारा ॥

(भाग ३, शब्द २५)

हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय ॥
गुनह करै ना कोय जेहि विधि राखै रहिये ।
दुख सुख कैसउ पड़ै केहू से तनिक न कहिये ॥
तेरे मन में और करन वाला है औरै ।
तू ना करै खराब नाहक को निस दिन दौरै ॥

१. जल्दी ।

वा को कीजै याद जाहि की मारी टूटै ।
आधी को तू जाय [1]घरहि में सम्मै फूटै ।
पलटू गुनह किये से भजन माहिं भंग होय ।
हरि को दास कहाय के गुनह करै ना कोय ॥

(भाग १, कुंडली १०९)

इक हरि भजि लेहु, मन मेरे यार मुसाफिर ॥
पानी पवन अगिन से जोरा, धरती और अकासा ।
पाँच तत्त का महल उठाया, तहाँ लिया तुम वासा ॥
को तुम कवन कहाँ ते आया, बारम्बार ठगाया ।
इतनी बात भुलै के कारन, फिरि फिरि गोता खाया ॥
इतनी बात चेत नहिं तुमको, जिस कारज को आया ।
माया मोह लालच के कारन, अपनो रूप भुलाया ॥
*मन के कारन रामचन्द्रजी, गये गुरु के पासा ।
खसर फसर में कारज नाहीं, कहते पलटूदासा ॥

(भाग ३, शब्द ७१)

पलटू नर तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर ।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥

(भाग १, साखी १७)

[2]जीव जाय तो जाय दे जन्म जाय बरु नष्ट ॥
जन्म जाय बरु नष्ट लोक की तजो बड़ाई ।

---

१. तू बाहर जाता है जबकि घर (अन्तर) में स्रोत फूटा हुआ है ।

*यहाँ समझा रहे हैं कि भगवान राम ने मन को जीतने के लिये गुरु धारण किया था, संसार को जीतने के लिए नहीं । परमार्थ का अटल नियम है कि परम सन्त-सतगुरु के बिना न मन वश में आ सकता है, न आत्मा शब्द में अन्दर लीन हो सकती है और न ही परमात्मा से मिलाप हो सकता है । राम, कृष्ण त्रिलोकीनाथ थे, परन्तु गुरु उन को भी धारण करना पड़ा :

राम कृष्ण से को बड़ो, तिन्हूं भी गुरु कीन ।
तीन लोक के नायका, गुरु आगे आधीन ॥

२. जान जाती है तो जावे परन्तु जिस उद्देश्य के लिये जन्म मिला है, वह न बर्बाद हो जाए ।

दुख नाना सहि रहो पड़ौ दरबार में जाई ॥
मात पिता निज बंधु तजो भगनी सुत नारी ।
तजि दो भोग विलास सहत रहो सब की गारी ॥
नाचो घूंघट खोलि ज्ञान का ढोल बजाओ ।
देखै सब संसार [1]कलाएँ उलटी खाओ ॥
पलटू नाम न छोड़ि हो सहि लो इतना कष्ट ।
जीव जाय तो जाय दे जन्म जाय बरु नष्ट ॥
(भाग १, कुंडली १२७)

पलटू नर तन पाइकै, आवैगा केहि काम ।
वहि मुख में कीड़ा परै, जो न भजै हरिनाम ॥
(भाग ३, साखी १६१)

पानी का को देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ॥
मुवा मुसाफिर प्यास डोर औ लुटिया पासै ।
बैठ कुवाँ की जगत जतन बिनु कौन निकासै ॥
आगे भोजन धरा थारि में खाता नाहीं ।
भूख-भूख करै सोर कौन डारै मुख माहीं ॥
दीया बाती तेल आगि है नाहि जरावै ।
खसम सोया है पास खसम को खोजन जावै ॥
पलटू [2]डगरा सूध अटकि कै परता गिर गिर ।
पानी का को देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ॥
(भाग १, कुंडली १३२)

माया औ बैराग दोऊ में बैर है ।
लियें कुल्हाड़ी हाथ मारता पैर है ॥
किया चहै बैराग मया में जायगा ।
अरे हाँ पलटू जो कोइ माहुर खाय सोई मरि जायगा ॥
(भाग २, अरिल ७३)

---

१. मन और आत्मा का मुख मोड़ कर बाहर से अन्दर और नीचे से ऊपर की ओर उल्टें, २. मार्ग सीधा है परन्तु यह गिरता फिरता है ।

*स्यार[1] की चाल को छोड़ वे बालके,
आपु को खूब दरिआफ[2] कीजै ।
सिंह है तुही तहकीक[3] कर आप में,
स्यार के संग को छोड़ दीजै ॥
अहार तो कीजिये आपु[3] से मारि कै,
और के मारा ना कधी लीजै ।
पलटू तू सिंह ह्वै गरज वे हाँक दे,
पकरि गजराज धै पाँव मीजै ॥

(भाग २, झूलना १६)

हरि चरचा से वैर संग वह त्यागिये ।
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिये ॥
सरवस वह जो देइ तो नाही काम का ।
अरे हाँ पलटू मित्र नही वह दुष्ट जो द्रोही राम का ॥

(भाग २, अरिल ७०)

फूली है यह केतकी भौरा लीजै बास ॥
भौंरा लीजै बास जन्म मानुष को पाया ।
करी न गुरु की भक्ति जक्त में आइ भुलाया ॥
भौरा कीजै चेत कहा तू फिरै भुलाना ।
हरि को नाम सुगंध छोड़ि पाड़र[4] लिपटाना ॥
ऋतु बसंत की जात कली को रस लै लीजै ।
बहुरि न ऐसो दाँव चेत चित भौरा कीजै ॥

---

*कथा प्रचलित है कि शेर का बच्चा भेड़ों में मिलकर अपने आपको भेड़ समझने लगा। किसी शेर ने उसे समझाया कि तू अपना आप पहचान कि तू शेर है। तू शेर की तरह गर्ज, शेर की तरह अपना शिकार स्वयं कर और भेड़ों का साथ छोड़ दे। यहां पलटू साहिब जीव को समझा रहे हैं कि हे जीवात्मा तू उस सतनाम का अंश है। तू इन्द्रियों का साथ छोड़कर मन रूपी हाथी को जीत ले। तू मन व इन्द्रियों के अधीन रहने की बजाय, इन पर विजय प्राप्त करके शरीर रूपी नगरी का राजा बन कर रह।

१. गीदड़, २. निश्चय, ३. दो अर्थों में काम में लिया गया है—एक स्वयं और दूसरा अहं, ४. एक बिना सुगन्धि का फूल, अर्थात मायावी पदार्थ।

पलटू कबहुँ ना मरै होय न जिव का नास।
फूली है यह केतकी भौंरा लीजै वास॥
(भाग १, कुंडली ११४)

एक ही फाँस में बझे[1] तिहुँ लोक सब,
बझे तिहुँ लोक इक संत छूटे।
[2]एक ही रास्ता कर्म का बड़ा है,
गये उस राह सो सभै लूटे॥
राह झाड़ी मंहै प्रेम के औघटे,
गये बचि संत नहिं रोम टूटे।
[3]दास पलटू कहै संत की राहि तजि,
कर्म की राह गे कर्म फूटे॥
(भाग २, रेखता ४३)

जाय संत सेवा में लागि रहै,
यही धर्म जिग्यास है जी।
तन मन सेती जब नाहि टरै,
करै चरन में बास है जी॥
दीन दयाल हैं संत बड़े,
जो पुजवै मन की आस है जी।
पलटू जो संत उपदेस करैं,
सोई कीजै बिस्वास है जी॥
(भाग २, झूलना ४९)

अब से खबरदार रहु भाई॥
सतगुरु दीन्हा माल खजाना, राखो जुगत लगाई।

---

१. बंधे हुए, २. लोग कर्मों के मार्ग को बड़ा समझते हैं, परन्तु कर्म बंधनकारी है क्योंकि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों का फल भोगने के लिये जन्म लेना पड़ता है, ३. जो सन्तों के नाम की कमाई का मार्ग त्याग कर कर्म-काण्ड के मार्ग पर चले, समझो उनके कर्म फूट गये, उनका भाग्य खोटा है।

पाव रती घटने नहिं पावै, दिन दिन होत सवाई ॥
छिमा सील की अलफी[1] पहिनो, ज्ञान लंगोटा लगाई ।
दया की टोपी सिर पर दै के, [2]और अधिक बनि आई ॥
वस्तु पाइ गाफिल मति रहना, निसु दिन करो कमाई ।
घट के भीतर चोर लगनु है, बैठे घात लगाई ॥
तन बंदूक सुमति कै सिंगरा, ज्ञान के गज ठहराई ।
सुरति पलीता हर दम सुलगै, कस पर राख चढ़ाई ॥
बाहर वाला लड़ा सिपाही, ज्ञान गम्य अधिकाई ।
पलटूदास आदि के अदली, हर दम लेत जगाई ॥
(भाग ३, शब्द ७१)

भजन करु मूरख कहँ भटकै रे ॥
यह संसार माया के लासा[3], छूटै नाहिं जो सिर पटकै रे ॥
माया मोह रैन का सपना, झूठे माँहि कहा अटकै रे ।
[4]भरा घट घड़ा हरि नाम अमी है, जग चहला मे लपटै रे ॥
मिलु सतगुरु तोहि नाम पिलावै, जावै तपनि जुगन जुग कै रे ।
नहिं डेरात जम बाँधि के ठगि है, [5]ऊपर गोड़ नरक लटकै रे ॥
(भाग ३, शब्द २७)

*गरमै गरमै हलुवा गंफा लीजै मारि ॥
गंफा लीजै मारि मनुष तन जात सिराना[6] ।
भजि लीजै भगवान [7]काल सिर पर नियराना ॥
मीठा है हरि नाम जियन का नाहिं भरोसा ।

---

१. फ़क़ीरों वाला चोला, २. ख़ूब मन जाओ, ३. माया की लेस या प्रभाव, ४. नाम रूपी अमृत का अन्दर घड़ा भरा हुआ है परन्तु संसार मायावी चहले में सन रहा है, ५. नरक में सिर के सहारे उल्टा लटकेगा ।

*उस कुंडली में समझा रहे हैं कि मनुष्य, जन्म में गर्म-गर्म हलवे का सीधा गफ्फा मार लेना चाहिए । गफ्फा मारना क्या है ? 'भजि लीजै भगवान' या 'लीजै लाहा लूटि दिना दुई संतन पासा' क्योंकि 'जीवन का नाहिं भरोसा' और 'काल सिर पर नियराना ।'

६. बीतता जा रहा है, ७. सिर पर खड़ा देख रहा है ।

खाय लेहु भरि पेट आगे से जात परोसा ॥
लीजै लाहा लूटि दिना दुइ संतन पासा ।
अजहूँ चेत गँवार जात है खाली स्वासा ॥
पलटू अटक न कीजिये [१]कूच है साँझ सकारि ।
गरमै गरमै हलुवा गंफा लीजै मारि ॥

(भाग १, कुंडली ४४)

१. प्रात-सायं अर्थात शीघ्र या देर से दुनिया में से कूच करना ही पड़ेगा ।

विविध

पीछे दिए गए विषयों के अलावा पलटू साहिब ने कई अन्य षयों पर भी विचार व्यक्त किए है। उन सब विषयों का वर्गीकरण र सकना कठिन है। परन्तु कुछेक विषयों का अध्ययन लाभप्रद गा :

. विश्वास :

परमार्थ में सफलता प्राप्त करने के लिये विश्वास या भरोसे की ी महिमा है। जिज्ञासु के लिए यह आवश्यक है कि पूरी खोज, जाँच-ताल के बाद पूर्ण सन्त-सतगुरु की शरण तथा नाम के मार्ग को ीकार करे। परन्तु जब एक बार पूरी तसल्ली हो जाए तो पूरे भरोसे दत्तचित्त होकर अपनी आध्यात्मिक यात्रा को पूरा करने का प्रयत्न रे, पलटू साहिब कहते है कि मुझे नाम मार्ग पर पूरा विश्वास हो गया । मुझे पक्का भरोसा हो गया है कि यह एक अमूल्य हीरा है। अब ारा संसार मुझ से कहे कि यह कांच है, तो मैं भरोसा नहीं करूँगा। ने अब संसार से ध्यान हटा लिया है। मैंने दूसरे सब भरोसे छोड़ दिए । मेरी दृष्टि केवल उस प्रभु या उसके नाम पर है तथा मुझे केवल सका ही भरोसा है :

मैं जग की बात न मानोंगी। ठान आपनी ठानोगी ॥
कहे सुने से खांड आपनी। नांहि धूरि मे सानोंगी।
कहे सुने से हीरा आपनो। नांहि कांच में आनोगी ॥
जग की ओर तनिक नहि ताको। सतसंगति पहिचानोगी।
पलटूदास कहे से का भा। जो जानो सो जानोगी ॥

(भाग ३, शब्द ६१)

और न कोई आस है ॥
राम तो हितकारी मेरे, प्रान उन हर लीन्हा ।
जब से दरस दीन्हा, [1]सही जक्त उपहास है ॥
तन की बिसरी सुधि, जक्त की लाज त्यागी ।
प्रेम की फाँसी बाझी, सोवत से जाग है ॥
उठी अकुलाय मानों, तजहु सकल आस ।
कहत पलटूदास, एक ही बिस्वास है ॥
एक ही भरोसा राखो, (भाग ३, शब्द ६१)

मनसा वाचा कर्मना, जिनको है बिस्वास ।
पलटू हरि पर रहत हैं, तिन्ह के पलटू दास ॥
(भाग ३, साखी ३१)

पलटू संसय छूटि गे, मिलिया पूरा यार ।
मगन आपने ख्याल में, भाड़ पड़ै संसार ॥
(भाग ३, साखी ३२)

ज्यों ज्यों रूठै जगत सब, मोर होय कल्यान ।
पलटू [2]बार न बाँकि है, जो सिर पर भगवान ॥
(भाग ३, साखी ३३)

२. किसी को मित्र न बनाएं :

विश्वास केवल भगवान पर ही होना चाहिए तथा उसी को अपना मित्र बनाना चाहिए। संसार की किसी दूसरी वस्तु को मित्र नहीं बनाना चाहिए क्योंकि इससे ध्यान संसार से बँधता है तथा परमार्थ में हानि होती है। राम तथा जगत की मित्रता इकट्ठी नहीं चल सकती :

पलटू सरवस दीजिये मित्र न कीजै कोय ॥
मित्र न कीजै कोय चित्त दै बैर बिसाहै[3] ।
निस दिन होय बिनास ओर वह नाहिं निबाहै ॥
चिन्ता बाढ़ै रोग लगा छिन छिन तन छीजै ।

---

१. जग की हंसी सहन की, २. बाल बांका नहीं हो सकता, ३. मोल ले ।

[1]कम्मर गरुआ होय ज्यों ज्यों पानी में भीजै ॥
जोग जुगत की हानि जहाँ चित अंतै जावै ।
भक्ति आपनी जाय एक मन कहूँ लगावै ॥
राम मिताई ना चलै और मित्र जो होय ।
पलटू सरवस दीजिये मित्र न कीजै कोय ॥

(भाग १, कुंडली १४९)

३. सच तथा सच्चा दरबार :

वह परमेश्वर सच्चा है। उसका दरबार सच्चा है। दुनिया भी झूठी है तथा उसके रंग भी झूठे हैं। उस सच्चे दरबार में केवल सच ही ठहर सकता है। वह सच प्रभु-भक्ति है। इस सच को प्राप्त कर सकना कठिन है :

साचा हरि दरबार, झूठा टिकै न कोई ॥
झूठा छिपै न लाख छिपावै, अंत को होत उघार।
झूठा रंग रँगै जो कोई, चटक रहै दिन चार ॥
हरि की भक्ति सहज है नाहीं, ज्यों चोखी तरवार।
पलटूदास हाथ अपने से, सिर को लेइ उतार ॥

(भाग १, शब्द ८८)

४. दोनों इकट्ठे नहीं रह सकते :

उस सच्चे दरबार में झूठ तथा फरेब के लिए कोई स्थान नहीं है। केवल निष्काम हृदय वाला सच्चा भक्त ही वहाँ पहुँच सकता है। वह परमेश्वर माया के तथा कामना से निर्लेप है। उससे मिलाप वही सच्चे भक्त कर सकते हैं जो प्रभु की ही तरह माया तथा आशा-तृष्णा से मुक्त है। मोह-माया रोगों में ग्रस्त प्राणी वहाँ नहीं पहुँच सकते। परमार्थी तथा स्वार्थी की आपस में नहीं पट सकती

साहिब के दरबार में, क्या झूठे का काम।
पलटू दोनों ना मिलै कामी और अकाम ॥

(भाग ३, साखी १२२)

1. कम्बल ज्यों-ज्यों भीग कर गीला होता है, भारी होता जाता है।

५. सन्तोष :

पलटू साहिब ने सन्तोष की बड़ी महिमा की है। सन्तोष प्रभु में दृढ़ विश्वास से पैदा होता है या आत्मा पर नाम का रंग चढ़ने से। आप कहते हैं कि जो कुछ कुल-मालिक या सतगुरु देता है, उसी से सन्तुष्ट रहो, 'गुरु जो दिया है, सोई तू लिए रह'। लोभ से मन संसार में फैलता है। लोभी लोभ की पूर्ति के लिए बाहर भटकता है। परन्तु सन्तोष से मन अन्दर की ओर पलटता है तथा आध्यात्मिक चढ़ाई में भी सहायता मिलती है :

*संतोष के धरे से खाय गज[1] पेट भरि,
स्वान इक टूक को केतिक धावै।
संत की वृत्ति अजदहार[2] की चाहिये,
चले बिनु फिरे आहार पावै॥
सिंह आहार को करत है सहज में,
स्यार दस बीस घर मूड़ नावै।
दास पलटू कहै और कछु ना करै,
भक्ति के मूल संतोष लावै॥

(भाग २, रेखता ८०)

यार फक्कीर तू बाँधु फाका कँहै,
करो संतोष यह अर्ज मेरी।
रहो बेफिकर ह्वै बाँधि कफनी कँहै,
पहिरि के बैठु जा प्रेम बेरी[3]॥

---

*इस रेखते में बहुत सुन्दर ढंग से समझाते हैं कि हाथी की कितनी खुराक है, परन्तु वह सन्तोष रखता है। इसलिये वह पेट भर कर खाता है। कुत्ता असन्तोषी होता है जिस कारण एक टुकड़े के लिये भटकता रहता है। अजगर नाग का शिकार दूर से ही तेजी से, उसकी ओर खिंचा चला आता है। सन्तोषी शेर को सहज में शिकार मिलता है परन्तु गीदड़ इसलिये भटकता रहता है। इस प्रकार सन्तों को अपने आहार के लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उनको सब कुछ सहज ही प्राप्त हो जाता है।

१. हाथी, २. अजगर, ३. नाव।

[1]करो फराख दिल [2]फ़हम टुक कीजिये,
    [3]फरक संसार से पीठ फेरो।
दास पलटू कहै फक़र फारिग हुआ,
    फटी हजूर में फरद तेरी॥
(भाग २, रेख़ता ११)

गुरू जो दिया है सोई तू लिये रहु,
    उसी में बहुत विस्राम करना।
होयगा बहुत फिरि सबद जो लगैगा,
    चित्त को चेति कै ध्यान धरना॥
[4]चतुर जो होयगा करैगा कसब को,
    बुंद ही बुंद [5]सामुद्र भरना।
दास पलटू कहै सिफत है सुरति की,
    और कोइ ख्याल में नाहीं परना॥
(भाग २, रेख़ता १६)

६. विश्वास-किस पर ?

सच्चा विश्वास केवल पूर्ण सन्त-सतगुरु पर होना चाहिये और सच्चा सन्तोष भी उसी से प्राप्त होता है। वे सन्तोष की प्रतिमूर्ति होते हैं। वे कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। उनका एक परमात्मा में विश्वास होता है। यह सन्तोष उनको नाम में से प्राप्त होता है। उनके पास नाम का अटूट भण्डार होता है जिस लिये उनको संसार की कोई भूख नहीं रहती। उनका सहारा कुल-मालिक होता है, इसलिए उनको किसी दूसरे पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं रहती :

संतन के सिर ताज है सोई संत होइ जाय॥
सोई संत होइ जाय रहै जो ऐसी रहनी।
मुख से बोलै साच करै कछु उज्जल करनी॥
एक भरोसा करै नहीं काहू से माँगै।

१. उदार चित्त हो, २. विवेक से काम ले ३. एकदम संसार से पीठ मोड़ ले, (एकदम इसके बंधनों से मुक्त हो जायेगा, ४. चतुर जीव सदा अभ्यास करेगा, ५. समुद्र

मन में करै सँतोप तनिक ना कवहूँ लागै ।।
भली बुरी कोउ कहै ताहि सुन [1]नहि मन माखै ।
आठ पहर दिन रात नाम की चरचा राखै ।।
पलटू रहै गरीव होय भूखे को दे खाय ।
संतन के सिर ताज है सोई संत होइ जाय ।।
(भाग १, कुंडली २७)

७. संसार :

पलटू साहिब ने वड़े व्यंगमय परन्तु शक्तिशाली ढंग से दुनिया की रीति को समझाने का प्रयत्न किया है। अन्धों के मुहल्ले में कोई आँख वाला चला गया। सव अन्धों ने मिलकर उसको अन्धा कहना आरम्भ कर दिया तथा उसको यह सलाह भी दी कि वह भी अपनी आँखें निकाल दे। इस अन्धी दुनिया में कोई विरला पूर्ण सन्त ही आंखों वाला होता है, क्योंकि केवल वह सच को साक्षात देख रहा होता है। परन्तु दुनिया उसको कुमार्गी तथा अज्ञानी कहती है तथा उसकी जान की दुश्मन वन जाती है।

इस अन्धों की नगरी में एक काने का राज्य है। अन्धे संसार रूपी सागर को पार करना चाहते हैं परन्तु भाड़ा नहीं देना चाहते; अर्थात् कर्मों का भुगतान करने से डरते हैं। अज्ञानता रूपी रात के अन्धेरे में काल रूपी भेड़िया भव-सागर को पार करने के इच्छुक प्राणियों को परामर्श देता है कि तुम एक-एक करके मेरे साथ चलो मैं तुम्हें पार उतार दूंगा। इस प्रकार वह धोखा देकर एक-एक करके सवको खा जाता है।

इस संसार की यह अवस्था है कि यहाँ चोर राजा वना वैठा है अर्थात् सारा सन्सार मन के आधीन है। ऐसे राज्य में प्रजा सुख कैसे प्राप्त कर सकती है? पलटू साहिव कहते हैं कि इस मन-माया की नगरी में कपट प्रधान है। यहाँ किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

---

१. मन में क्रोध नहीं करता।

कुछ पता नहीं, मन-माया किस रूप में आकर हमें मार ले। ये कुण्डलियाँ सूक्ष्म व्यंग के साथ ही साथ हास्य-रस की भी झड़ी लगाती हैं :

अँधरन केरि बजार में गया एक डिठियार॥
गया एक डिठियार सबै अंधा उठि धाये।
अहमक आये आजु सबै मिलि तारी लावे॥
डारो आँखी फोरि रहो तुम हमरो नाईं।
सब अँधरन मिलि अंध अंध वा को ठहराई॥
जेंहवाँ लाखन अंध एक क्या करै विचारा।
सुनै न वा की कोऊ तहाँ डिठियारै हारा॥
पलटूदास यहि बात को कोऊ न करै विचार।
अँधरन केरि बजार में गया एक डिठियार॥

(भाग १, कुण्डली १९४)

सब अँधरन के बीच एक है काना राजा॥
काना राजा रहे ताहि कै रैयत आँधा।
काना को अगुवाइ एक इक पकरिनि काँधा॥
बीच मिला दरियाव अंध को ठाढ़ कराई।
लेन गया वह थाह तूंसि[1] लँगा घिसियाई॥
साँझ आइ नियरानि अँध सब करै विचारा।
लाग खान को करन बड़ा सरदार हमारा॥
आधी रात के बीच सबै मिलि गोगा[2] लाई।
भेड़हा[3] बोला आय चलो इक एक बुलाई॥
एक एक तुम चलो नाहि है बासन[4] दूजा।
गरदन धै लै जाय करै ताही की पूजा॥
पलटू सबको खाय मगन ह्वै भेड़हा गाजा।
सब अँधरन के बीच एक है काना राजा॥

(भाग १, कुण्डली १९५)

---

१. कर्म, २. ढोर, ३. काल, ४. बर्तन, नाव।

लगै न भीतर ज्ञान ताहि से मन न मिलावै ।
[1]मारै भाल पषान धसै नहिं उलटा आवै ।।
पलटू जो बूझै नहीं बोलै से रहु बाज ।
मूरख को समुझाइये नाहक होइ अकाज ।।
(भाग १, कुंडली १२९)

१०. कुमति :

जहाँ कुमति का वास हो, वहाँ स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। यह लोक-परलोक दोनों का नाश कर देती है :

जहाँ कुमति कै वासा है। सुख सपनेहु नाहीं ।।
फोरि देत घर मोर तोर करि। देखै आपु तमासा है ।।
कलह काल दिन रात लगावै। करै जगत उपहासा है ।।
निरधन करै खाये विनु मारै। आछत अन्न उपवासा है ।।
पलटू दास कुमति है भोंड़ी। लोक परलोक दोउ नासा है ।।
(भाग ३, शब्द ९८)

११. निर्गुण मिला, भूला सर्गुण चाल :

जब उस निर्गुण प्रभु की भक्ति का रस आता है तो सर्गुण की भक्ति नीरस लगती है। उस सूक्ष्म चेतन प्रभु के प्रेम हित स्थूल तथा नाशवान जगत के सब मोह समाप्त हो जाते हैं :

जा को निरगुन मिला है भूला सरगुन चाल ।।
भूला सरगुन चाल वचन ना मुख से आवै ।
[2]तसवी और किताव[3] नहीं काजी को भावै ।।
पंडित पढ़ै न वेद तीरथ वैरागी त्यागा ।
कायथ कलम न लेय राज तजि राजा भागा ।।
बेस्वा तजा सिंगार सिद्ध की गइ सिद्धाई ।
रागी भूला राग [4]जननि सुत देइ वहाई ।।

---

१. पत्थर में भाला मारे तो उसमें नहीं घुसता; उल्टा अपने सिर में आकर लगता है, २. माला, ३. कुरान, ४. माता पुत्र को छोड़ देती है।

[1]पलटू भूली गोथिनी कहूँ भात कहूँ दाल ।
जा को निरगुन मिना है भूला सरगुन चाल ॥

(भाग १, कुंडली २१२)

१२. आत्मा अमर है :

आत्मा परमात्मा का अंश है। यह उस ही की तरह चेतन तथा अविनाशी है। मौत के समय विनाश शरीर का होता है, अजर, अमर आत्मा का नहीं :

*प्रतिबिंब अकास को देखा चहे,
भरै घट में उसका भास है जी ।
उसी घट को फिर फोरि डारै,
आखिर को रहे अकास है जी ॥
इस भाँति से जड़ सरीर मँहै,
चेतन करै परगास है जी ।
पलटू सरीर का नास होवै,
चेतन का नाहीं नास है जी ॥

(भाग २, मूलना ५६)

१३. सच्ची जननी :

सच्ची जननी, पुत्रवती या माता वही है जिसकी कोख से सच्चा प्रभु-भक्त जन्म लेता है। मनमुख या दुनियादार पुत्र को जन्म देने से तो माँ का बांझ रह जाना अच्छा है। धन्य है वह माता जो किसी सच्चे सन्त, महात्मा को जन्म देती है :

---

१. चतुर स्त्री की मति (बुद्धि) मारी जाती है, उसको यह पता नहीं रहता कि भात कहाँ है और चावल कहाँ है।

*सूर्य का प्रतिबिंब घड़े के पानी पर पड़ता है। घड़ा टूट जाय तो सूर्य का नाश नहीं होता। इसी प्रकार जड़ शरीर में चेतन प्रभु की अंश आत्मा है। शरीर रूपी घड़ा टूटने से आत्मा का नाश नहीं होता।

*जननी रहै तो बाँझ पै [1]साकट ना जनै।
होतै वरु मरि जाय जिये से ना बनै।
[2]पुत्र से भला मदार फरै ना दोष में॥
अरे हाँ पलटू पुत्रवंती हरि भक्त होय जेहि कोप में॥
(भाग २, अरिल १३५)

१४. ककहरा :

पलटू साहिब ने अपने समय में प्रचलित कई काव्य रूपों को अपने आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त करने का साधन बनाया। आपने अधिकतर वाणी कुण्डलियों में लिखी है परन्तु कई अन्य सन्तों की तरह 'ककहरे' की भी रचना की है। इस में 'अरिल' का प्रयोग किया गया है। इसमें संसार के विचित्र स्वभाव, माया का बल, वाचक-ज्ञानियों तथा भेखी साधुओं के झूठे ज्ञान, गुरुमुख तथा मनमुख की वृत्ति का अन्तर सच्चे नाम तथा सच्चे सतगुरु की महिमा आदि कई परमार्थी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह 'ककहरा' गेय है तथा बहुत प्रिय है :

कक्का केती कही समुझाय कहा कोई नहिं मानै।
खारी और कपूर दोऊ एकै में सानै॥
[3]कंचन घुंघची आनि [4]तुला एकै में तौलै।
अरे हाँ पलटू झूठा मारै गाल, साच कैसे कै बोलै॥
खख्खा खरा बनावै खोट खोट को खरा बनावै।
चोर चौतरे बैठि साह को पकरि मँगावै॥

---

*कबीर साहिब ने भी कहा है कि उस मां की कोख सफल है जो सूरमा, दानी और प्रभु-भक्त को जन्म देती है। सांसारिक मनमुख को जन्म देने से तो जननी का बांझ रहना उचित है :

जननी जनै तउ भगत जन, कै दाता कै सूर।
नहीं तउ जननी बाझ रहै, काहे गवावै नूर॥

१. साकत, मनमुख, २. मनमुख पुत्र को जन्म देने से तो उसकी कोख का न फलना ही अच्छा है, ३. सोना, ४. दोनों को एक ही तराजू से तोलते हैं।

काम क्रोध नहिं मरै गुरु औ सिष्य अनारी ।
अरे हाँ पलटू हमरा तत्त विचार, कहौ को गुनै हमारी ॥
गग्गा गाली पावैं संत सिद्ध की करैं बड़ाई ।
मूढ़ कलंदर द्रव्य[१] सिद्ध से माँगन जाई ॥
अंधे ऐना[२] हाथ कहौ कैसे कै सूझै ।
अरे हाँ पलटू हमरा तत्त विचार, वचन कोई नहिं बूझै ॥
घघ्घा घर में वस्तु हिरान ढूँढ़न को बन बन धावैं ।
गुरु सिष दोऊ अंध कहौ को राह बतावैं ॥
[३]राजा पाँच पचीस काल की चोट है ।
अरे हाँ पलटू बचि है कोई साध, नाम की ओट है ॥
नन्ना नाना कीन्हें भेष, मिटी नहिं मन की आसा ।
बहुरुपिया का स्वाँग अन्त को नर्क निवासा ॥
माया दै दै ढोल सबन को नाच नचाया ।
अरे हाँ पलटू लगी रहै वह डोरि, बहुरि चौरासी आया ॥
चच्चा चरक मरक[४] संसार मकर[५] से दुनिया खावै ।
बातें कहै बनाय सोई अब सिद्ध कहावै ॥
मिली नहीं कछु वस्तु भेद का भरम न जाना ।
[६]अरे हाँ पलटू चमर-दृष्ट संसार, इष्ट कैसे पहिचाना ॥
छछ्छा छके नहीं हरिनाम पीवते भाँग धतूरा ।
बैठि गुफा के बीच खान को लड्डू पेड़ा ॥
मँगनी कीन्ही जाय ब्याह बिन रही कुवाँरी ।
अरे हाँ पलटू खसम पड़ा नहिं चीन्ह, झूठ रस लावैं तारी ॥
जज्जा जटा रखाये सीस बगल में निर्गुन फाँसी ।
गो पर करते घात देखन को बड़े उदासी ॥

---

१. धन, पैसा, २. दर्पण, ३. पाँच विकारों और पच्चीस प्रकृतियों का राज्य है, जिस कारण काल के प्रहार सहन करने पड़ेंगे, ४. चटक-मटक, ५. [illegible]धोखा, ६. संसार चर्म-दृष्टि वाला है, यह केवल स्थूल वस्तुओं व पदार्थों को देख है, सूक्ष्म प्रभु को नहीं पहचान सकता।

बुझी नहीं है आग राख में रहती दबकी ।
अरे हाँ पलटू तन से देखा त्याग, चाह यह सबके मन की ॥

झञ्झा [1]झँखत फिरत कम्मखत, रोइ कै जनम गँवावै ।
बस्तु न सकै सम्हारि दोऊ गति सोग लगावै ॥
हीरा लै लै हाथ आप से देत बहाई ।
अरे हाँ पल्टू [2]करम लिखा है पोत, कहो कस हीरा पाई ॥

टट्टा [3]टरै खेत से भागि सूर और बीर करारी ।
हाथ जोरि मिलि गये माया जब दीन्ही तारी ॥
[4]लाखन में कोई संत माया का मुहड़ा फेरी ।
अरे हाँ पलटू संतन किया विवेक, माया भइ उनकी चेरी ॥

[5]ठठ्ठा ठौर लेहु ठहराय गुरू से पूछि ठिकाना ।
करड़ी खैंच कमान सुरत से फोड़ निसाना ॥
फूट जाय ब्रह्मंड गगन में करै रकाना[3] ।
अरे हाँ पलटू बड़े मरद का काम, रुंड पर बाँधै बाना ॥

*डड्डा डगर से रहे भुलाय नगर को राह बताये ।
चले पैर नहिं एक मनो मुहँई से आये ॥
मजलिस बैठि गँवार कहै पहुँचे हैं हमहीं ।
पड़ै कसौटी जाय सार टकसार में तबहीं ॥

ढड्ढा ढालों की क्या ओट लड़ो ले सब्द कटारी ।

---

१. दुर्भाग्यशाली लोग झीखते, खीजते और झगड़ते रहते हैं, २. जिसके भाग्य में ससार रूपी खिलौर लिखा है, उसको प्रभु-भक्ति या नाम रूपी हीरा कैसे मिल सकता है ? ३. अपने आपको सूरमे भक्त कहलाने वाले माया के प्रभाव के कारण परमार्थ के युद्ध में से भाग निकले, ४. कोई विरला सन्त है जो माया का कन्धा लाता है, ५. इस अरिल में बताते हैं कि असल सूरमा वह है जो गुरु के बताये दाव के अनुसार सुरत को शिव-नेत्र में एकाग्र करके आन्तरिक रूहानी मंडलों को जीत लेता है ।

*इस अरिल में समझाते है कि संसार में ऐसे कहलाने वाले साधुओं की भरमार है जो आप कहीं पहुँचे नहीं, परन्तु दूसरों को मार्ग बताते नहीं थकते ।

*खड़े रहो मैदान हाँक दै सुरति सम्हारी ॥
तिल तिल लागै घाव टरै नहिं मेत से ।
अरे हाँ पलटू मड़ा रहे कोई साध, धनी के हेत से ॥
तत्ता तन में लाये छाल कुम्भ का बक्कल पहिरे ।
बैठि गुफा में जाय खोद के धरती गहिरे ॥
करते प्रानायाम उलटि कै खैंचै स्वासा ।
अरे हाँ पलटू बैठे आसन मारि, मिटी नहिं मन की आसा ॥
थथ्था थकित भये हम देखि सबै गफलत में सोवैं ।
भक्ति का पौधा काटि विषय का अंकुर बोवैं ॥
तपसी में धनवंत सावँ[1] सब भये भिखारी ।
अरे हाँ पलटू रोगी हाँ गये नीक, बैद सब भये अजारी[2] ॥
दद्दा दबकि रहा है स्यार सिंह का पहिरे बाना ।
दाग लगाये सीस लड़न का मरम न जाना ॥

*'दद्दा' और 'तत्ता' वाले अरिल मिला कर पढ़ें। 'तत्ता' वाले अरिल में कहते हैं कि वास्तविक साधू वह नहीं जो छाल के कपड़े पहनता है, गुफा में या धरती में छिप कर बैठा रहता है या प्राणायाम आदि करता है। जब तक मन की आशा नहीं मरती, यह बाहरमुखी काम व्यर्थ हैं। 'दद्दा' वाला अरिल यह समझाता है कि वास्तविक सूरमा साधू वह है जो मन से पूरी लड़ाई लेता है। वह सुरत को घेर कर अन्दर इकट्ठा करता है और चाहे तिल-तिल कट जाये, सुरत शब्द का अभ्यास नहीं त्यागता। जो उस प्रभु में शब्द की चोट सहता है, वही सच्चा साधू है।

कबीर साहिब अपने प्रसिद्ध शब्द 'गगन दमामा बाजिओ' में संकेत करते हैं कि असल साधू सूरमा वह है जो दशम् द्वार में हो रहे अनहद शब्द के जोरदार धौंसे की चोट सहता है। अभ्यासी साधक के लिए आन्तरिक मंडल रण-भूमि है और शब्द की धार तेज तलवार है। वह सूरमता का धर्म पहचानता हुआ तार-तार हो जाता है अर्थात् अपना आपा पूरी तरह शब्द में लीन कर देता है परन्तु किसी दशा में सुरत शब्द का अभ्यास नहीं त्यागता :

गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ ॥
खेतु जु माडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ ॥
सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत ॥
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेतु ॥
(आदि)

1. साह, 2. रोगी।

हाकिम रहे छिपाय भेद पाया नहिं कोई ।
हाकिम रहे छिपाय भेद पाया नहिं कोई ।
अरे हाँ पलटू तब तक रहिये ताक, कहै सो दुसमन होई ॥
धध्धा धनी कहावैं बड़े पूँजी घर में नहिं इक छिन ।
बैठे करत गुमान रैनि दिन जात भजन बिन ॥
चौंड़ी लाय दुकान करैं पकवानहिं फीका ।
अरे हाँ पलटू जानै खावनहार, और नहिं स्वाद उसी का ॥
पप्पा पड़े पतंगा जाय आप से दीपक माहीं ।
तन को दिया जराय सोच दीपक को नाहीं ॥
पहिले तो दीपक जरै पाछे जरै पतंग ।
अरे हाँ पलटू हरि हरि जन मे प्रीति करि, मिलि दोऊ इक अंग ॥
फफ्फा फाका फकर जरूर फरक आलम से रहिये ।
भली बुरि कहि जाय बात दो सबकी सहिये ॥
कहर मेहर की नजर लगन साहिब में लावै ।
अरे हाँ पलटू लगी रहै वह डोरि, छुटै तो गोता खावै ॥
बब्बा बगुला कीन्ह भेष हंस की बोली बोलै ।
नीर[1] छीर[2] दोउ महँ आप से परदा खोलै ॥
रांगा रूपा सेत नजर बिन को अलगावै ।
अरे हाँ पलटू जहवाँ नाहिं हंस तहाँ बगु हंस कहावै ॥
भभ्भा भरमन ही को खै[3] करै इन्द्रिन से निगरा[4] ।
नाम से रहै भुलाय चित्त दै करते सिगरा[5] ॥
[6]निगरा सिगरा नाहिं जोई है जाग्रत जोगी ।
अरे हाँ पलटू निगरा सिगरा नाहिं कहो काइ रोगी भोगी ॥
मम्मा मन मुराद होइ नाहिं आपु वै पीर कहावैं ।
बिना बंदगी फ़ैज[7] कहो कोइ कैसे पावै ॥
कितनो नाचो नाच नाक बिन नकटी बाई ।
अरे हाँ पलटू सतगुरु होहिं दयाल देहिं तो मिलै बड़ाई ॥

---

१. पानी, २. दूध, ३. नाश, ४. इन्द्रियों को रोकना, ५. मग्न ...
६. जो त्याग और मग्न दोनों से ऊपर है, वास्तविक योगी वही है, ७. लाभ

ररा रांड भराये मांग नैन भरि काजर लावे।
बिना खसम की सेज कहा भा फूल बिछावे॥
तन पर लत्ता नाहिं ओढ़ाती खसमहिं गोई।
अरे हां पलटू बिना भजन की रांड, कहो कितना तन धोई॥

लल्ला लालच बुरी बलाय यही सब बात बिगारी[1]।
लालच जेहि का नाम माया की है महतारी॥
कनिक कामिनी रूप धरे सुर नर मुनि लूटे।
अरे हां पलटू ऐसा कोई ना मिला, जो इन से छूटे॥

बब्बा वारूं तन मन सीस उसी का कहूं संदेसा।
हित अपना पहचान, सुनत ही मिटे कलेसा॥
पूरन प्रगटे भाग मिले वहि देस के गाईं।
अरे हां पलटू करिये उनसे प्रीत, नहीं उनसे अधिकाई॥

सस्सा सरवर करते स्यार सिंह से रार बढ़ावें।
काग कहे हम बड़े हंस से गाल बजावें॥
भूकन लागे स्वान संत सुनि कान को मूंदा।
अरे हां पलटू आखिर बड़े सो बड़े, दिन चार का धींगम धूंगा॥

हहा हक है वही हलाल सबर से बैठे आवे।
खाना वही हराम पेट को मांगन जावें॥
हाथी धीरज धरे सांझ को मन भर पावें।
अरे हां पलटू टूक टूक को स्वान, बीच पर भटका खावें॥

अआ अपनी ओर निहार तुझे क्या परी परारी[2]?
घर में मूसे चोर और को सिखे अनारी॥
अपनी करनी ताच और सब झूठ कहानी।
अरे हां पलटू धोय सितावो हाथ, जात है बहता पानी॥

इई इसम[3] करे कोई मरद और सब पेट जियावे।
मार गया कोई सिंह स्यान को गीदड़ धावें॥

१. माता, २. पराई, ३. नाम।

छत्र फिरै सिर ऊपर सोई वाच्छाह कहावै ।
अरे हाँ पलटू सव नायक हो जायँ, तो वरधी कौन लदावै ॥
उऊ उमर गई सव वीति चलन को है दिन थोरा ।
[1]अहमक भजन विचारु गोड़ धरि करौं निहोरा ॥
[2]भूले कौल करार धनी घर कैसे जइहौ ।
[3]अरे हाँ पलटू सिर पर मारै धौल काल, तव कहाँ लुकइहौ ॥
एऐ एक ओर पढ़ैं कुरान वाँग धुनि लावै भुलना ।
एक ओर वाजै संख वेद धुनि पंडित रटना ॥
सोय रहे मैदान खाय वरु माँगि कै ।
अरे हाँ पलटू दोउ घर लागी आग, वचा कोइ भागि कै ॥
ओ औ औरों वैर विहाय[4] प्रीति सज्जन से जोड़ी ।
वड़े अनाड़ी लोग जोड़ि कै पाछे तोड़ी ॥
[5]मौत देहि भगवान सजन से ह्वै विछोहा ।
[6]अरे हाँ पलटू हँसिहैं वैरी लोग, जीति जव पइहैं दोहा ॥
अ अः ओङ ओ अं एक ओर नाहीं कोइ दूजा ।
एक ब्रह्म संसार करौं मैं किसकी पूजा ॥
[7]समुझ पड़ा करतार करम को किया भगूरा ।
अरे हाँ पलटू दुरमति भागी दूरि, मिला जव सतगुरु पूरा ॥

(भाग २, पृ. ८५)

१५. वारह-मासा :

अन्य कवियों की भांति पलटू साहिव ने वारह-मासा भी लिखा है । इसमें प्रत्येक महीने को आधार वना कर प्रेम तथा विरह का वर्णन

---

१. हे मूर्ख, भजन की ओर ध्यान दे, मैं तुझे नम्रता से समझाता हूं, २. तूने प्रभु से किया यह वायदा भुला दिया है कि मात-लोक में पल-पल तेरी भक्ति करूंगा, फिर तू उसकी दरगाह में किस प्रकार पहुंच सकता है, ३. जव काल सिर पर प्रहार करेगा, फिर कहां छिपेगा ! ४. छोड़कर, ५. सज्जन का वियोग देने से तो प्रभु मौत दे दे तो ठीक है, ६. जव शत्रुओं की विजय हो जाती है तो दुश्मन हंसते हैं, ७. परमात्मा का ज्ञान हुआ तो कर्म का नाश हो गया ।

किया गया है। बाहर की ऋतु कितनी भी सुहावनी क्यों न हों, विरहणी को नहीं भाती। उसको तो प्रत्येक प्रकार की ऋतु में अपने प्रियतम की याद सताती है। जब विरह में जलती आत्मा को सुन्न मंडल में उन प्रियतम की एक झलक दिखाई देती है तो उसका हृदय पूर्णत: शीतल हो जाता है :

सखी मोरे पिय की खबरि न आई हो ॥
मास आसाढ़ [१]गगन घन गरजे, सब सखि छानि छवाई।
हौं बौरी पिया बिनु डोलौ, [२]सून मंदिल बिनु साईं ॥
सावन मेघ गरज मोरि सजनी, कोयल कुहुक सुनाई।
हौं बौरी प्रीतम बिनु व्याकुल, [३]तलफत रैनि बिहाई ॥
भादौ गरुव गंभीर सखी री, [४]काली घटा नभ छाई।
चमकत बिजुलि घोर घन गरजत, सूनि सेज पिय नाही ॥
क्वार मास सब जुड़ि मिलि सखियाँ, झूठै माँगत आई।
[५]हमरे बलमु परदेस बिलमि रहे, उन बिनु कछु न सुहाई ॥
कातिक घर घर सब सखियाँ मिलि, रचि रचि भवन बनाई।
मैं पापिनि प्रीतम बिनु सजनी, रोइ रोइ दिवस गँवाई ॥
अगहन [६]अग्र सनेह सबै सखि, पिय सँग गवनै जाई।
देखि देखि मोहि विरह बढ़तु है, [७]पिय बिनु जिय अकुलाई ॥
पूस मास परदेस पियरवा, आवन की सुधि नाहीं।
काह करौं कित जाउं सखी री, [८]किन दूतिन बिलमाई ॥
माघ [९]तुसार परन लागो सजनी, [१०]पतियाँ नाहीं पठाई।
[११]ऐसे निपट कठोर कृपामय, निपटै सुधि बिसराई ॥

१. आकाश में बादल गरज रहे हैं, २. प्रियतम के बिना घर सूना है, ३ तड़पती हुई सी रात गुजरती है, ४. आकाश में काली घटायें छाई हुई है, ५ मेरा प्रियतम प्रदेश में रुक गया है, ६. सब सखियां बहुत स्नेह से अपने-अपने प्रियतम से बाहर सैर के लिये जाती है, ७ प्रियतम के बिना मेरा मन घबराया हुआ है, ८ पता नहीं किन निर्दयी शत्रुओं ने प्रियतम को रोका हुआ है, ९. बर्फ पड़ने लगी है, १० प्रियतम ने पत्र नहीं लिया, ११. है तो वह परम कृपालु परन्तु उसने मेरे साथ बहुत कठोरता वाला व्यवहार किया है क्योंकि उसने मेरी बिल्कुल परवाह नहीं की।

फागुन मास आस जब टूटी, जोगिनि होई कै धाई।
[1]गैब नगर के गलिन गलिन में, पिय पिय सोर मचाई॥
चैतै चित चिंता अति बाढ़ी, तन मन भसम चढ़ाई।
[2]निसि वासर मग जोहत सजनी, नैन नीर झरि लाई॥
[3]बैसाखै बंसी धुनि सुनि सजनी, [4]मन अति तलफ मचाई।
[5]विरह भुवंग डस्यौ मोरै हियरे, तन मन की सुधि न रहाई॥
जेठै जब यह गति भई सजनी, [6]निरख परी इक झाई।
[7]सुन्न मँदिल इक मूरति दरसी, देखत जियरा गुड़ाई॥

(भाग ३, शब्द ११३)

१६. उल्ट बासियाँ :

पुराने समय में उल्ट-वासियाँ लिखने की प्रथा प्रचलित थी। पलटू साहिब ने भी कुछ उल्ट-वासियों की रचना की है। बाहर से देखने पर यह उल्ट-वासियों अर्थहीन तथा ग़लत प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में इनमें गहरे भेद छिपे हुए हैं यहाँ पलटू साहिब की दो उल्ट बासियाँ दी जाती हैं। इन को समझने के लिए निम्नलिखित अर्थ सामने रखने आवश्यक हैं :

खसम=मन, मूआ=मर गया, काबू आ गया। जोरू=जीवात्मा; जीयते मरै=जीते-जी मर कर। सुहागिन पतिव्रता=प्रभु या सतगुरु रूपी पति की प्रेमिका अर्थात शब्द से जुड़ी हुई सुरत। अहिवात=सुहाग अर्थात परमात्मा से लगन लग गई। शादीआना=खुशी का बाजा; यहाँ अन्दर की शब्द ध्वनि की ओर संकेत है। दीपक बरै आकास=अन्दर के उल्टे कुएँ अर्थात शरीर के आँखों से ऊपर के

---

१. मैंने आन्तरिक रूहानी मंडलों में पिया-पिया का शोर मचाया, २. रातदिन उसका मार्ग देखती हूँ और आंखों में से आँसू बह रहे हैं, ३. संकेत आन्तरिक रूहानी मंडलों में सुनाई देने वाली शब्द की बांसुरी की ओर है, ४. मन में वैराग्य की वेदना पैदा हुई, ५. मेरे हृदय को विरह के सांप ने डस लिया, ६. तो अन्दर उसकी एक झलक दिखाई दी, ७. सुन्न मंडल में उसकी प्रिय मूर्ति दिखाई दी तो मन उसमें लीन हो गया।

भाग में जल रही ज्योति की ओर संकेत है। महल पर-सेज बिछाया = ऊपर के आध्यात्मिक मण्डलों में निवास किया। दुनिया = कर्म, संस्कार आदि। पड़ोसन = संसार।

*खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ॥
सिर की गई बलाय बहुत सुख हमने माना ।
लागे मंगल होन बजन लागे सदियाना ॥
दीपक बरै अकास महल पर सेज बिछाया ।
सूतौं महीं अकेल खबर जब मुए की पाया ॥
सूतौं पांव पसारि भरम की डोरी टूटी ।
मन कौन अब करै खसम बिनु दुविधा छूटी ॥
पलटू सोई सुहागिनी जियतै पिय को खाय ।
खसम मुवा तो भल भया सिर की गई बलाय ॥

(भाग १, कुंडली १२१)

खसम बिचारा मरि गया जोरू गावै तान ॥
जोरू गावै तान फिरा अहिवात हमारा ।
झूठ सकल संसार माँग भरि सेंदुर धारा ॥
हम पतिबरता नारि खसम को जियतै मारी ।
[1]वा को मूड़ी मूड़ [2]सरवर जो करै हमारी ॥

---

*इन उल्ट बासियों का सम्पूर्ण भाव यह है कि वर्तमान अवस्था में मन ने आत्मा को अपने अधीन किया हुआ है। मन आत्मा का स्वामी बना हुआ है। जब सद्गुरु की बताई हुई युक्ति के अनुसार जीते-जी मरने अर्थात् समाधि या पूर्ण एकाग्रता की अवस्था प्राप्त करने की जाच आ जाती है तो मन, आत्मा शरीर के नौ द्वारों से [illegible] कर गली में आ जाते हैं। मन अन्दर जाकर ब्रह्म या त्रिकुटी में समा जाता है। [illegible] मन रूपी स्वामी मर जाता है और आत्मा इसके पंजे से आज़ाद हो [illegible] आज़ाद हुई आत्मा ऊपर के मंडलों के सार शब्द के सच्चे आनन्द [illegible] अन्त को परमात्मा से मिल कर सच्ची सुहागिन हो जाती है। जब [illegible] स्वामी के अधीन थी, यह अनेक दुःखों में घिरी हुई थी [illegible] और इसका अमर सुहाग—शब्द, सतगुरु या परमात्मा—[illegible] अमर आनन्द की प्राप्ति हो गई।

१. इसका सिर मूड़ दिया, २. जो मेरी [illegible]।

दुतिया गइ है भागि सुनो अव राँध परोसिन ।
पिया मरे आराम मिला सुख मोकहँ दिन दिन ॥
[1]पलटू ऐसे पद कहै बूझै सोइ निरवान ।
खसम विचारा मरि गया जोरू गावै तान ॥
(भाग १, कुंडली १८७)

१७. सोहर या होलर

पलटू साहिव ने लोक गीतों की धारणाओं पर भी वाणी रची है जिसमें उनका एक 'सोहर' विशेप तौर पर ध्यान देने योग्य है। जव वच्चा पैदा होता है तो उसके 'सोहर' या होलर गाए जाते हैं। यह एक खुशी का गीत होता है जिसकी प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'हो ललना' या कोई अन्य प्रकार के सम्वोधन का प्रयोग किया जाता है। इस में नए जन्मे वालक की खुशी मनाई जाती है तथा उसको आशीष दी जाती हैं। पलटू साहिव इसमें वहुत ऊँचा आध्यात्मिक उपदेश दे रहे हैं :

मोर पिया वसै पुर पाटन, हम धन हियवैं हो ललना ।
अपने पिय की सुद्धि जो पौतिउँ, हम धन कहँवौं हो ललना ॥
अंग अंग भभूति लगौतिउँ, वनै फल खातिउँ हो ललना ।
धरतिउँ जोगनिया कै भेस, पास पिय जातिउँ हो ललना ॥
खोज में निकिसउँ गैलिउँ विदेसवाँ, पिय भल पायौं हो ललना ।
चरन कँवल सिर नाय, मनहिं समुझायौं हो ललना ॥
गर्भ रहा विस्वास, पिया मोर जानै हो ललना ।
अचरज खाय सव लोग, कोई नहिं मानै हो ललना ॥
पलटूदास के सोहर, जो कोई गावै हो ललना ।
दसवें मास इक पुत्र लहै, सुख पावै हो ललना ॥
(भाग ३, शब्द १०९)

---

१. पलटू साहिब कहते हैं कि मैं उस अवस्था का भेद वर्णन कर रहा हूँ जिसमें पहुंच कर सच्चा निर्वाण या सच्ची मुक्ति मिल जाती है।

पद-क्रम

हमारे प्रकाशन

स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज

1. सार वचन छन्द-बन्द
2. सार वचन वार्तिक

बाबा जैमलसिंह जी महाराज

1. परमार्थी पत्र, भाग 1
2. अमृत-वचन

हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी

1. परमार्थी पत्र, भाग 2
2. शब्द की महिमा के शब्द
3. गुरुमत सिद्धान्त, भाग 1
4. गुरुमत सिद्धान्त, भाग 2
5. गुरुमत सिद्धान्त 84 विषय
6. सत्संग-संग्रह
7. सन्तमत प्रकाश, भाग 1 से 5
8. परमार्थी साखियाँ
9. गुरुमत सार
10. प्रभात का प्रकाश

सरदार बहादुर जगतसिंह जी

1. आत्म-ज्ञान
2. रूहानी फूल

हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी

1. सन्तों की बानी
2. सन्तमत दर्शन, भाग 1 से 3
3. सन्त-संवाद, भाग 1, 2
4. सन्त-मार्ग
5. जीवित मरिये भवजल तरिये
6. पारस से पारस
7. सत्संग : आगरा में
8. सत्संग संग्रह, भाग 1 से 7

सतगुरु के सम्बन्ध में

1. रूहानी डायरी, भाग 1 से 3 — राय साहिब मुन्शीराम जी
2. धरती पर स्वर्ग 3. सन्त-समागम — दीवान दरियाईलाल जी

'पूर्व के सन्त' पुस्तक-माला के अन्तर्गत

1. सन्त नामदेव 2. गुरु नानक का रूहानी उपदेश — प्रो. जनक पुरी
3. सन्त दादू दयाल 4. सन्त दरिया 5. गुरु रविदास — डॉ० के. एन. उपाध्याय
6. नाम-भक्ति : गोस्वामी तुलसीदास — डॉ० के. एन. उपाध्याय, श्री पंचानन उपाध्याय
7. मीरा : प्रेम दीवानी — श्री वीरेन्द्र सेठी
8. सन्त पलटू — श्री राजेन्द्र सेठी
9. सन्त कबीर — श्रीमती शान्ति सेठी
10. सन्त तुलसी साहिब — प्रो. जनक पुरी, श्री वीरेन्द्र सेठी
11. सन्त चरनदास — डॉ० टी. आर. शंगारी
12. उपदेश राधास्वामी (स्वामीजी महाराज) — डॉ० सहगल, डॉ० शंगारी, डॉ० 'खाक', डॉ० भण्डारी
13. साईं बुल्लेशाह — प्रो. जनक पुरी, डॉ० टी. आर. शंगारी

सन्तमत के सम्बन्ध में साहित्य

1. नाम-सिद्धान्त — डॉ० शंगारी, डॉ० 'खाक', डॉ० भण्डारी, डॉ० सहगल
2. सन्तमत विचार — डॉ० टी. आर. शंगारी, डॉ० कृपाल सिंह 'खाक'
3. सन्त-सन्देश — श्रीमती शान्ति सेठी
4. गुरुमत — श्री लेखराज पुरी
5. अन्तर की आवाज़ — कर्नल सांडर्स
6. अनमोल ख़ज़ाना — श्रीमती शान्ति सेठी
7. हंसा-हीरा मोती चुगना — सन्तोखसिंह, डॉ० टी. आर. शंगारी

सन्त सभन सिरताज धरन धारी सो धारी ।
नई बात जो करैं मिलत है उनको गारी ॥
भीख न माँगै सन्त जन कहि गये पलटूदास ।
हंस चुगे ना घोंघी सिंह चरैं ना घास ॥

(भाग १, कुंडली २४०)

साहिब[1] वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ॥
जो कोइ पहुँचा होय नूर का छत्र विराजै ।
सबर तखत पर बैठि तूर अठपहरा बाजै ॥
तम्बू है असमान जमीं का फरस बिछाया ।
छिमा किया छिड़काव खुसी का मुस्क लगाया ॥
नाम खजाना भरा जिकिर[2] का नेजा चलता ।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ[3] डरता ॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय ।
साहिब वही फकीर है जो कोइ पहुँचा होय ॥

(भाग १, कुंडली ८)

बादसाह का साह फकीर है जी,
नौबत गैब का बाजता है ।
ज्ञान ध्यान की फौज को साधि के जी,
सबर के तख्त पर गाजता है ॥
[4]लाहूत खजाना मारफत का,
सिर नूर का छत्र विराजता है ।
पलटू फकीर का घर बड़ा,
दीन दुनियाँ दोऊ भीख माँगता है ॥

(भाग २, झूलना ८)

कबहीं फाका फकर है कबहीं लाख करोर ॥
कबहीं लाख करोर गमी सादी कछु नाहीं ।
ज्यों खाली त्यों भरा साबुर है मन के माहीं ॥

१. बड़ा, २. सुमिरन, ३. शैतान भी डरता है, ४. मुसलमान फ़कीरों द्वारा एक रूहानी आन्तरिक मंडल का रखा हुआ नाम ।

कबही फूलन सेज हाथी की है असवारी।
कबही सोवैं भुईं पियादे मँजिल गुजारी॥
कबही मलमल जरी ओढ़ते साल दुसाला।
कबही तापैं आग ओढ़ि रहते मृगछाला॥
पलटू वह यह एक है परालब्ध नहिं जोर।
कबही फाका फकर है कबही लाख करोर॥

(भाग १, कुंडली १०)

दुइ पासाही फकर[1] की इक दुनियाँ इक दीन॥
इक दुनियाँ इक दीन दोऊ को राखैं राजी।
सब की मिलैं मुराद गैब की नौबति बाजी॥
हाथ जोरि मुहताज सिकन्दर रहते ठाढ़े।
हुकुम बजावहिं भूप जबां[2] से जो कछु काढ़े॥
चलैं फहम[3] की फौज दरोग[4] की कोट ढहाई।
वेदावा तहसील सबुर कै तलब लगाई॥
पलटू ऐसी साहिबी साहिब रहै तबीन[5]।
दुइ पासाही फकर की इक दुनियाँ इक दीन॥

(भाग १, कुंडली ११८)

फाका[6] जिकर[7] किनात[8] ये तीनों बात जगीर॥
तीनों बात जगीर खुसी की कफनी डारै।
दिल को करैं कुसाद[9] आई भी रोजी टारैं॥
इबादत[10] दिन रात याद में अपनी रहना।
खुदी[11] खूब को खोइ जनाजा जियतै करना॥
सीकन्दर और गदा[12] दोऊ को एकै जानैं।
तब पावैं टुक नसा फना[13] का प्याला छानैं॥

---

१. फकीरी, २. जुबान, ३. विचार, ४. झूठ, ५. ताबेदार, ६. व्रत, ७. सुमिरन, ८. उपवास, संतोष, ९. उदार, १० आराधना, भजन, ११. अहं, १२. भिक्षुक, १३. मौत।

पलटू मस्त जो हाल में तिसका नाम फकीर।
फाका जिकर किनात ये तीनों वात जगीर ॥
(भाग १, कुंडली २९)

राजा रंक को एक जानै,
तिसी का नाम फकीर है जी।
कंचन औ काच में भेद नहीं,
लखै और की पीर है जी ॥
सादी गमी कुछ एक नहीं,
संतोष का मुलुक जगीर है जी।
पलटू अस्तुति निंदा एकै,
सोई रोसन-जमीर[1] है जी ॥
(भाग २, झूलना १२)

दिल को करहु फराख[2] फकीरा, रहु मुहासबे[3] पाक ॥
जो आवै सो देहु लुटाई, क्या कौड़ी क्या लाख।
खाहु खियावहु मगन रहो तुम, सबसे रहु बेवाक ॥
औरत जो दरसन को आवै, नजर से ताकहु पाक।
सोना रूपा लाल जवाहिर, तुम्हरे लेखे खाक ॥
माया को चिरकीन[4] लखो तुम, देखि कै मूदो नाक।
जब आवै तब देहु चलाई, तनिक न रहियो ताक ॥
संत चकोर को संग्रह नाहीं, संग्रह करै हलाक[5]।
पलटूदास कहौं मैं सब से, वार वार दै हाँक[6] ॥
(भाग ३, शब्द १९)

कोइ जोग जुगत की साधन में,
कोई वैराग लै ढूंढ़ता है।
कोइ साखी सबद बनाय कहै,
जोरि जोरि बैठि के गूंथता है ॥

---

१. अंतरयामी, २. उदार, ३. हिसाब-किताब से परे, ४. गन्दगी, ५. मार देता है, ६. ढिंढोरा।

कोइ भाँग धतूरा खाइ के जी,
गुफा में बैठि के झूमता है।
कोइ वेद पुरान सिद्धांत पढ़ै,
कोइ बैठि के निर्गुन गुनता है॥
कोइ उदासी बनि वन बन फिरै,
कोइ घायल होइ के घूमता है।
पलटू फकीर की राह जुदी,
इन बातों के ऊपर थूकता है॥
(भाग २, झूलना १४)

फिरै इक जोगी नगर भुलाना, चढ़िगा महलै महल दिवाना॥
ना वह खावै ना वह पीवै, ना वह भिच्छा जाचै[1]।
ना वह बोलै ना वह डोलै, बिना नचाये नाचै॥
सुखमन के घर भाटी चूवै, पियै बंक[2] के नाला।
जब देखौ तब प्रेम छका है, जपता अजपा माला॥
गगन गुफा में सिंगी टेरै, जाग्रत के घर जागै।
तिरवेनी में आसन मारै, पारब्रह्म अनुरागै॥
सुन्न महैं मौनी होइ बैठै, अनहद तूर बजावै।
तुरिया चढ़ि गदगद होइ बोलै, लंबिका सुर लै गावै॥
सब्दै सब्द मिलावै जोगी, सुखि गा गगन रखाना[3]।
पलटूदास कौन अलगावै, बुंद में समुंद समाना॥
(भाग ३, शब्द १२९)

देखु रे गुरु गम मस्ताना, जानैगा कोइ साधु सयाना॥
जियते मरै सोई पहचानै, गैब नगर सहजै चढ़ि जाना॥
इंगला पिंगला चँवर ढुरावै, सुखमन निसु दिन हलत निसाना॥
तुरिया चढ़ि जब गरजन लागे, छबि देखत सुर भूप[4] लजाना॥
गुरु गोविंद मासूक मिले हैं, आसिक ह्वै पलटू बौराना[5]॥
(भाग ३, शब्द १३०)

१. मांगे, २. अन्दर के मार्ग में एक टेढ़ी और सूक्ष्म सुरंग जिसमें से होकर आत्मा को अन्दर जाना है, ३. मोक्ष द्वार, ४. इन्द्र, ५. पागल।

मुरसिद जात खुदाय की, दरगाह बताया ।
परवर पाक दिगार[1] को, दिल बीच मिलाया ॥
बंदगी दम दम की भरौं, दानिस्त[2] दिखाया ।
तिनुका ओट पहाड़ है, बिन चस्म[3] लखाया ॥
कुदरति देख सुभान की, दिल हौल है मेरा ।
मौजूद रहै वजूद में, बिन तसबी फेरा ॥
तख्त चढ़े दुरवेस हैं, बातैं आफरीनो[4] ।
मुअज्जिज[5] हैं असमान में, औ साफा सीनो[6] ॥
छत्र फिरै सिर नूर का, सब बुजरुग हारे ।
पलटुदास मिलि खाक में, हम खोजि निकारे ॥
(भाग ३, शब्द १४

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान ॥
तरकस बाँधे ज्ञान मोह दल मारि हटाई ।
मारि पाँच पच्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई ॥
काम क्रोध को मारि कैद में मन को कीन्हा ।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसएँ पर दीन्हा ॥
अनहद बाजै तूर अटल सिंहासन पाया ।
जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
पलटू कफ्फन बांधि कै खैंचो सुरति कमान ।
संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान ॥
(भाग १, कुंडली १००)

तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल ॥
उन संतन की चाल करम से रहते न्यारे ।
लोभ मोह हंकार ताहि की गरदन मारे ॥
काम क्रोध कछु नाहिं लगै ना भूख पियासा ।
जियतै मिर्तक रहैं करैं ना जग की आसा ॥

---

१. पाक परवरदिगार या पालन करने वाला पवित्र प्रभु, २. अनुभव, ज्ञान, आंख. ४. प्रशसा के योग्य, ५. प्रतिष्ठित, ६. शुद्ध हृदय ।

ऋद्धि सिद्धि को देख देत हैं खाक चलाई ।
माया से निर्वित भजन की करैं बड़ाई ॥
सर्भ चबेना काल का पलटू उन्हैं न काल ।
तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल ॥

(भाग १, कुंडली २८)

सब में बड़े हैं संत दूसरा नाम है ।
तिसरे दस औतार तिन्हैं परनाम है ॥
ब्रह्मा बिसुन महेस सकल संसार है ।
अरे हां पलटू सब के ऊपर संत मुकुट सरदार है ॥

(भाग २, अरिल ७)

अनुभै परगास भया जिस को,
तिस ही की बात प्रमान है जी ।
भीतर के सब खुलि गये पट,
पक्का उसी का ज्ञान है जी ॥
खिल लोक प्रवित्ति की बात कहै,
वा का तेज कैसा जैसे भान[1] है जी ।
पलटू जगत से पीठि देवै,
नहि संत होना औसान[2] है जी ॥

(भाग २, मूलना ९)

टेढ़ सोझ मुंह आपना ऐना[3] टेढ़ा नाहिं ॥
ऐना टेढा नाहिं टेढ़ को टेढ़ै सूझै ।
जो कोइ देखै सोझ ताहि की सोझै बूझै ॥
जाको कुछ नहिं भेद भावना अपनी दरसै ।
जाको जैसी प्रीति मुरति सो तैसी परसै ॥
दुर्जन के दुर्बुद्धि पाप से अपने जरते ।
सज्जन के है सुमति सुमति से अपने तरते ॥

---

१. सूरज, २. आसान, सहज, ३. आइना, दर्पण ।

मुरसिद जात खुदाय की, दरगाह बताया ।
परवर पाक दिगार[१] को, दिल बीच मिलाया ॥
बंदगी दम दम की भरौं, दानिस्त[२] दिखाया ।
तिनुका ओट पहाड़ है, बिन चस्म[३] लखाया ॥
कुदरति देख सुभान की, दिल हौल है मेरा ।
मौजूद रहै वजूद में, बिन तसबी फेरा ॥
तख्त चढ़े दुरवेस हैं, बातें आफरीनी[४] ।
मुअज्जिज[५] हैं असमान में, औ साफा सीनी[६] ॥
छत्र फिरै सिर नूर का, सब बुजरुग हारे ।
पलटुदास मिलि खाक में, हम खोजि निकारे ॥
(भाग ३, शब्द १४२)

संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान ॥
तरकस बाँधे ज्ञान मोह दल मारि हटाई ।
मारि पाँच पच्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई ॥
काम क्रोध को मारि कैद में मन को कीन्हा ।
नव दरवाजे छोड़ि सुरत दसएँ पर दीन्हा ॥
अनहद बाजे तूर अटल सिंहासन पाया ।
जीव भया संतोष आय गुरु नाम लखाया ॥
पलटू कफ्फन बाँधि कै खैंचो सुरति कमान ।
संत चढ़े मैदान पर तरकस बाँधे ज्ञान ॥
(भाग १, कुंडली १००)

तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल ॥
उन संतन की चाल करम से रहते न्यारे ।
लोभ मोह हंकार ताहि की गरदन मारे ॥
काम क्रोध कछु नाहिं लगै ना भूख पियासा ।
जियतै मिर्तक रहैं करैं ना जग की आसा ॥

---

१. पाक परवरदिगार या पालन करने वाला पवित्र प्रभु, २. अनुभव, ज्ञान, ३. आँख, ४. प्रशंसा के योग्य, ५. प्रतिष्ठित, ६. शुद्ध हृदय ।

ऋद्धि सिद्धि को देख देत हैं खाक चलाई।
माया से निर्वित भजन की करें वड़ाई॥
सभै चवेना काल का पलटू उन्हें न काल।
तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल॥

(भाग १, कुंडली २८)

सब में बड़े हैं संत दूसरा नाम है।
तिसरे दस औतार तिन्हें परनाम है॥
ब्रह्मा बिसुन महेस सकल संसार है।
अरे हाँ पलटू सब के ऊपर संत मुकुट सरदार है॥

(भाग २, अरिल ७)

अनुभै परगास भया जिस को,
तिस ही की बात प्रमान है जी।
भीतर के सब खुलि गये पट,
पक्का उसी का ज्ञान है जी॥
खिल लोक प्रवित्ति को बात कहै,
वा का तेज कैसा जैसे भान[1] है जी।
पलटू जगत से पीठि देवै,
नहिं संत होना औसान[2] है जी॥

(भाग २, मूलना ९)

टेढ़ सोझ मुंह आपना ऐना[3] टेढ़ा नाहिं॥
ऐना टेढा नाहिं टेढ़ को टेढ़ै सूझै।
जो कोइ देखै सोझ ताहि की सोझै बूझै॥
जाको कुछ नहिं भेद भावना अपनी दरसै।
जाको जैसी प्रीति मुरति सो तैसी परसै॥
दुर्जन के दुर्बुद्धि पाप से अपने जरते।
सज्जन के है सुमति सुमति से अपने तरते॥

---

१. सूरज, २. आसान, सहज, ३. आइना, दर्पन।

पलटू ऐना संत हैं सब देखै तेहि माँहि ।
टेढ़ सोझ मुँह आपना ऐना टेढ़ा नाहिं ॥
(भाग १, कुंडली ११३)

ज्ञान ना ध्यान ना जोग ना जुगति है,
मुक्ति चेरी भई द्वार ठाढ़ी ।
तीरथ ना वरत ना दान ना पुन्न है,
परी जमराज पर चोट गाढ़ी ॥
पूजा अचार ना नेम ना धर्म है,
लेन को आये वैकुंठ वाढ़ी ।
दास पलटू कहै राह सब छोड़ि कै,
सहज की राह इक संत काढ़ी ॥
(भाग २, रेखता ९१)

टुक मन में विस्वास करु, होय होय पै होय ।
पलटू संत औ अगिन जल, छोट कहै मत कोय ॥
(भाग ३, साखी ७०)

पलटू संत औ अगिन जल, छोट कहै मन कोय ।
जो चाहैं सोई करैं, उन से सब कुछ होय ॥
(भाग ३, साखी ७१)

पलटू चाहैं सो करैं, उन से सब कुछ होय ।
राम का मिलना सहज है, संत मिला जो होय ॥
(भाग ३, साखी ७२)

राम का मिलना सहज है, संत का मिलना दूरि ।
पलटू संत के मिले विनु, नाम से परै ना पूरि ॥
(भाग ३, साखी ७३)

पलटू संत जो कहि गये, सोई वात है ठीक ।
वचन संत के नहि टरै, ज्यों गाड़ी की लीक ॥
(भाग ३, साखी ९६)

सिहन कै लेहड़ा किन देखा, वसुधा भरमे एक ।
ऐसे संत कोइ एक हैं, और रंग सब भेप ॥
(भाग ३, साखी १५

*नहिं हीरा बोरन चलें, सिंह न चलें जमात ।
ऐसे संत कोइ एक हैं, और मांग सब खात ॥

(भाग ३, साखी १५९)

कहिबे मे क्या भया भाई, जब ज्ञान आपु से होई ॥
**अललपच्छ के चेटुका[1], वा को कौन करै उपदेस ।
उलटि मिलै परिवार में, वा से कौन कहै संदेस ॥
ज्यों सिसु होत मराल[2] के, वा को कौन सिखावै ज्ञान ।
नीर करैं अलगाइ कै, वह छीर करतु है पान ॥
सिंह कै बच्चा गिरि पर्यो, वह खेलत तुरत सिकार ।
वा को कौन सिखावई, वो हस्ती डारत मार ॥
मन को कौन सिखावता, उन्ह अनुभव भा परकास ।
सिखई बुधि केहि काम की, जो हृदय न पलटूदास ॥

(भाग ३, शब्द ९०)

संत न चाहै मुक्ति को नही पदारथ चार ॥
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी ।
ऋद्धि सिद्धि पर थकै स्वर्ग की आस न हेरी ॥
तीरथ करहिं न व्रत नही कछु मन मे इच्छा ।
पुन्य तेज परताप संत को लगै अनिच्छा ॥
ना चाहैं बैकुंठ न आवागवन निवारा ।
सात स्वर्ग अपवर्ग तुच्छ सम ताहि बिचार ॥

---

*कबीर साहिब भी कहते हैं कि शेरों के दल नहीं होते, हंसों के समूह नहीं होते, लालों की बोरियां नहीं होतीं और साधुओं की टोलियां नहीं होतीं । आपके कहने का भाव है कि पूर्ण सन्त दुर्लभ होते हैं :

सिंहों के लहिंड़े नहीं, हंसों के नहीं पांत ।
लालों की नहीं बोरियां, साध न चलैं जमात ॥

**अललपच्छ = ऐसा पक्षी जो आकाश में ऊँचाई पर जाता है । वह आकाश में ही अण्डा देता है और उसका अण्डा आकाश में ही फट जाता है । उसमें से जो बच्चा निकलता है, वह भी एकदम ऊपर की ओर उड़ना प्रारम्भ कर देता है ।

१ बच्चा, २ हंस . हंस पानी को अलग कर देता है और दूध को ही पीता है ।

पलटू चाहै हरि भगति ऐसा मता हमार ।
संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार ॥
(भाग १, कुंडली ५७)

ऋद्धि सिद्ध से वैर संत दुरियावते ।
इन्द्रासन वैकुंठ विष्टा सम जानते ॥
करते अविरल[1] भक्ति प्यास हरि नाम की ।
अरे हाँ पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहि काम की ॥
(भाग २, अरिल ९)

साध महातम बड़ा है जैसो हरि यस होय ॥
जैसो हरि यस होय ताहि को गरहन कीजै ।
तन मन धन सब वारि चरन पर तेकरे दीजै ॥
नाम से उत्पति राम संत आनाम[2] समाने ।
सब से बड़ा अनाम नाम की महिमा जाने ॥
संत बोलते ब्रह्म चरन कै पियैं पखारन ।
बड़ा महापरसाद सीत संतन कर छाड़न ॥
पलटू संत न होवते नाम न जानत कोय ।
साध महातम बड़ा है जैसो हरि यस होयं ॥
(भाग १, कुंडली २१)

धन जननी जिन जाया है, सुत संत सखी री ॥
तन मन धन उन पै लै दीजे, सत्तनाम जिन पाया है ॥
माया जा के निकट न आवै, तिरगुन दूर बहाया है ॥
कंचन काच औ सत्रु मित्र को, भेद नहीं बिलगाया है ॥
सहज समाधि अखंडित जा की, जग मिथ्या ठहराया है ॥
पलटूदास सोई सुतवंती[3], संत को गोद खिलाया है ॥
(भाग ३, शब्द १७)

पलटू साहिब ने सन्तों को कर्त्ता का रूप, बल्कि कर्त्ता से भी बड़ा कहा है । आप कहते हैं कि वह परमात्मा ही गुरु का रूप धारण करके

१. निरंतर, २. सबसे ऊँचा आन्तरिक लोक, अनामी लोक, ३. पुत्रवती, माता ।

र में आता है। इसलिए परमात्मा तथा गुरु में कोई अन्तर नहीं झना चाहिए। सन्त-सतगुरु में हरि इस प्रकार समाया हुआ है जिस र लकडी में अग्नि, फूलों में सुगन्धि, दूध में घी तथा मेंहदी में ी। सन्त-सतगुरु सर्व-समर्थ होते हैं तथा सदा उनकी आज्ञा में रहना

वड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया विचार ॥
संतन किया विचार ज्ञान का दीपक लीन्हा।
देवता तैंतिस कोट नजर में सब को चीन्हा ॥
सब का खंडन किया खोजि के तीनि निकारा।
तीनों में दुइ सही मुक्ति का एकै द्वारा ॥
हरि को लिया निकारि बहुर तिन मंत्र विचारा।
हरि हैं गुन के बीच संत हैं गुन से न्यारा।
पलटू प्रथमै संत जन दूजे हैं करतार।
वड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया विचार ॥
(भाग १, कुंडली २२)

*हरि जन हरि हैं एक सबद के सार में।
जो चाहैं सो करैं सन्त दरबार में ॥
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।
अरे हाँ पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में ॥
(भाग २, अरिल २२)

जो तू चाहे नाम बैठु सतसंग में।
संत मिला जो होय केहू के रंग में ॥
उन से सब कछु होय फलै में फूल है।
अरे हाँ पलटू हरि जन हरि में रहै बास ज्यों फूल में ॥
(भाग २, अरिल २३)

---

*पलटू साहिब ने हरि और हरिजन दोनों का मूल या सार शब्द को ही माना है। हरि शब्द रूप है और सन्त या हरिजन शब्द का ही प्रकट रूप है। इसलिए ईसा को देहधारी शब्द (Word made flesh) कहा गया है। सब पूर्ण सन्त शब्द का रूप होते हैं। वह समझें कि गुप्त शब्द सन्त रूप में प्रकट हो कर जीवों को गुप्त शब्द से जोड़ने का काम करता है। यही कारण है कि गुरु को शब्द स्वरूपी और शब्द को सच्चा गुरु कहा गया है

संत हमारी देह और ना कोऊ है।
ढरै पसीना संत ढरै मोर लोहू है॥
दोनों एक सरीर देखत कै दुइ धरौ।
अरे हाँ पलटू हरि ऊधो से कहैं दुष्ट राई करौं॥ (भाग २, अरिल १

संत औ राम को एक कै जानिये,
दूसरा भेद ना तनिक आनै।
लाली ज्यों छिपी है मिंहदी के पात में,
दूध में घीव यह ज्ञान ठानै॥
फूल में वास ज्यों काठ में आग है,
संत में राम यहि भाँति जानै।
दास पलटू कहै संत में राम है,
राम में संत यह सत्य मानै। (भाग २, रेखता १७)

संत हमारे प्रान रहौं मैं साथ में।
तीन लोक सब रहै संत के हाथ में॥
मोहूँ डारै बेचि उजुर मैं ना करौं।
अरे हाँ पलटू हरि ऊधो से कहैं संत से मैं डेरौं॥ (भाग २, अरिल १७)

जैसे काठ में अगिन है, फूल में है ज्यों वास।
हरि जन में हरि रहत है, ऐसे पलटूदास॥ (भाग ३, साखी ४

मिंहदी में लाली रहै, दूध माहिं घिव होय।
पलटू तैसे संत हैं, हरि बिन रहैं न कोय॥ (भाग ३, साखी

साध हमारी आतमा, हम साधन के दास।
पलटू जो दोडति[१] करै, होय नरक में वास॥ (भाग ३, साखी

*इन कुछ प्रसंगों में परमात्मा कहता है कि सन्त ही मेरी देह और प्राण हैं सन्तों से डरता हूँ। इसका केवल इतना ही भाव है कि सन्त-जन सर्व-समर्थ होते

१. दुभांता।

राम समीपी संत हैं वे जो करें सो होय ॥
वे जो करें सो होय हुकुम में उनके साहिव ।
संत कहैं सोइ करें राम ना करते वायव[1] ॥
राम के घर के वीच काम सव संत करते ।
देवता तेंतिसकोट संत से सबही डरते ॥
राई पर्वत करें करें परवत को राई ।
राम के घर के वीच फिरत है संत दुहाई ॥
पल्टू घर में राम के और न करता कोय ।
राम समीपी संत हैं वे जो करें सो होय ॥

(भाग १, कुंडली २१)

अदल होइ वैकुण्ठ में सव कोइ पावैं सुक्ख ॥
सव कोइ पावैं सुक्ख अमल है तेज तुम्हारा ।
भौसागर के वीच लगै ना उतरत वारा ॥
लेइ तुम्हारो नाम ताहि को वार न वाँकै ।
खुले-वंद वह जाइ तनिक जमदूत न ताकैं ॥
ब्रह्मा विस्नु महेस नाम सुनि उठैं डेराई ।
तीनि लोक के वीच फिरै ना आन दुहाई ॥
पलटू तेरी साहिबी जीव न पावै दुक्ख ।
अदल होइ वैकुण्ठ में सव कोइ पावै सुक्ख ॥

(भाग १, कुंडली २०)

देत लेत हैं आपुही पलटू पलटू सोर ॥
पलटू पलटू सोर राम की ऐसी इच्छा ।
कौड़ी घर में नाहि आपु मैं माँगौं भिच्छा ॥
राई परवत करें करें परवत को राई ।
अदना के सिर छत्र पंजरे[2] की करें वड़ाई ॥

१. खिलाफ, २. शरण लेने वाले को ।

लीला अगम अपार सकल घट अंतरजामी।
खाँहि खिलावहिं राम देहिं हम को बदनामी॥
हम सों भया न होयगा साहिब करता मोर।
देत लेत हैं आपुहीं पलटू पलटू सोर॥
(भाग १, कुंडली २१)

जीव के बड़े ऊँचे भाग हो तो ऐसे पूर्ण सन्तों की शरण प्राप्त होती है। ऐसे सन्तों की सेवा तथा भक्ति कभी अकारथ नहीं जाती। उनकी सेवा, भक्ति तथा उनकी आज्ञा का पालन करने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। ऐसे पूर्ण सन्तों के दर्शन करने से अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उनके चरण-कमलों पर शीश झुकाने से आवागमन के बंधन छूट जाते हैं। धन्य हैं, वह शीश जो गुरु-चरणों पर झुकता है। जो शीश सतगुरु के चरणों पर नहीं झुकता उसमें तथा कद्दू में कोई अन्तर नहीं।

पूरा सतगुरु पापों व विकारों को नाश करने वाला है। वह कर्मों का लिखा बदलने में समर्थ होता है। सतगुरु रूपी मज़बूत खूंटी से बंधने में ही जीव का बचाव है। पूरा सतगुरु ऐसा धोबी है जो जीव का जन्म-जन्मान्तर का मैल धोकर आत्मा को निर्मल बना देता है। सतगुरु उस जहाज़ के समान हैं जो जीव को सहज ही आवागमन के सागर से पार ले जाता है।

पूरा सतगुरु सच्चे नाम का दाता होता है। वह नाम की दात देकर जीव के विषय में बेखबर नहीं हो जाता बल्कि सदा के लिए उसके अन्दर आंखों के पीछे बैठ जाता है। सतगुरु सदा शिव-नेत्र में बैठ कर—जिसे पलटू साहिब ने 'काया की काशी' कहा है—जीव की सहायता, सम्भाल तथा उसका मार्ग दर्शन करता रहता है।

संसार में सच्चे गुरु कम हैं तथा झूठे या दम्भी गुरु बहुत हैं। सच्चे गुरु को मन-बुद्धि के घाट पर बैठ कर परख सकना असम्भव है। परन्तु सन्तों ने स्वयं पूर्ण सन्तों के जो गुण वर्णन किए हैं, उनको सम्मुख रख

कर मन की पूरी तसल्ली करनी चाहिए। पूरी खोज तथा तसल्ली के बाद ही अपने आप को किसी महात्मा को समर्पित करना चाहिए।

पूरे गुरु का मिलाप बड़े भाग्य से मिलता है तथा जिनको गुरु नहीं मिलता, उसका भी यह कारण है कि उनके भाग्य में लिखा ही नहीं होता। यदि मालिक की दया से पूरा गुरु मिल जाये तो तन, मन और धन सब कुछ उस पर न्योछावर करके अपने आप को पूरी तरह से उसके सुपुर्द कर देना चाहिए तथा पूरी श्रद्धा और प्रेम से उसके बताए हुए मार्ग पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूरा सतगुरु मिलै जो पूजै मन की आस ॥
पूजै मन की आस पिया को देय मिलाई।
छूटा भव जंजाल बहुत सुख हम ने पाई ॥
देखा पिय का रूप फिरा अहिबात[१] हमारा।
बहुत दिनन की रौंड़ माँग भर सेंदुर धारा ॥
सासु ननद[२] को मारि अदल[३] मैं दिहा चलाई।
उन कै चलै न जोर पिया को मैंहि सुहाई ॥
पिय जो बस में भये पिया को जादू कीन्हा।
ऐसी लागी नेह पिया तब मोको चीन्हा ॥
प्रसाद पिया को पाय के मिले गुरु पलटूदास ॥
पूरा सतगुरु मिलै जो पूजै मन की आस ॥

(भाग १, कुंडली १)

गुरू पूरा मिलै ज्ञान साधन करै,
पकरि कै पाच पच्चीस मारै।
आतमा देव है पिंड का दोहरा,
काम औ क्रोध बिनु आग जारै ॥
चंद औ सूर तहँ कोटि तारा उगैं,
प्रान बायू सेती तत्त मारै।

---

१. सुहाग, २. माया और वासना, ३. न्याय।

गगन के बीच में तेल बाती बिना,
दास पलटू महा दीप बारै ॥
(भाग २, रेखता २)

सतगुरु के परताप से पकरा पाँचो चोर ॥
पकरा पाँचो चोर नगर में अदल चलाया ।
निर्गुन दिया निकारि आनि कै भक्ति बसाया ॥
लोभ मोह को पकरि ताहि की गरदन मारी ।
तृस्ना औ हंकार पेट दियो इनको फारी ॥
दुर्मति दई निकारि सुमति का चाबुक दीन्हा ।
चढ़े सिपाही संत [१]अमल कायागढ़ कीन्हा ॥
पलटू संजम मैं किया परा मुलुक में सोर ।
सतगुरु के परताप से पकरा पाँचो चोर ॥
(भाग १, कुंडली २५)

[२]जो साहिब का लाल है सो पावैगा लाल ॥
सो पावैगा लाल जाइ के गोता मारै ।
मरजीवा[३] ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै ॥
निसि दिन मारै मौज मिली अब वस्तु अपानी ।
ऋद्धि सिद्धि औ मुक्ति भरत हैं उन घर पानी ॥
वे साहन के साह उन्हें है आस न दूजा ।
ब्रह्मा विस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा ॥
पलटू गुरु भक्ति बिना भेष भया कंगाल ।
जो साहिब का लाल है सो पावैगा लाल ॥
(भाग १, कुंडली १२६)

सतगुरु सिकलीगर[४] मिलैं तब छुटै पुराना दाग ॥
सतगुरु सिकलीगर मिलैं तब छुटै पुराना दाग ॥
छुटै पुराना दाग गड़ा मन मुरचा माहीं ।

१. काया रूपी किले पर राज्य स्थापित कर लिया, २. पहले 'लाल' का अर्थ है पुत्र ; यहां लाल शिष्य के लिये प्रयोग किया गया है। दूसरे 'लाल' का अर्थ नाम रूपी हीरा है, ३. मरजीवा का अर्थ है गोताखोर, जो मोती निकालता है। यहाँ लक्षणार्थ है ज मरकर जीवित हो जाता है अर्थात् जीते-जी मरता है, ४. वह जो तलवार, चाकू, छु आदि के जंग और अन्य दाग छुड़ाता है। सतगुरु कर्म के बंधन नष्ट कर डालता है।

सतगुरु पूरे बिना दाग यह छूटै नाहीं ॥
आँवां[1] लेवै जोग तेगर[2] को मलै बनाई।
जौहर देय निकार सुरत को रद चलाई ॥
सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरंड[3] लगावै।
जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै ॥
पलटू सैफ[4] को साफ करि बाढ़ धरै बैराग।
सतगुरु सिकलीगर मिलै तब छूटै पुराना दाग ॥

(भाग १, कुडली २)

धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ॥
चादर लीजै धोय मैल है बहुत समानी।
चल सतगुरु के घाट भरा जहँ निर्मल पानी ॥
चादर भई पुरानि दिनों दिन बार[5] न कीजै।
सतसंगत में सौद ज्ञान का साबुन दीजै ॥
छूटै कलमल दाग नाम का कलप लगावै।
चलिये चादर ओढ़ि बहुर नहिं भवजल आवै ॥
पलटू ऐसा कीजिये मन नहिं मैला होय।
धुबिया फिर मर जायगा चादर लीजै धोय ॥

(भाग १, कुडली ७)

चादर लेहु धुवाइ है, मन मैल भया है।
सतगुरु पूरा धोबी पाया, सतसंगति सोदाई है ॥
तिरगुन दाग परयो चादर में, मलि मलि दाग छुड़ाई है।
आँच दिहिन बैराग कि भाठी, *सरवन मनन घमाई है ॥

---

१. खुरदरा पत्थर जिससे किसी वस्तु को साफ़ किया जाता है, २. तलवार, ३. एक प्रकार का पत्थर जो निकल के काम आता है, ४. तलवार, ५ देर।

*सरवन अर्थात् श्रवण का अर्थ है सुनना और मनन का अर्थ है गम्भीर विचार करना। यहाँ नाम के सुनने और नाम के रंग में रंग जाने से अभिप्राय है। गुरु नानक साहिब ने 'जपु जी' की 'सुणिए' और 'मन्नै' की पौड़ियों में अन्दर शब्द या नाम—जिसको आप 'ऐसा नाम निरंजन होए' कहते हैं—के सुनने और मानने की भारी महिमा की है।

निरखि परखि कै चादर धोइनि, साबुन ज्ञान लगाई है।
पलटूदास ओढ़ि चलु चादर, बहुरि न भवजल आई है ॥

(भाग ३, शब्द ४

गुरु दरियाव नहाया है, ता की दुरमति भागी ॥
गुरु दरियाव सदा जल निरमल, पैठत उपजै ज्ञाना है ॥
अरसठ तीरथ गुरु के चरनन, स्त्री मुख आपु बखाना है ॥
जब लग गुरु दरियाव न पावै, तब लग फिरै भुलाना है ॥
पलटुदास हम बैठि नहाने, मिटिगा आना जाना है ॥

(भाग ३, शब्द ३

नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार ॥
कैसे उतरै पार पथिक को बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसे कै पावै ॥
मन में धरै न ज्ञान नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहि कान प्रीति बिन जैसे कहनी ॥
छूटि डगमगी नाहि संत का वचन न मानै।
मूरख तजै बिबेक चतुरई अपनी आनै ॥
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं कैसे उतरै पार ॥

(भाग १, कुंडली ६

भव सिंधु के पार जो चाहिये जान को,
केवट भेदी तलास कीजै।
घाट औ बाट के भेद का महरमी[1],
उसी की नाव पर पाँव दीजै ॥
सबद की नाव पर चढ़ जो ध्याय कै,
जाय वहि पार नहि पाँव भीजै।
दास पलटू कहै कौन मल्लाह है,
पार भव सिंधु तब उतरि लीजै ॥

(भाग २, रेख़्ता १

१. भेदी, जानकार।

पलटू जप तप के किहे, सरै न एको काज।
भवसागर के तरन को, सतगुरु नाम जहाज ॥
(भाग १, साखी ८)

वृच्छा बड़ परस्वारथी, फिरै और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज ॥
(भाग ३, साखी ६२)

संत संसार में आय परगट भये,
नाम दृढ़ाय कै जक्त तारा ॥
भजन भगवान को कोऊ ना जानता,
संत यहि हेतु औतार धारा ॥
राम के नाम पर अदल[1] चलाय कै,
काल के सीस पर धौल मारा ॥
दास पलटू कहै रहे सब डूबते,
संत ने पकरि कै किहा पारा ॥
(भाग २, रेखता १६)

तीरथ संत समाज आतमा गंग है।
तट है सील सनेह रु दया तरंग है ॥
निरमल नीर गँभीर ज्ञान धारा बहै।
अरे हाँ पलटू गुरु दरियाव नहाय तो दुरमति ना रहै ॥
(भाग २, अरिल ६०)

सिव सक्ती के मिलन में मो को भयो अनन्द ॥
मो को भयो अनन्द मिल्यो पानी में पानी।
दोऊ से भा सूत नहीं मिलि कै अलगानी ॥
मुलुक भयो सलतन्त मिल्यो हाकिम को राजा।
रैयत करै अराम खोलि कै दस दरवाजा ॥
छूटी सकल वियाधि मिटी इन्द्रिन की दुतिया।
को अब करै उपाधि चोर से मिलि गइ कुतिया ॥

---

१. न्याय, राज।

पलटू सतगुरु साहिब काटौ मेरौ वन्द।
सिव सक्ती के मिलन में मो को भयौ अनन्द॥
(भाग १, कुंडली २५३)

करम बँधा संसार बँधावै आप से।
जमपुर बाँधा जाय करम की फाँस से॥
कोई न सकै छुड़ाय रस्सा यह मोट है।
अरे हाँ पलटू संतन डारा काटि, नाम की ओट से॥
(भाग २, अरिल १

तिल को तेल वसाय फूल के संग में।
सलिता गँगा होत परै जव गंग में॥
लोहा कंचन होय पारस के परस से।
अरे हाँ पलटू मूरख कथते ज्ञान संत के दरस से॥
(भाग २, अरिल २०)

पराई चिता की आगि महैं,
दिन राति जरै संसार है जी।
चौरासी चारिउ खान चराचर,
कोऊ न पावै पार है जी॥
जोगी जती तपी सन्यासी,
सब को उन डारा जारि है जी।
पलटू मैं हूँ जरत रहा,
सतगुरु लीन्हा निकारि है जी॥
(भाग २, झूलना ५

को खोलै कपट किवरिया हो, सतगुरु विन साहिब॥
[1]नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो।
अपने मन की वड़ी कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो॥
पाँच पचीस रहै घट भीतर, कौन वतावै डगरिया हो
पलटू दास छोड़ि कुल जतिया[2], सतगुरु मिले [3]संघतिया हो
(भाग ३, शब्द

१. मायका, २. जाति, ३. साथी।

काम क्रोध जिन के नहीं, लगै न भूख पियास।
पलटू उनके दरस से, होत पाप को नास॥
(भाग १, साखी ५८)

तड़पै बिजुली गगन में, कलस जात है फूटि।
पलटू संत के नाँव से, पाप जात हैं छूटि॥
(भाग १, साखी ६७)

पलटू तीरथ को चला, बीचे मिलि गे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनन्त॥
(भाग १, साखी ६८)

*चलती चक्की देखि दिया मैं रोय है।
पीस गया संसार बचा न कोय है॥
अधबीचे में परा कोऊ ना निरबहा।
अरे हाँ पलटू बचिगा कोऊ संत जो खूँटे लगि रहा॥
(भाग २, अरिल ८७)

[1]पूरब पुन्न भयें परगट,
सतसंग के बीच में जाय परी।
आनंद भयो जब संत मिले,
वही सुभ दिन वही सुभ घरी॥
दरसन करत त्रय ताप मिटे,
बिनु कौड़ी दाम मैं जाय तरी।
पलटू आवागवन छुटा,
रज चरनन की जब सीस धरी॥
(भाग २, झूलना ८)

पहिले दासातन करै सो बैराग प्रमान[2]॥
सो बैराग प्रमान सेवा साधुन की कीजै।

*कबीर साहिब भी कहते हैं :

चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबत रहा न कोय॥

१. पहले नेक कर्म उदय हुए तो सत्संग मिला, २. मानने योग्य।

तव छोड़ै संसार वूझ घरही में लीजै ॥
काढ़ै रस रस गोड़ कछुक दिन फिरै उदासी ।
सतगुरु उहवाँ वसैं जहाँ काया की कासी[1] ॥
आसन से दृढ़ होय घटावै नींद अहारा ।
काम क्रोध को मारि तत्व का करै विचारा ॥
भक्ति जोग के पीछे पलटू उपजै ज्ञान ।
पहिले दासातन करै सो वैराग प्रमान ॥
(भाग १, कुंडली ९७)

*गगन मैदान में ध्यान धूनी धरै,
मन में लखि गुरू का ज्ञान छाला ।
चंद्र सिर तिलक है तत्त सुमिरन करै,
जपै हरि नाम अवधूत वाला ॥
प्रेम भभूति विवेक की फावड़ी,
गूदरी खुसी अरु आड़ माला ।
दास पलटू कहै संत की सरन में,
लिखा नसीव को मेटि डाला ॥
(भाग २, रेखता २३)

पलटू लिखा नसीव का, संत देत हैं फेर ।
साच नहीं दिल आपना, ता से लागै देर ॥
(भाग ३, साखी ३६)

---

१. कासी, हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल, यहाँ अभिप्राय तीसरे तिल से है जो हरएक की आँखों के पीछे है।

*इस रेखता में आप सच्चे योगी या अवधूत की महिमा वर्णन कर रहे हैं। आप कहते हैं कि सच्चा योगी बाह्य भेख के स्थान पर अन्तर्मुख साधना में लगता है। वह अन्दर लिव को ले जाकर सतगुरु के स्वरूप के ध्यान की धूनी लगाता है और सतगुरु के उपदेश अर्थात् गुरुमन्त्र का आसन बनाता है। वह नाम के जाप से अन्तर में चाँद को प्रकट कर लेता है जो उसके मस्तक पर तिलक का काम करता है। वह प्रेम की भभूति और विवेक की फावड़ी लेता है। वह परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहने की गुदड़ी पकड़ता है। उसकी माला शील, संयम और शुभ गुणों की वह बाड़ है जिसके सहारे वह पाप कर्मों से बचा रहता है। ऐसा योगी किसी पूर्ण सन्त की शरण में जा कर, उसके बताए हुए मार्ग पर चलकर अपना भाग्य बदल लेता है।

अफर[1] फरावैं गाछर[2], रैनि को दिन करें।
वांझिन बेटा देइ, वेद गूंगा पढ़ें॥
पाहन जल उतराय, दरस पापी तरें।
अरे हाँ पलटू लिखा कर्म को मेटि, संत जन फिर गढ़ें॥
(भाग २, अरिल १४५)

गुरु तो कीजिये बूझि विचारि के,
करम अरु भरम से रहत न्यारा।
करम को बंद जम काल को फंद है,
पचि मरे गुरु सिष्य दोउ सीस धारा॥
धनी को भेद लै वस्तु खोवैं नहीं,
रैन बिनु दीप के महल सारा।
पाँच पच्चीस को पकरि सठ फंद में,
लाय गुन तीन नि:तत्त[3] मारा॥
विवेक जानै नहीं कान फूंकत फिरैं,
बिना सत सबद किन काल टारा।
दास पलटू कहै सदा वह पाक है,
गुरु तो वही जिन तत्त गारा[4]॥
(भाग, २. रेखता ३)

साध परखिये रहनि में, चोर परखिये रात।
पलटू सोना कसे[5] में, झूठ परखिये बात॥
(भाग ३, साखी ६१)

सिष्य सिष्य सबही कहै, सिष्य भया ना कोय।
पलटू गुरु की वस्तु को, सीखै सिष तब होय॥
(भाग ३, साखी १४९)

सतगुरु सब को देत हैं लेता नाही कोय॥
लेता नाहीं कोय सीस को धरै उतारी।

---

१. अफल, फल रहित, २. वृक्ष, पेड़, ३. जो सार वस्तु नहीं है, ४. सार निकाल लिया है, ५. कसौटी पर कसने से।

वही सकस को मिलै मरै की करै तयारी ॥
कड़ू वहुत सतनाम देखत कै डेरै सरीरा।
रोटी खावनहार खायगा क्योंकर हीरा ॥
अंधा होवै नीक वेद का पथ जो खावै ।
मलयागिर की वास वाँस में नहीं समावै ॥
पलटू पारस क्या करै जो लोहा खोटा होय ।
सतगुरु सव को देत हैं लेता नाहीं कोय ॥
(भाग १, कुंडली ८७)

सन्त-जन केवल दुखी जीवों के उद्धार या कल्याण के लिए ही निज-धाम, सचखण्ड का परम सुख त्याग कर इस मातलोक में आते हैं। वे प्रत्येक प्रकार के लालच और स्वार्थ से मुक्त होते हैं। उनको अनेक प्रकार के कष्ट और यातनाएँ भी दी जाती हैं, परन्तु वे कभी अपना स्वभाव नहीं वदलते। वे बुराई के वदले में भी भलाई करते हैं। किसी सन्त का सिर फोड़ा गया, किसी की खाल खींची गई तथा किसी से कोई अन्य वुरा वर्ताव किया गया। पलटू साहिव को उनकी कुटिया में वन्द करके जीवित ही जला दिया गया, परन्तु सन्तों ने शान्ति-पूर्वक सब कुछ सहन किया। सन्तों की क्षमा उनकी वड़ाई का प्रत्यक्ष प्रमाण है :

पर दुख कारन दुख सहै सन[1] असंत है एक ॥
सन असंत है एक काट के जल में सारै ।
कूँचै खैंचै खाल उपर मे मुँगरा मारै ॥
तेकर वटि के भाँजि भाँजि के वरतै रसरा ।
नर की वांधै मुसुक वाँधते गउ और वछरा ॥
अमरजाल फिर होय वझावै जलचर[2] जाई ।
खग[3] मृग जीवा जंतु तेही में वहुत वझाई ॥
जिव दे जिव संतावते पलटू उन की टेक ।
पर दुख कारन दुख सहै सन असंत है एक[4] ॥
(भाग १, कुडली ३७)

१. ऐसे, २. पानी में रहने वाले जीव-जन्तु, ३. पक्षी, ४. इस कुंडली में सन्त की उपमा रस्सी से की गई है जो कष्ट सह कर भी मजवूत होती है।

धन्य हैं संत निज धाम सुख छाड़ि कै,
आन के काज को देह धारा।
ज्ञान समसेर लै पैठि संसार में,
सकल संसार को मोह टारा॥
प्रीति सब से करैं मित्र औ दुष्ट से,
भली अरु बुरी दोउ सीस धारा।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूँ,
जानहूँ संत जिन जक्त तारा॥

(भाग २, रेखता १५)

संत सासना[1] सहत हैं जैसे सहत कपास॥
जैसे सहत कपास नाय चरखा में ओटैं।
रूई धर जब तुमै हाथ से दोऊ निभोटैं॥
रोम रोम अलगाय पकरि के धुनिया धूनो।
पिउनी[2] नँह[3] दै कात सूत ले जुलहा बूनो॥
धोबी भट्ठी पर धरी कुन्दीगर मुँगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि जोरि कै किया तयारी॥
पर-स्वारथ के कारने दुख सहै पलटूदास।
संत सासना सहत हैं जैसे सहत कपास॥

(भाग १, कुंडली २६)

वृच्छा[4] फरै न आप को[5], नदी न अँचवै नीर।
पर स्वारथ के कारने, संतन धरैं सरीर॥

(भाग ३, साखी १११)

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं॥
प्रीत बढ़ावैं जक्त में धरनी पग डोलैं।

---

१. कष्ट, पीड़ा, २. रूई की पूनी, ३. नाखून, ४. वृक्ष, ५. वृक्ष अपने लिये नहीं

कितनौ कहै कठोर वचन वे अमृत बोलैं ॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा ।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा ॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार ।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार ॥

(भाग १, कुंडली ४)

पलटू साहिब कहते हैं कि भव-सागर से पार उतरने का एकमात्र साधन सन्तों की शरण है, इसलिए मैंने प्रत्येक ओर से ध्यान को निकाल कर केवल सतगुरु के चरण-कमलों में लगा दिया है। मैंने अपनी बाजी गुरु के साथ लगा ली है तथा अब मुझे लाभ ही लाभ है। जीत में तो लाभ होना ही है हार में भी हानि नहीं, क्योंकि फिर भी मैं अपने सतगुरु का ही दास कहलाऊँगा। पलटू साहिब कहते हैं कि चाहे सारा संसार नाराज़ हो जाए, परन्तु गुरु खुश है तो कोई परवाह नहीं। गुरु खुश हो गया तो समझो सब कुछ मिल गया। *आप कहते हैं कि सुमिरन, ध्यान तथा प्रेम केवल सतगुरु का होना चाहिए। दत्तचित्त होकर सतगुरु का ध्यान करने से ही परमार्थ में सफलता मिलती है :

सकल तजि गुरु ही से ध्यान लगैहौं ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस न पूजिहौं, ना मूरत चित्त लैहौं।
जो प्यारा मोरे घट मा बसतु है, वाही को माथ नवैहौं ॥
ना कासी में करवत लैहौं, ना पचकोस में जैहौं।
प्राग जाय तीरथ नहिं करिहौं, जगर न सीस कटैहौं ॥
अजपा और अनाहू साधों, त्रिकुटी ध्यान न लैहौं।

---

*स्वामीजी महाराज ने भी अपनी वाणी में इस बात पर ज़ोर दिया है कि पहली सीढ़ी गुरु-भक्ति है और दूसरी नाम की कमाई। आप कहते हैं कि गुरु की सेवा करके गुरु को प्रसन्न कर लेना चाहिए : 'गुरु भक्ति कर गुरु रिझाओ।' गुरु का प्रसन्न होना कोई छोटी वस्तु नहीं है। गुरु की प्रसन्नता परमात्मा की प्रसन्नता और दया की निशानी है :

गुरु का मुख होना है भारी।
सतपुरुष निज कृपा धारी ॥ (सार वचन)

पदम आसन खींच न बैठौं, अनहद नाहिं वजैहौं ॥
सवही जाप छोड़ि के साधो, गुरु का सुमिरन लैहौं ।
गुरु मूरत हिरदय में छाई, वाही से ध्यान लगैहौं ॥
दुई खुदी हस्ती जव मेटे, निरंकार कहलैहौं ।
गगन भूमि में राज हमारो, अनलहक़[1] धूम मचैहौं ॥
पलटूदास प्रेम की वाजी, गुरु ही से दांव लगैहौं ।
जीतौं तो मैं गुरु को पावौं, हारौं तो उनकी कहैहौं ॥
(भाग ३, शब्द ५)

कटाच्छ[2] कै हमरी ओरि ताको,
सतगुरु करो दाया है जी ।
जड़ चेतन दोउ लागि रहे,
जवर तेरी माया है जी ॥
कुछ जोग जुगत वतलाय दीजै,
जा से सोधौं मैं काया है जी ।
पलटू तुम दीनदयाल वड़े,
सतगुरु सेती सव पाया है जी ॥
(भाग २, झूलना ३)

वहि देवा को पूजिये, सव देवन कै देव ।
पलटू चाहे भक्ति जो, सतगुरु अपना सेव ॥
(भाग ३, साखी ३)

जल पपान[3] को छोड़ि कै पूजौ आतम देव ॥
पूजौ आतम देव खाय औ बोलै भाई ।
छाती दैकै पांव पथर की मूरत वनाई ॥
ताहि धोय अन्हवाय विजन[4] लै भोग लगाई ।
साच्छात[5] भगवान द्वार से भूखा जाई ॥
काह लिये वैराग झूठ कै वांधे वाना ।
भाव भक्ति की मरम है कोइ विरले जाना ॥

---

१. अहं ब्रह्मास्मि, सोहं, मैं ही परमात्मा हूँ, २. कृपा, ३. पत्थर, ४. व्यंजन, ५. साक्षात् ।

पलटू दोउ कर जोरि कै गुरु संतन को सेव ।
*जल पषान को छोड़ि कै पूजो आतम देव ॥

(भाग १, कुंडली २६८)

जग खीजै तो का भया रीझै सतगुरु संत ॥
रीझै सतगुरु संत आस कुछ जग की नाहीं ।
एक द्वार को छोड़ और ना माँगन जाही ॥
जिउ मेरो वरु[1] जाय जन्म वरु जाय नसाई ।
करों न दूसर आस संत की करों दुहाई ॥
तीन लोक रिसियाय[2] सकल सुर नर और नारी ।
[3]मोर न वाँकै वार पठंगा पाया भारी ॥

---

*पूर्ण सन्तों ने निर्जीव मूर्तियों व तीर्थों की भक्ति के स्थान पर महा-चेतन सतगुरु की भक्ति का उपदेश दिया है। कबीर साहिब अपने एक शब्द में सतगुरु को जीवित परमात्मा कहते हैं : 'सतिगुरु जागता है देउ।' आप कहते हैं कि फूलों में तीन देवताओं का निवास है जिनको अज्ञानी जीव निर्जीव पत्थरों की मूर्तियों पर चढ़ाते हैं। आप कहते हैं कि मूर्ति घड़ने वाला कलाकार पत्थर पर पाँव रख कर मूर्ति बनाता है। यदि इस मूर्ति में शक्ति होती तो पहले घड़ने वाले को खा जाती। आप कहते हैं कि जो भोग मूर्तियों को लगाया जाता है, वह तो पण्डे खा जाते हैं। आप खेद प्रकट करते हैं कि सारा संसार मूर्ति-पूजा की अज्ञानता का शिकार है परन्तु हम प्रभु की कृपा से सतगुरु-भक्ति में लग कर इस भ्रम से मुक्त हो गए हैं :

पाती तोरै मालिनी पाती पाती जीउ ॥
जिसु पाहन कउ पाती तोरै सो पाहन निरजीउ ॥
भूली मालनी है एउ ॥ सतिगुरु जागता है देउ ॥
ब्रहमु पाती बिसनु डारी फूल संकरदेउ ॥
तीनि देव प्रतखि तोरहि करहि किस की सेउ ॥
पाखान गढ़ि कै मूरति कीन्ही दे कै छाती पाउ ॥
जे एह मूरति साची है तउ गड़णहारे खाउ ॥
भातु पहिति अरु लापसी करकरा कासारु ॥
भोगनहारे भोगिआ इसु मूरति के मुख छारु ॥
मालिनि भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि ॥
कहु कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राइ ॥

(आदि ग्रन्थ, ४७९)

१. भले, २. नाराज हो जाये, ३. मेरा बाल बांका नहीं कर सकते।

पलटू सब रोवैं पड़ा मोर भया सलतंत[1] ।
जग खीझै तो का भया रीझै सतगुरु संत ॥

(भाग १, कुंडली १०)

आरती कीजै संत चरन की, यही उपाय न आन तरन की ॥
संत को जस हरि श्री मुख गावैं, संत की रज ब्रह्मा नहिं पावैं ॥
संत चरन बैकुंठ है लोचत, संत चरन को तीरथ सोचत ॥
संत राम से अंतर नाहीं, इक रस देखत दुऊ माहीं ॥
लछमी हैं संतन की दासी, [2]रज चाहत कैलास के बासी ॥
कोटि मुक्ति संतन की चेरी, पलटूदास मूल हम हेरी ॥

(भाग ३, शब्द ११)

पलटू जो सिर ना नवैं बिहतर कद्दू होय ॥
बिहतर कद्दू होय संत से नइ[3] कै चलिये ।
जुरैं सो आगे धरैं गोड़ धैं सेवा करिये ॥
आपन जीवन जनम सुफल कै वह दिन जानैं ।
देखत नैन जुड़ाय सीतलता मन में आनैं ॥
अतर नाहीं करैं मन बच[4] से लावैं सेवा ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस संत हैं तीनों देवा ॥
सीस नवावैं संत को सीस बखानो सोइ ।
पलटू जो सिर ना नवैं बिहतर कद्दू होय ॥

(भाग १, कुंडली ११६)

*जै जै जै गुरु गोबिन्द[5] आरती तुम्हारी ।
निरखत पद कंज कमल, कोटि पतित तारी ॥

---

१. सल्तनत, २. ब्रह्मा और शिव भी चरण-धूलि के लिये तरसते हैं, ३. [illegible] नीचे झुक कर, ४. वचन, ५. पलटू साहिब के गुरु का नाम ।

*इस शब्द में अपने सतगुरु श्री गोविन्द साहिब की उपमा कर रहे हैं [illegible] है कि सतगुरु के चरण-कमलों के दर्शन से करोड़ों पापी तर जाते हैं [illegible] के लिये कैसे दीपक जलाऊँ जब कि उसके अन्दर करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है [illegible] किसमें धोऊँ, जबकि सारे समुद्र उसके चरण-कमलों में समाये हुए हैं [illegible]

(फुटनोट का शेष [illegible])

कोटि भानु उदै जा के, दीपक के वारी।
छीर है समुद्र जा के, चरन का पखारी[1] ॥
लख चौरासी तीनि लोक, जा की फुलवारी।
पुहुप लै कै का चढावों, भंवर कै जुठारी ॥
वाल भोग कहा दीजै, द्वारे पदारथ चारी।
कुवेरजी भंडारी जा के, देवी पनिहारी ॥
सुन्न सिखर भवन जा के, तुरिया असवारी।
आठ पहर वाजा वजै, सवद की झनकारी ॥
काम क्रोध लोभ मोह, सतगुरु धै मारी।
पलटुदास देखि लिया, तन मन धन वारी[2] ॥

(भाग ३, शब्द १२)

(फुटनोट पृष्ठ ११३ का शेष भाग)

से फूल चढ़ाऊँ जब कि तीन लोक और चौरासी उसकी फुलवाड़ी है ? उसे भोग किस वस्तु से लगाऊँ जबकि उसके द्वार पर चारों पदार्थ उपस्थित हैं, कुबेर जिसका भंडारी है और माया जिसकी पनिहारी है ? उसकी आरती के लिये किस प्रकार के बाजे बजाये जायें जब कि वह तुरिया अवस्था को पार करके सुन्न शिखर पर पहुँचा हुआ है जहाँ प्रतिपल शब्द का शाही बाजा बज रहा है ? आप कहते हैं कि मैंने अपना सब कुछ सतगुरु पर न्योछावर करके देख लिया है कि सतगुरु सब अवगुण मिटा कर प्रभु से मिलाने वाला सच्चा दाता है।

१. धोवन, २. न्योछावर।

पहुँच तथा नम्रता

पलटू साहिब ने सन्तों की अगाध गति का भी वर्णन किया है तथा अनेक स्थलों पर इस बात का भी संकेत दिया है कि आप स्वयं ही उस परम पिता परमेश्वर से मिलकर, उसका रूप हो चुके थे, जैसे बूंद समुद्र में समा कर समुद्र हो जाती है। आप कहते हैं कि निःसन्देह मैं लोहा, कौए या तेल के समान था, परन्तु अब अपने प्यारे प्रियतम के साथ मिल कर मैं सोना, हंस या इत्र बन चुका हूँ।

पलटू साहिब कहते हैं कि मुझे यह अवस्था राम नाम का सच्चा व्यापार करने से तथा राम के साथ शतरंज की बाजी लगाने से प्राप्त हुई है। शतरंज के इस खेल में शर्त यह थी कि यदि राम हार गए तो राम मेरे हो जायेंगे और यदि मैं हार गया तो मैं राम का हो जाऊँगा। इस प्रकार मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू थे। अब माया मेरी दासी हो चुकी है और यह मुझे भ्रम में नहीं डाल सकती।

जिस प्रकार पर्वत पर चढ़ने वाला व्यक्ति सब से ऊँची चोटी पर जाकर अपना झण्डा गाड़ता है, जिस प्रकार किसी देश को जीतने वाला दल विजय के चिन्ह रूप में अपना झण्डा झुलाता है, उसी प्रकार पलटू साहिब हद, बेहद के पार अगम देश में अपना झण्डा गाड़ने का दावा करते हैं। आप कहते हैं कि यह अद्भुत देश वर्णनातीत है, कहने सुनने से न्यारा है। वहाँ शब्द का अगम्य नाद बज रहा है तथा अगम्य शब्द का प्रकाश झर रहा है। वहाँ सुरत परम-सत्य में समा कर उसका रूप हो जाती है। यह ऐसा अकथ मण्डल है जो त्रिगुण ज्ञान की पकड़ से परे है। योगी, जपी, तपी, देवी-देवता, अवतार-पैगम्बर, उस अलख और अगम अवस्था को नहीं जान सकते, कोई पूर्ण सन्त ही इस भेद

को जान सकता है।

बहुत से सन्तों ने अन्दर के पहले आध्यात्मिक मण्डल सहंसदल कमल या सहंसरार से सतलोक या सचखण्ड तक के पाँच आध्यात्मिक मण्डलों का वर्णन किया है। कई सन्तों ने सतलोक को चार भागों— सचखण्ड, अलख, अगम तथा अनामी में बाँटा है। पलटू साहिब सबसे ऊपर की आध्यात्मिक अवस्था को 'अनाम' अर्थात् अनामी भी कहते हैं तथा उन्होंने इसको आठवां लोक कह कर भी याद किया है। आप अपने विषय में कहते हैं 'पलटू आठवें लोक में पड़ा दुपट्टा तान'।

इस 'औघट घाटी' को पार करके ही पलटू साहिब अपने आप को सब का आदि, अन्त तथा सबका कर्त्ता कहते हैं। 'आदि अन्त हम ही रहे सब में मेरो वास' या 'हमही उत्पति करें, करें हमहीं संहारा' आप इस अवस्था में पहुँच कर ही अपने आप को 'कर्त्ता के कर्त्ता' कहते हैं।

आप कहते हैं कि सारा संसार तीन गुणों, पाँच तत्वों सहित, सारी त्रिलोकी तथा देवी-देवता नाशवान हैं, परन्तु उस अनामी प्रभु में समाकर उसका रूप हो गए। पूर्ण सन्त कभी जन्म-मरण तथा चौरासी के चक्र में नहीं आते। उनको ऐसी अचल व अडोल अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसमें मन-माया तथा काल-कर्म के प्रत्येक प्रकार के बंधन समाप्त हो जाते हैं। उस अवस्था को प्राप्त कर चुका महात्मा साक्षात् परमेश्वर होता है। वह स्वयं जीवन-मुक्त हो चुका होता है तथा दूसरे अनेक जीवों को भी भव-सागर से पार करने में समर्थ होता है :

झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार॥
हद बेहद के पार तूर जहँ अनहद बाजै।
जगमग जोति जड़ाव सीस पर छत्र बिराजै॥
मन बुधि चित रहे हार नहीं कोउ वह घर पावै।
सुरत सब्द रहै पार बीच से सब फिरि आवै॥
बेद पुरान की गम्म सक ना उहवाँ जाई।

तीन लोक के पार तहाँ रोसन रोसनाई[१] ॥
पलटू ज्ञान के परे है तकिया[२] तहाँ हमार।
झंडा गड़ा है जाय के हद बेहद के पार ॥*

(भाग १, कुंडली १७४)

हम वासी उस देस के पूछता क्या है,
चाँद ना सुरुज ना दिवस रजनी।
तीन की गम्मि नहिं नाहिं करता करै,
लोक ना वेद ना पवन पानी ॥
सेस पहुँचै नहीं थकित भइ सारदा,
ज्ञान ना ध्यान ना ब्रह्म ज्ञानी।
पाप ना पुन्न ना सरग ना नरक है,
सुरति ना सबद ना तीन तानी[३] ॥
अखिल[४] ना लोक है नाहिं परजंत[५] है,
हद्द अनहद्द ना उठै वानी।
दास पलटू कहै सुन्न भी नाहिं है,
संत की बात कोउ संत जानी ॥

(भाग २, रेखता १७)

साधो भाई उहवाँ के हम वासी, जहवाँ पहुँचै नहिं अविनासी ॥
जहवाँ जोगी जोग न पावै, सुरति सबद नहिं क़ोई।
जहवाँ करता करे न पावै, हम हीं करैं सो होई ॥
ब्रह्मा विस्नु नाहिं गमि[६] सिव की, नहीं तहाँ अविनासी।
आदि जोति उहाँ अमल[७] न पावै, हमहीं भोग बिलासी ॥
त्रिकुटी सुन्न नाहिं है उहवाँ, दंडमेरु ना गिरिवर।
सुखमन अजपा एको नाहीं, बंकनाल ना सरवर ॥

---

१. जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, २. डेरा।

*इसमें और आगे के दो शब्दों में सतलोक और उसके भी ऊपर अनामी लोक की ओर संकेत है।

३. तीन गुण, ४. अखण्ड, ५. हद, ६. पहुँच, ७. ज़ोर।

जहवाँ पाँच तत्त ना स्वासा, जगमग झिलिमिलि नाहीं।
पलटूदास की औघट घाटी, विरला गुरमुख जाहीं॥
(भाग ३, शब्द ८३)

चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहि रात॥
नहीं दिवस नहि रात नाहि उतपति संसारा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस नाहि तब किया पसारा॥
आदि जोति वैकुंठ सुन्य नाहीं कैलासा।
सेस कमठ दिग्पाल नाहि धरती आकासा॥
लोक वेद पलटू नहीं कहौं मैं तब की बात।
चाँद सुरज पानी पवन नहीं दिवस नहि रात॥
(भाग १, कुंडली १७२)

हद अनहद दोऊ गये, निरभय पद है गाढ़।
निरभय पद के बीच में, पलटू देखा ठाढ़[1]॥
(भाग ३, साखी १४४)

आदि अंत हम हीं रहे सब में मेरो वास॥
सब में मेरो वास और ना दूजा कोई।
ब्रह्मा बिस्नु महेस रूप सब हमरै होई॥
हमहीं उतपति करैं करैं हमहीं संहारा।
घट घट में हम रहैं रहैं हम सब से न्यारा॥
पारब्रह्म भगवान अंस हमरै कहवाये।
हमहीं सोहं सब्द जोति ह्वै सुन्न में आये॥
पलटू देह के धरे से वे साहिब हम दास।
आदि अंत हम हीं रहे सब में मेरो वास॥
(भाग १, कुंडली १७८)

उस देस की बात मैं कहता हूँ,
असमान के बीच सुलाख[2] है जी।
बादसाह उसी के बीच बैठा,
सूझि परै बिनु आँख है जी॥

---

१. खड़ा होकर, पहुँच कर, २. छेद।

सुर्ख तो उसका चिहरा है,
[1]आफताब तसद्दुक लाख है जी।
पलटू वहँ [2]हूहू अवाज आवै,
उसमें मेरा दिल मुस्ताक[3] है जी॥
(भाग २, मूलना ५५)

धुजा फरक्कै सुन्य में, अनहद गड़ा निसान।
पलटू जूझा खेत पर, लगा जिकर[4] का बान॥
(भाग १, साखी १७)

लगा जिकर का बान है, फिकर भई छयकार।
पुरजे पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार॥
(भाग १, साखी १८)

नौबत बाजै ज्ञान की, सुन्य धुजा फहराय।
गगन निसाना मारि कै, पलटू जीते जाय॥
(भाग १, साखी १९)

कोटिन जुग परलय गई हमही करनेहार॥
हमहीं करनेहार हमहि करता के करता।
जेकर करता नाम आदि में हम हीं रहता॥
मरिहैं ब्रह्मा बिस्नु मृत्यु ना होय हमारी।
मरिहैं सिय[5] के लाल मरैंगी सिव की नारी॥
धरती अगिन अकास मुवा है पवन और पानी।
आदि जोति मरि गई रही देवतन की नानी॥
पलटू हम मरते नहीं ज्ञानी लेहु बिचार।
कोटिन जुग परलय गई हम ही करनेहार॥
(भाग १, कुंडली १७७)

---

१. वहाँ लाखों सूर्य हैं, २. हजरत सुलतान बाहू ने भी यहाँ के शब्द की आवाज को 'हू हू' की आवाज कहा है, ३. इच्छुक, मस्त, ४. सुमिरन, ५. सीता, एक पाठान्तर 'सिव' है।

*बार बार विनती करै पलटूदास न लेइ ॥
पलटूदास न लेइ रहै कर जोर ठाढ़ी ।
सरनागति मैं रहौं सरन विनु लागै गाढ़ी[१] ॥
गोड़ दावि मैं देउँ चरन धै सेवा करिहौं ।
चौका देइहौं लीपि बहुरि मैं पानी भरिहौं ॥
पैंड़ा[२] देउँ बुहारि सबन कै जूठ उठावौं ।
जनि दुरियावहु मोहि रहै मैं इहवाँ पावौं ॥
मुक्ति रहै द्वारे खड़ी लट वे झाड़ू देइ ।
बार बार विनती करै पलटूदास न लेइ ॥

(भाग १, कुंडली २२५)

चाहो मुक्ति जो हरि को सुमिरो, हम तो हरि विसराया हो ॥
सुमिरत नाम बहुत दिन बीते, नाहक जनम गँवाया हो ।
मुक्ति विचारी करै खवासी, पिय को हम अपनाया हो ॥
साहिब मेरा मुझ को सुमिरै, मैं ना सीस नवावौं हो ।
बैठा रहौं लोक में अपने, केकर दास कहावौं हो ॥
बूझी बात खुला अब परदा, क्योंकर साच छिपावौं हो ।
जैसन देखौं तैसन भाखौं, मैं ना झूठ कहावौं हो ॥
संका नाहिं करौं काहू की, हमसे बड़ कोउ नाहीं हो ।
पलटूदास कवन है दूजा, हमहीं हैं सब माहीं हो ॥

(भाग ३, शब्द ११९)

सिध चौरासी नाथ नौ[३] बीचै सभै भुलान ॥
बीचै सभै भुलान भक्ति की मारग छूटी ।
हीरा दिहिन है डारि लिहिन इक कौड़ी फूटी ॥

---

*इस प्रसंग में आप मुक्ति के लिये विनती का वर्णन करते हैं। आप ने एक अन्य स्थान पर भी कहा है :

संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार ॥
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी ।
ऋद्धि सिद्धि पर थूकैं स्वर्ग की आस न हेरी ॥

(भाग १, कुंडली ५७)

१. दुःख, २. आंगन, ३. चौरासी सिद्ध और नव नाथ ।

रांड़ मांड़ में खुसी जक्त इतने में राजी।
लोक वड़ाई तुच्छ नरक में अटकी वाजी॥
झूठ समाधि लगाय फिरै मन अंतै भटका।
उहां न पहुँचा कोय वीच में सव कोइ अटका॥
पलटू अठएँ लोक[1] में पड़ा दुपट्टा तान।
सिध चौरासी नाथ नौ वीचै सभै भुलान॥
(भाग १, कुंडली २३९)

होनी रही सो ह्वै गई रोइ मरै संसार॥
रोइ मरै संसार काज कुछ उनसे नाहीं।
गये हाथ से निवुकि[2] तेही से सव पछिताहीं॥
भये काग से हंस काग सव निन्दा करते।
लोहा से भये कनक सोच सव लोहा मरते॥
ज्ञानी अव हम भये रोवैं सव मूरख संगी।
तिल से भये फुलेल[3] तेल सव मार तिलंगी॥
पलटू उतरे पार हम भाड़ झोंकि सव भार।
होनी रही सो ह्वै गई रोइ मरै संसार॥
(भाग १, कुंडली २५२)

मगन आपने ख्याल में भाड़ परै संसार॥
भाड़ परै संसार नाहिं काहू से कामा।
मन वच[4] करम लगाय जानिहौ केवल रामा॥
लोक लाज कुल त्यागि जगत की वूझ वड़ाई।
निंदा कोउ कै जाय रहौ संतन सरनाई॥
छोड़ो दिन दिन संग सुनो ना वेद पुराना।
ठान आपनी ठानि आन ना करिहौ काना॥
पलटू संसै छूटि गई मिलिया पूरा यार।
मगन आपने ख्याल में भाड़ परै संसार॥
(भाग १, कुंडली ७७)

१. अनामी लोक, २. निकल, ३. इत्र की फुरेरी, यहां इत्र से अभिप्राय है, ४. वचन।

कौड़ी गांठि न राखई हमा-नियामत[1] खाय ॥
हमा-नियामत खाय नहीं कुछ जग की आसा ।
छत्तिस[2] व्यंजन रहे सवर से हाजिर खासा ॥
जेकरे है सत नाम नाम की चेरी माया ।
जोरू कहवाँ जाय खसम जब कंद में आया ॥
माया आवै चली रैनि दिन मैं दुरियावों[3] ।
सतगुरु दास कहाय नहीं मैं माँगन जावों ॥
राजा औ उमराव हाय सब बाँधे आवैं ।
द्वारे से फिरि जायँ नहीं फिर मुजरा पावैं ॥
जंगल में मंगल करै पलटू वेपरवाय ।
कौड़ी गांठि न राखई हमा-नियामत खाय ॥
(भाग १, कुंडली २४४)

जो मैं हारौं राम की जो जीतौं तौ राम ॥
जो जीतौं तौ राम राम से तन मन लावौं ।
खेलौं ऐसो खेल लोक की लाज वहावौं ॥
पासा फेंकौं ज्ञान नरद[4] विस्वास चलावौं ।
चौरासी घर फिरै अड़ी पौवारह[5] नावौं ॥
पौवारह सिखाय एक घर भीतर राखौं ।
कच्ची मारौं पांच रैनि दिन सत्रह भाखौं ॥
पलटू बाजी लाइहौं दोऊ विधि से राम ।
जो मैं हारौं राम की जो जीतौं तौ राम ॥
(भाग १, कुंडली ७४)

[6]बनिया पूरा सोई है जो तौलै सत नाम ॥
जो तौलै सत नाम छिमा का टाट विछावै ।
प्रेम तराजू करै बाट विस्वास बनावै ॥

---

१. छप्पन प्रकार का भोजन, २. छत्तीस अर्थात् कई प्रकार के, ३. दुतकारता हूँ, ४. चौपड़ की गोट, ५. शुभ गिना जाता है, ६. इस कुंडली में नाम मार्ग पर चलने वाले सच्चे बनिया के गुणों का वर्णन किया गया है। पलटू साहिब स्वयं भी जाति के बनिया थे।

विवेक की करै दुकान ज्ञान का लेना देना।
गादी है संतोष नाम का मारै टेना[1] ॥
लादै उलदै भजन वचन फिर मीठे बोलै।
कुंजी लावै सुरत सवद का ताला खोलै ॥
पलटू जिसकी वन परी उसी से मेरा काम।
वनिया पूरा सोई है जो तौलै सत नाम ॥
(भाग १, कुंडली २२३)

कौन करै वनियाई अव मोरे, कौन करै वनियाई ॥
त्रिकुटी में है भरती मेरी, सुखमन में है गादी।
दसयें द्वारे कोठी मेरी, वैठा पुरुष अनादी ॥
इँगला पिंगला पलरा दूनौं, लागि सुरति की जोती।
सत्त सवद की डाँड़ी पकरो, तौलो भरि भरि मोती ॥
चाँद सुरज दोउ करैं रखवारी, लगी तत्त की ढेरी।
तुरिया चढ़ि के वेचन लागे, ऐसी साहिवी मेरी ॥
सतगुरु साहिव किहा सिपारस, मिली राम मोदियाई[2]।
पलटू के घर नौवति वाजै, निति उठि होत सवाई ॥
(भाग ३, शब्द ८१)

समुझि देखु मन मानी, पलटू निरगुन वनियाँ ॥
चारि वेद कै टाट विछावत, तेहि चढ़ि करत दुकनियाँ ॥
सत्य सेर मन प्रेम तराजू, नाम कै मारत टेनियाँ ॥
सुरति सवद कै वैल लदाइनि, ज्ञान कै गोंनि[3] लदनियाँ ॥
सहर जलालपुर मूँड़ मुड़ाइनि, अवध तोरिनि करधनियाँ ॥
पलटूदास सतगुरु वलिहारी, पाइनि भक्ति अमनियाँ ॥
(भाग ३, शब्द ११८)

---

१. तराजू को अगुली से चोरी से दबा कर माल कम तोलना, २. मोदी राजा के भंडारी को 'मोदी गुणा' कहते है। यहाँ भाव है कि मैं राम के घर का भंडारी बन गया हूँ और नाम की दौलत लोगो को बाट रहा हूँ, ३. टाट का थैला जिसमें जिन्स भर कर लादते है।

हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ॥
लै लै भेट अमीर नाम का तेज विराजा ।
सब कोउ रगरै नाक आइ कै परजा राजा ॥
सकलदार[१] मैं नहीं नीच फिर जाति हमारी ।
गोड़ धोय षट करम बरन पीवै लै चारी[२] ॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई ।
जन महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई ॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर ।
हाथ जोरि आगे मिलै लै लै भेट अमीर ॥

(भाग १, कुंडली १९)

हवा कंहै खामोस[३] करै,
नाक आँख कान मुख मूँदि भाई ।
तब नूर तजल्ली[४] दीद करै,
असमान कि खिरकी खोलि नाई[५] ॥
खिरकी की राह निकरि जावै,
सुनै हक हक आवाज पाई ।
पलटू दीगर को नेस्त[६] करै,
होय खुद अहद[७] इस भाँति जाई ॥

(भाग २, झूलना ४४)

उस घर का भेद न कोउ जानै,
जहवाँ सेती जीव आवता है ।
सब खोजत खोजत मूइ गये,
उस घर का भेद न पावता है ॥
अधबीच सेती सब लोग फिरे,
उक्ती सेती ठहरावता है ।

---

१. सुन्दर, २. छः कर्मों वाले और चारों वर्ण के लोग चरणामृत लेकर पीते हैं, ३. चुप करे अथवा रोके, ४. प्रकाश, ५. दी, डाली, ६. दुई (दीगर) को दूर (नेस्त) करे, ७. एक. उस लोक में जाये जहां सब एक है। यहां सतलोक की ओर संकेत है।

पलटू हम ने तहकीक किया,
सब और का ओर बतावता है ॥
(भाग २, मूलना ५८

ऐसी भक्ति चलावै मची नाम की कीच ॥
मची नाम की कीच बूढ़ा औ बाबा गावै ।
परदे में जो रहै सब्द सुनि रोवत आवै ॥
भक्ति करे निरधार रहै निर्गुन से न्यारा ।
आवै देय लुटाय आपु ना करै अहारा ॥
[1]मन सब को हरि लेय सभन को राखै राजी ।
तीन देख ना सकै वैरागी पंडित काजी ॥
पलटूदास इक बानिया रहै अवध के बीच ।
ऐसी भक्ति चलावै मची नाम की कीच ॥
(भाग १, कुडली ५८

पूर्ण सन्त सब से ऊँचे पहुँच कर भी नम्रता का सहारा नहीं छोड़ते वास्तव में नम्रता और विनय सन्तों का सच्चा शृंगार है जिसकी झल पलटू साहिब की वाणी में स्थान-स्थान पर दिखाई देती है । आप अप आप को 'पतित', 'पातकी', 'अशुभ कार्य करने वाला', 'नीच', 'दास 'वेदाम-गुलाम' आदि कहते हैं तथा उस परम पिता परमेश्वर को साहिब स्वामी, शाह, शहनशाह तथा पतितपावन कहते हैं । आप कहते हैं वि पापियों का उद्धार करना उस मालिक का स्वभाव है । इसलिए व अपने विरद की लाज रख कर मेरे जैसे नीच तथा कुकर्मी को अवश ही भवसागर से पार करेगा । आप यह भी कहते हैं कि मैं तो किस काम के योग्य नहीं था तथा जो कुछ हुआ है सतगुरु या प्रभु की दय मेहर से हुआ है । जो कुछ करता है वह परमात्मा स्वयं करता है, परन् बड़ाई स्वयं लेने के स्थान पर इसका सेहरा सन्तों के सिर बाँध देत है :

---

१. सब का मन चुरा लेना है ।

ना मैं किया न करि सकौं, साहिव करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर॥

(भाग ३, साखी ४७)

जोग जुगत ना ज्ञान कछु गुरु दासन को दास[१]॥
गुरु दासन को दास सन्तन ने कीन्ही दाया।
सहज वात कछु गहिनि छुडाइनि हरि की माया॥
[२]ताकिनि तनिक कटाच्छ भक्ति भूतल[३] उर जागी।
स्वस्ता[४] मन में आई जगत की भ्रमना भागी॥
भक्ति अभय पद दीन्ह सनातन मारग वा की।
अविरल ओकर नाम लगै ना कवहीं टाँकी॥
पलटू ज्ञान न ध्यान तप महा पुरुष कै आस।
जोग जुगत ना ज्ञान कछु गुरु दासन को दास॥

(भाग १, कुंडली १६३)

साहिव मोर कुछ एक नाहीं,
जो है सो सव कुछ तोर है जी।
मुझको इस वात की नाहि खवर,
आगे परा मुझे भोर[५] है जी॥
इस हमता ममता के कारन,
तुम से भये हम चोर हैं जी।
पलटू अव मुझको चैन परा,
तेरा नहि कहै मन मोर है जी॥

(भाग २, झूलना ४६)

जाय मनाओं मैं साजन को, केहि भाँति सखी री।
भूली फिरों राह न पाओं, सतगुरु चाही संग लागन को।
मैं मूरख मन मलिन भयो है, ज्ञान चाही तन माँजन को।
भूख पियास छुटै नहि मेरी, पांच भूत चाही त्यागन को।

---

१. गुरु के दासों का भी दास हूँ, २. थोड़ी दया दृष्टि से देखा, ३. पृथ्वी भर की, ४. शान्ति, ५. भूल।

मोह मया निद्रा रहै घेरे, आठ पहर चाही जागन को ।
पलटूदास साध को संगति, उठि उठि मन चाहै भागन को ।
(भाग ३, शब्द ८९)

पतितपावन वाना धर्‌यो तुमहिं परी है लाज ।।
तुमहिं परी है लाज वात यह हम ने वूझी ।
जव तुम वाना धर्‌यो नाहिं तव तुम कहँ सूझी ।।
अव तो तारे वनै नहीं तो वाना उतारौ ।
फिर काहे को वड़ा [1]वाच जो कहिकै हारौ ।।
आगहिं तुम गये चूक दोप नहिं दीजै मेरो ।
तुम यह जानत नाहिं पतित होइहैं वहुतेरो ।।
पलटू मैं तो पतित हौं किये असुभ सव काज ।
पतितपावन वाना धर्‌यो तुमहिं परी है लाज ।।
(भाग १, कुंडली १४९)

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ।।
भक्ति दई तेहि जान नाम पर पकरयो मोकहँ ।
गिरा परा धन पाय छिपायों मैं ले ओकहँ ।।
लिखा रहा कुछ आन कर्म में दीन्हा आनै ।
जानौं मही अकेल कोऊ दूसर नहिं जानै ।।
पाछे भा फिर चेत देय पर नाही लीन्हा ।
आखिर वड़े की चूक जोई निकसा सोई कीन्हा ।।
पलटू मैं पापी वड़ा भूल गया भगवान ।
दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान ।।
(भाग १, कुंडली १६०)

राम नाम जेहि मुखन तें, पलटू होय प्रकास ।
तिन के पद वंदन करौ, वो साहिव मैं दास ।।
(भाग ३, साखी २१)

---

१. जो प्रण करके पूरा न करे ।

तुम तजि दीनानाथ जी, करै कौन की आस ।
पलटू जो दूसर करै, तो होइ दास की हाँस ।।
(भाग ३, साखी ४६)

पलटू साहिब कहते हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूँ; मैं गोविन्द साहिब के बाग का एक छोटा-सा फूल हूँ और जो कुछ है सब सतगुरु की ही दया व मेहर का प्रसाद है :

चारि बरन को मेटि कै, भक्ति चलाया मूल ।
गुरु गोविन्द के बाग में, पलटू फूला फूल ।।
(भाग ३, साखी १४३)

वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाता, कुएँ को प्यास नहीं लगती। इसी प्रकार :

झाड़ नहीं फल खात है, नहीं कूप को प्यास ।
परस्वारथ के कारने, जन्मे पलटूदास ।।
(भाग ३, साखी १५४)

सत्संग अथवा सन्त-सभा

जहाँ सन्तों की संगति प्राप्त हो तथा उनका प्रवचन, उपदेश या वाणी सुनने का सुअवसर मिले, उसको पलटू साहिब सत्संग कहते हैं।

सन्तों का सत्संग सच्चे सुख तथा सच्चे आनन्द का स्रोत है। उनके सत्संग में दुर्मति दूर होती है तथा बुद्धि निर्मल होती है। सत्संग में जीव का उद्धार होता है क्योंकि सन्तों की संगति में जाकर ही नाम की प्राप्ति होती है तथा नाम से मिलाप होता है।

बाहर के तीर्थ मन के मैल को नहीं धो सकते। सत्संग सच्चा तीर्थ है जहाँ पहुँच कर मन निर्मल होता है तथा अपने अन्दर ही परमात्मा से मिलाप करने का रास्ता मिल जाता है।

सत्संग के बिना न संशय दूर हो सकते हैं, न ही माया के बंधन छूट सकते हैं। पलटू साहिब उपदेश करते हैं कि सच्चे सतगुरु की संगति ही मुक्ति तथा परमेश्वर प्राप्ति का वास्तविक साधन या सच्चा मार्ग है। इसलिए बुरी संगति को त्यागने तथा सत्संग में पहुँचने में कभी देर नहीं करनी चाहिए

संतन संग अनन्द परम सुख ॥
जेकरी संगति ज्ञान होत है, मिटत सकल दुख द्वंद।
उनके निकट काल नहिं आवै, टूटि जात जम फंद ॥
फूल संग से तेल बसानो[1], सब कोई करत पसंद।
पारस छुए लोह भा कंचन, दुरमति सकल हरंद[2] ॥

---

१. महिमा हुई। फूल के साथ रहने से तेल इत्र बन गया. २. दूर हो गई, हट हो गई।

हलुवाई ज्यों अवटि जारि कै, करत खाँड़ से कंद ।
पलटूदास यह विनती मोरी, अजहुँ चेत मतिमंद ॥
(भाग ३, शब्द २०)

बिना सतसंग ना कथा हरि नाम की,
विना हरि नाम ना मोह भागै ।
मोह भागे बिना मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति बिनु नाहिं अनुराग लागै ॥
बिना अनुराग से भक्ति ना मिलैगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागै ।
प्रेम बिनु नाम ना नाम बिनु संत ना,
पलटू सतसंग बरदान माँगै ॥
(भाग २, रेखता २१)

पारस के परसंग मे लोहा महँग बिकान ॥
लोहा महँग बिकान छुए से कीमत निकरी ।
चंदन के परसंग चंदन भई वन की लकरी ॥
जैसे तिल का तेल फूल संग महँग बिकाई ।
१सतसंगति में पड़ा संत भा सदन कसाई ॥
२गंग में है सुभसंग मिली जो नारा सोती ।
सीप बीच जो पड़ै बूँद सो होवै मोती ॥
पलटू हरि के नाम से गनिका चढ़ी बिमान ।
पारस के परसंग से लोहा महँग बिकान ॥
(भाग १, कुंडली ८

मलया के परसंग मे सीतल होवत साँप ॥
सीतल होवत साँप ताप को तुरत बुझाई ।
संगत के परभाव सीतलता वा में आई ॥
मूरख ज्ञानी होय जाय ज्ञानी में बैठै ।
फूल अलग का अलग बासना तिल में पैठै ॥

१. सदना कसाई सत्संग में आकर पूर्ण सन्त बन गया. २. गंगा में मिल क
भी गंगा हो जाता है ;

कंचन लोहा होय जहाँ पारस छुइ जाई।
[1]पनपै उकठा काठ जहाँ उन सरदी पाई॥
पलटू संगत किये से मिटते [2]तीनिउँ ताप।
मलया के परसंग मे सीतल होवत साँप॥
(भाग १, कुण्डली ८०)

मनै मूरति करै तनै देवल बना,
निकट में छोड़ि कहँ दूरि धावै।
[3]जल पाषान कछु खाय बोलै नहीं,
बिना सतसंग सब भटकि आवै॥
यह तहकीक[4] कर बोलता कौन है,
यही है राम जो नित्त खावै।
*दास पलटू कहै बोलता पूजिये,
करै सतसंग तब भेद पावै॥
(भाग २, रेखता २४)

लड़िका चूल्हे में लुका ढूंढ़त फिरै पहार॥
ढूंढ़त फिरै पहार नही घर की सुधि जानै।
जप तप तीरथ बरत जाय के तिल तिल छानै॥
गई आप को भूलि और की बात न मानै।
चूल्हे लड़िका रहै चतुरई अपनी ठानै॥
भरमी फिरै भुलान जाइ कै देस देसान्तर।
लड़िका मे नहि भेट मिलन है पानी पाथर॥
पलटू सतसंगति करै [5]भूल मे बाही मार।
लड़िका चूल्हे में लुका ढूंढ़त फिरै पहार॥
(भाग १, कुण्डली २०१)

१ रखा हुआ गन्ना ठण्ड से उग उठता है. २. शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रोग. ३ जल और पत्थर न बोलते है, न खाते है. ४. खोज।

*पलटू साहिब की ही एक साखी है.

हिन्दू पूजै देवहरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद॥ (भाग ३, साखी १४१)

५ भूल मिटाने के लिये सत्संग ही सार है।